ISSN 2349-1906

साहित्य यात्रा

वर्ष 6 अंक 24 अक्टूबर-दिसम्बर 2020

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

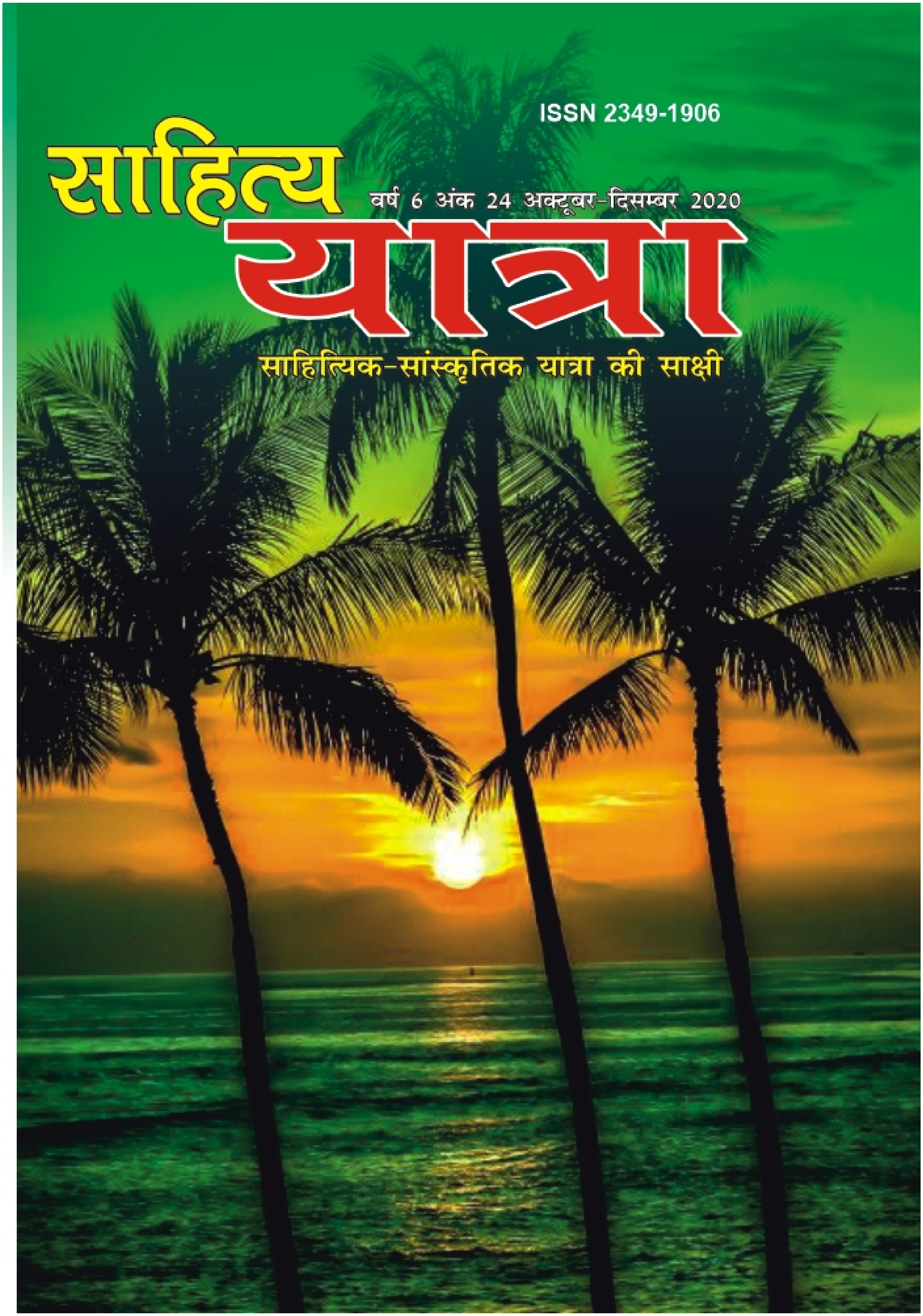

साहित्य यात्रा के आचार्य शिवपूजन सहाय के स्मृति अंक का लोकापर्ण बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन में संपन्न हुआ। मंच पर सम्मेलन के अध्यक्ष डॉ. अनिल सुलभ, 'साहित्य यात्रा' के संपादक प्रो. कलानाथ मिश्र, डॉ. शंकर प्रसाद, डॉ. योगेन्द्र प्रसाद मिश्र, कुमार अनुपम, ओम प्रकाश जमुआर, विनय कुमार विष्णुपुरी एवं अन्य।

बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन में 'साहित्य यात्रा' के संपादक प्रो. कलानाथ मिश्र को सम्मेलन के अध्यक्ष डॉ. अनिल सुलभ द्वारा 'आचार्य नलिन विलोचन शर्मा' सम्मान से विभूषित किया गया।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

संपादक
प्रो० कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा
साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

सदस्यता फार्म

'साहित्य यात्रा' विशिष्ट सदस्यता	:	1100/-
एक वर्ष (4 अंक)	:	400/- (डाक खर्च सहित)
तीन वर्ष (12 अंक)	:	1200/- (डाक खर्च सहित)
संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	:	1100/-
आजीवन सदस्यता	:	11000/-
विदेश के लिए (3 अंक)	:	60 डॉलर

(पटना के बाहर के चेक पर कृपया बैंक कमीशन के 40/- रूपये अतिरिक्त जोड़ दें।)

उक्त दर के अनुरूप मैं चेक / ड्राफ्ट संलग्न कर रहा हूँ। कृपया मुझे ग्राहक बना कर मेरी प्रति निम्न पते पर भिजवाएँ।

नाम :-	पद :-
पता :-	
दूरभाष 1 :	दूरभाष 2 :
शहर :	पिन न० :-
देश :	ईमेल -
संकाय / विभाग / विद्यालय:	

भुगतान की जानकारी

नकद/बैंक रकम: रु०... द्वारा..

डी0डी0/प्रत्यक्ष हस्तांतरण/चेक/बैंक का नाम :...

डी0डी/चेक/स्थानान्तरण संख्या :.................................... दिनांक :.......................................

दिनांक:		हस्ताक्षर (या पूरा नाम लिखें)	

ऑनलाइन हस्तांतरण विवरण :- साहित्य यात्रा, पंजाब नेशनल बैंक, एस.के. पुरी शाखा, पटना-1, खाता क्रमांक- 623000100016263, IFSC- PUNB0623600

यहाँ से काटिए

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

वर्ष-6 अंक-24 अक्टूबर-दिसम्बर, 2020

परामर्शी

डॉ॰ सूर्य प्रसाद दीक्षित

डॉ॰ नरेन्द्र कोहली

डॉ॰ प्रेम जनमेजय

डॉ॰ हरीश नवल

डॉ॰ संजीव मिश्र

सम्पादकीय सलाहकार

श्री आशीष कंधवे

उप-संपादक

प्रो॰ (डॉ॰) प्रतिभा सहाय

डॉ॰ सत्यप्रिय पाण्डेय

सहायक संपादक

डॉ॰ रवीन्द्र पाठक

अमित कुमार मिश्र

साज-सज्जा

निशिकान्त / मनोज कुमार

संपादक

प्रो॰ कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं जिनसे संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं पत्रिका से जुड़े किसी भी व्यक्ति का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सभी विवादों का निपटारा पटना क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित है। पत्रिका में संपादन से जुड़े सभी पद गैर-व्यावसायिक एवं अवैतनिक है।

साहित्य यात्रा
साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी
RNI No. : BIHHINO5272
ISSN 2349-1906

विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा पूर्व अनुमोदित

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के पुनः उपयोग के लिए लेखक,
अनुवादक अथवा **साहित्य यात्रा** की स्वीकृति अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय
'अभ्युदय'
ई-112, श्रीकृष्णपुरी
पटना-800001 (बिहार)
मोबाइल : 09835063713/09304302308
ई-मेल : sahityayatra@gmail.com
kalanath@gmail.com
वेब साईट : http:/www.sahityayatra.com

मूल्य : ₹ 45

प्राप्ति स्थान :

पटना-
आलोक कुमार सिंह, मैग्जीन हाउस, शालीमार स्टूडियो के पास,
सहदेव महतो मार्ग, बोरिंग रोड, पटना-800001

दिल्ली -
1. आर.के. मैग्जीन सेन्टर, क्रिश्चियन कॉलोनी, पटेल चेस्ट,
दिल्ली, वि.वि., दिल्ली-11007
2. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, मंडी हाउस, नई दिल्ली

शुल्क **'साहित्य यात्रा'** के नाम पर भेजें।

'साहित्य यात्रा' त्रैमासिक डॉ॰ कलानाथ मिश्र के स्वामित्व में और उनके द्वारा 'अभ्युदय' ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001, बिहार से प्रकाशित तथा ज्ञान गंगा क्रियेशन्स, पटना से मुद्रित। स्वामी/संपादक/प्रकाशक/मुद्रक : प्रो॰ कलानाथ मिश्र।

अनुक्रम

संपादकीय 07
कोरोना काल में संवाद की कला

संस्मरण-लेख
मेरा गुरुर 11
नरेन्द्र कोहली
जिनकी छाया भी सुखदायी है- आवारा मसीहा के विष्णुप्रभाकर 17
डॉ. शरद पगारे
रूप का वह आकर्षण 22
भारत यायावर
स्मृति लेख
''आँख नम और हृदय बोझिल शब्द कहाँ से लाऊँ'' 40
डॉ. आशा मिश्रा 'मुक्ता'
आलेख
मधुबनी लोककला के विविध रंगों में मैथिल स्त्री की संवेदना 45
डॉ. प्रियंका कुमारी
अज्ञेय के काव्य का अनुभूति संसार 54
डॉ. राजेन्द्र परदेसी
महाकवि गोवर्द्धन प्रसाद सदय की साहित्य-साधना 61
डॉ. रामसिंहासन सिंह
प्रवासी कथा साहित्य और स्त्री 65
डॉ. अनिता कपूर
महिला सशक्तिकरण एवं महिला शिक्षा 68
डॉ. काकोली गोराई
स्त्री विमर्श बनाम दलित विमर्श 78
डॉ. रत्नेश्वर सिंह
उग्र की अश्लीलता के लिये बदनाम कहानी ''चाकलेट'' 81
राजेन्द्र सिंह गहलौत
शोध आलेख
मानस के निर्माण में नारी पात्रों की भूमिका 90
पद्मा मिश्रा
आलेख
संवेदना का अनुकूलता और सौन्दर्य 95
डॉ. उर्मिला मिश्रा

आलेख

ओमप्रकाश वाल्मीकि का रचना संसार 99
डॉ. कार्तिक चौधरी

'यह बेवकूफ, बहरा और अंधा बनाने का एक खटमिठ्ठा फल है' 104
गोविन्द गुंजन

अज्ञेय के उपन्यासों का परिचयात्मक विश्लेषण 110
रज्जन प्रसाद शुक्ल

इतिहास के पन्नों में दफ़न/कैद होने को मजबूर- ''तांगा संस्कृति'' 116
सुभाष चन्द्र

छायावाद के सौ वर्ष और मुकुटधर पांडेय 121
उर्मिला कुमारी

मेरे भारत की 'संस्कृति' 126
गीता सिंह

छत्तीसगढ़ी भाषा-इतिहास, संस्कृति एवं साहित्य 132
डॉ. राजेश कुमार मानस 'श्याम'

डॉ. श्री पाल सिंह क्षेम की काव्य सर्जना 138
बृजेश आनन्द राय

''भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति'' 142
डॉ. मीरा सिन्हा

प्रेम अनन्त की परिभाषा है 145
शाम्भवी

पुस्तक समीक्षा

छंद शास्त्र की अनुपम कृति 148
डॉ. पुष्प राज शर्मा

याद रह जाते हैं शिवनारायण के शेर 152
पंकज चौधरी

गीत

ओ! बसन्त के अग्रदूत.... 155
डॉ. अमर कान्त कुमार

रिपोर्ट

वरेण्य साहित्यकार फणीश्वर नाथ 'रेणु' के जन्म शताब्दी वर्ष पर उ.प्र. हिन्दी संस्थान द्वारा संगोष्ठी का आयोजन 156
गिरजा शंकर तिवारी

सम्पादकीय

कोरोना काल में संवाद की कला

साहित्य सुख-दुखात्मक जीवनानुभूतियों की कलात्मक अभिव्यक्ति है। ये अनुभूतियाँ जीवन की वास्तविकताओं, संघर्षों, जद्दोजहद, हास-विलास के बीच मनुष्य के अंतर्मन को झकझोरती रहती हैं, उसकी संवेदनाओं को जगृत करती हुई अंतर्मन में संचित होती रहती हैं। इस प्रकार जीवन के कटु-मधुर अनुभव हमारे अहसास बनते हैं। ऐसी बहुत सारी अनुभूतियाँ हैं जो विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति पा लेती हैं और कुछ ऐसी भी हैं जो अव्यक्त ही रह जाती हैं। समस्त अनुभूतिजन्य ज्ञान को शब्दों में अभिव्यक्त करना कठिन होता है। अनुभूतियों का साहित्य में कई रूपों में प्रयोग हुआ है। यथा भावानुभूति, रसानुभूति, लौकिक अनुभूति, अलौकिक अनुभूति, प्रत्यक्षानुभूति, रहस्यानुभूति, काव्यानुभूति आदि। हम जब इन अनुभूतियों को भाषा में व्यक्त करते हैं तो उसकी अभिव्यक्ति में भाव, भंगिमाओं का विशेष महत्व होता है। भाषा संप्रेषण में विभिन्न मुद्राओं, चेहरे की अभिव्यक्ति, इशारों और आँखों की गति का विशेष महत्व होता है। मनुष्य अनजाने में ही इस तरह के संकेत भेजता भी है और समझता भी है।

वर्ष 2020 कई मायनों में अलग रहा। वर्ष के आरंभ में ही कोरोना महामारी ने मनुष्य को आक्रांत कर दिया। समस्त जीवन व्यापार जैसे उसकी गिरफ्त में आ गया। व्यक्ति ने व्यक्ति से दूरियाँ बना ली। दो गज की दूरी ने सामाजिक दूरियों का रूप धारण कर लिया। मनुष्य के मुँह पर मास्क लग गया और इसके साथ ही अभिव्यक्ति की अनेक भाव भंगिमाएँ उस मास्क में दबकर विलीन हो गये। हम जब सहज होकर मिलते हैं, तो हमारी कायभाषा बहुत कुछ कहती है। संबंधों के निर्वहन में संवाद की और संवाद में भाव-भंगिमाओं की अहम भूमिका होती है। एक-एक स्पर्श का, एक-एक मुद्राओं का विशेष संवाद होता है। मनुष्य सामाजिक जीव है अत: समाज से जुड़े रहना आवश्यक है। अत: ऐसी स्थिति में हमें भाषा संप्रेशन में भाव-भंगिमाओं के महत्व को जानना भी जरूरी है। यह भी जानना जरूरी है कि समुचित भाव भंगिमाओं के अभाव में संपूर्ण संवाद कैसे किया जाय? ऐसी स्थिति में साहित्यिक संवाद की भूमिका अहम हो जाती है।

भाषा संप्रेषण में विभिन्न मुद्राओं, चेहरे की अभिव्यक्ति, इशारों और आँखों की गति का भी विशेष महत्व होता है। मनुष्य अनजाने ही बातचीत के क्रम में इस तरह के संकेत भेजता भी है और समझता भी है। काय-भाषा किसी के रंग-ढंग, तौर-तरीके और उसकी मन:स्थिति के बारे में संकेत देती है। हाथ हिलाना, उंगली से इशारा करना, छूना और नजर नीचे करके देखना ये सभी अमौखिक संचार के रूप हैं। बच्चे माँ का स्पर्श पाकर बेहद सुरक्षित महसूस करते हैं। सामान्य रूप से निराश व्यक्ति की पीठ पर हाथ फेरकर उसे संबल दिया जाता है। यह स्पर्श पाते ही वह आश्वस्त होता है और महसूस करता है कि इस कठिन परिस्थिति में भी कोई उसके साथ खड़ा है।

पीठ थपथपाने से मनुष्य उत्साहित अनुभव कराता है। यह किसी की सफलता पर बधाई देने और प्रोत्साहित करने का सशक्त माध्यम है। भारत में चरणस्पर्श सम्मान और आदर प्रकट करने का सर्वकालिक और सर्वमान्य तरीका है। यह हृदय के सम्मान और श्रद्धा को बखूबी जाहिर कर देता है। मिलने पर कभी अह्लाद से भर किसी मित्र से गले मिलना अथवा किसी के कंधे, पीठ पर हाथ रखना अथवा एक जीवंत मुस्कान के साथ किसी मित्र के समक्ष प्रस्तुत होना भी आपसी संवाद के महत्वपूर्ण घटक हैं, किन्तु मास्क ने इन मुस्कानों के विभन्न संकेतों को अवरुद्ध कर दिया है। हम जानते हैं कि अलग-अलग किस्म के मुस्कान अलग-अलग संकेत देते हैं। उदाहरण के लिए- 'हास', 'अंतर्हास', 'विहास', 'सुहास', 'मंदहास', 'स्मित', 'मुस्कान', 'विंहसना' आदि होठों की अनेक भंगिमाएँ अदृश्य हो गईं।

लंबे अंतराल के बाद भेंट होने पर किया गया आलिंगन, प्रेम और मिलन की खुशी को जाहिर करता है। वहीं विरह और शोक से पीड़ित व्यक्ति को गले लगा लेना उसकी ओर सहानुभूति प्रेषित करने और यह कहने (मैं हूँ न!) का सर्वोत्तम माध्यम है।

किसी बीमार के हाथ पर हाथ रखना उसके लिए मात्र एक संबल ही नहीं होता बल्कि एक बड़ा आश्वासन होता है, जो उसके प्रति हमारी शुभचिंतन को, शुभेच्छाओं को उस बिमार तक पहुँचाता है। इस संबंध में प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा की यह उक्ति ध्यान देने योग्य है।

''रोगी की ब्याधि विशेष के लिए शास्त्र विशेष उपयोगी हो सकता है, परंतु उसके सिरहाने किसी शहृदय द्वारा रखा हुआ अध-खिला गुलाब का फूल भी कम उपयोगी नहीं। अपनी वेदना में छटपटाता हुआ वह उस फूल की धीरे-धीरे खिलने और हौले-हौले झड़ने वाली पंखुड़ियों को देख-देख कर, कै बार विश्राम की सांस लेता है, किस प्रकार अपने अकेलेपन को भर देता है, कितने भावों की सम-विषम भूमियों के पार आता-जाता है और कैसे चिंतन के क्षणों में अपने आप को खोता-पाता है, यह चाहे हमारे लिए प्रत्यक्ष न हो, परंतु रोगी के जीवन में तो सत्य रहेगा ही। चतुर चिकित्सक द्वारा रोग का निदान, उपयुक्त औषधि और पथ्य आदि का उपयोग स्पष्ट है परंतु रोगी की स्वास्थ्य इच्छाशक्ति, वातावरण का अनिर्वचनीय साम्राज्य, सेवा करनेवाले का हृदयगत स्नेह, सद्भाव आदि उपयोग में अप्रत्यक्ष होने के कारण कम महत्वपूर्ण है, यह कहना अपनी भ्रांति का परिचय देना होगा।''

इस महामारी काल में जब संवेदनाओं की अभिव्यक्ति, तीमारदारी की सबसे अधिक आवश्यकता है तब मरीज अपने स्वजन से दूर नितांत अकेला अपने कष्ट को झेलने को मजबूर है।

आलिंगन पर भी इस महामारी काल में प्रतिबंध लग गया। कई अवसरों पर आलिंगन के, गले मिलने का एक विशेष संदेश होता है। जैसे एक दीर्घ अंतराल के लिए विदा होते समय किया गया आलिंगन पुनः मिलन, संबंधों की दृढ़ता का संबल देता है। यह आलिंगन कहता है कि मुझे तुम्हारी फिक्र है। यह सुखद भविष्य के लिए की गईं शुभकामनाओं का भी द्योतक है।

वस्तुत: स्नेहपूर्ण स्पर्श-भाषा का उपयोग तब और आवश्यक होता है जब आप किसी अन्य व्यक्ति के प्रति स्नेह या आत्मीयता की भावना व्यक्त करना चाहते हैं। यह परस्पर संबंध के लिए महत्वपूर्ण होता है। स्पर्श भाषा का उपयोग एक चिकित्सीय विधि के रूप में भी किया जा सकता रहा है, किन्तु यह इतना कठित दौड़ है कि डॉक्टर भी मरीज का स्पर्श करने से कतराते हैं। अत: संप्रेषण को सबल सशक्त बनाने में कायभाषा (शारीरिक भाषा) की महत्वपूर्ण भूमिका है।

इस महामारी के प्रकोप से हमारा मिलना जुलना कम हो गया। मनुष्य से मनुष्य की दूरियाँ बढ़ गई, अभिव्यक्ति की सबसे सशक्त माध्यम, मुँह को ही ढकना पर गया और इसके साथ ही इन समस्त हार्दिकताओं की अभिव्यक्ति में शिथिलता आ गयी। जब मनुष्य को अपनों की संवेदना की जरूरत सर्वाधिक है ऐसी स्थिति में उसे अभिव्यक्त करना कठिन हो गया है।

सामान्यत: जब हम बोलते या सुनते हैं तो हमारा ध्यान मूल रूप से शब्दों पर होता है। शारीरिक भाषा पर उतना ध्यान नहीं होता क्योंकि हम अभ्यासवश संवाद के साथ ही करते हैं, सायास नहीं करते। हम स्वत: अपनी भाव-भंगिमाओं से कई ऐसे संदेश देते है जो हमारे शब्दों का समर्थन करते हैं उसे स्पष्टता प्रदान करते हैं और संप्रेषण को सशक्त तथा संपन्न बनाते हैं। श्रोता या दर्शक शाब्दिक और गैर शाब्दिक, दोनों संकेतों पर एक साथ ध्यान देते हैं। यह संवाद की स्पष्टता और संपर्क स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बातचीत के दौरान हावभाव से तात्पर्य, शारीरिक संचलन से होता है। जो बातचीत में निहित अनेक अर्थों को अभिव्यक्त करता है। इनमें सिर, चेहरा एवं आँखों के संचलन भी शामिल होते हैं। आँख मिचकाना, झपकाना एवं गोल करना आदि शामिल हैं, पर कोरोना काल में मास्क के अवरोध के कारण संवाद में भी व्यवधान उत्पन्न होता है। ऐसी स्थिति में कई मुहावरे अर्थहीन लगने लगे हैं। यथा 'दाँत निपोरना', 'दाँत दिखान', 'बत्तीसी निकालना, 'नाक भौं चढाना', 'दाँत तले उँगली दबाना', 'मुँह उतरना' (उदास होना) आदि विशिष्ट मुहावरे मास्क में दम तोड़ रहे हैं। हाथ नहीं मिलाना है तो 'मुट्ठी गरम करना' भी कठिन हो गया है।

दो गज की दूरियाँ रखते-रखते एक प्रकार से अनचाहे ही सामाजिक दूरियाँ बनती जा रही है। ऐसी स्थिति में शब्द की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। अब अपनी भावना को बिना विशेष भाव भंगिमा के स्पष्ट रूप से संप्रेषित करने के लिए शब्दों का विशेष चयन आवश्यक हो गया है। उन भावनाओं को जो पहले शब्दों के साथ-साथ अनेक भंगिमाओं के माध्यम से अभिव्यक्त होता था उसे अब मात्र शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त करना होता है। अत: सटीक शब्दों का चयन करना आवश्यक हो गया है, ताकि संबंधों के बीच दरार उत्पन्न न हो। सही शब्दों का चुनाव नहीं होने से गलतफहमी होने की भी संभावना रहती है। संबंध को बनाए रखने के लिए भाव संप्रेषण आवश्यक है। इसके लिए बातचीत करना आवश्यक है। सामने वाले के प्रति हार्दिकता, सम्मान, स्नेह, प्रशंसा अथवा अपेक्षा दर्शाने के लिए उनसे बात करें, सही संदर्भ में भाव संप्रेषित करने हेतु सही शब्दों का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही भाषा की ध्वन्यात्मकता, शब्द के उच्चारण, आरोह-अवरोह, उतार-चढ़ाव, बलाघात पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

कहानियों की भाषा, साहित्य की भाषा, विशिष्ट संवाद शैली का चयन हमारी बातचीत को रुचिकर, अर्थ संपन्न और सशक्त बना सकता है। अतः साहित्य में उद्धृत ऐसे प्रसंगों को ध्यान से पढ़े और उनमें निहित भावाभिव्यक्ति पर ध्यान दें क्योंकि शाब्दिक संप्रेषण कोरोना काल में संबंधों के निर्वहण का एकमात्र सशक्त माध्यम है। शब्द ही वह माध्यम है जो इस सामाजिक दूरियों के बीच भावात्मक दूरियाँ पनपने नहीं देंगे। यह तो रही कोरोना काल में संवाद की महत्ता की बात।

दूसरा पक्ष यह है कि इस कोरोना काल में कितने अपनों का विछोह सहना पड़ा किन्तु आदरणीय मृदुला सिन्हा जी का जाना एक कचोट दे गया। सुविख्यात हिन्दी लेखिका मृदुला जी वर्तमान में गोवा के राज्यपाल पद पर आसीन थी। अत्यंत स्नेही, सहज व्यक्तित्व की धनी थी। भारतीय जनता पार्टी की केन्द्रीय कार्यसमिति की सदस्य भी रहीं। पाँचवाँ स्तम्भ के नाम से एक सामाजिक पत्रिका का भी प्रकाशन करती थीं। श्रीमती सिन्हा अटल बिहारी वाजपेयी के प्रधानमंत्रित्व-काल में केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की अध्यक्ष भी रह चुकी थीं। उनकी पुस्तक 'एक थी रानी ऐसी भी' की पृष्ठभूमि पर आधारित राजमाता विजया राजे सिन्धिया को लेकर एक फिल्म भी बनी थी।

इस अंक में विभिन्न महत्वपूर्ण कालेखों के साथ यश:काय मृदुला जी पर डॉ. आशा मिश्रा 'मुक्ता' जी का एक स्मृति-लेख 'आँख नम और हृदय बोझिल शब्द कहाँ से लाउँ' प्रकाशित कर रहा हूँ।

यशस्वी रचनाकार श्री नरेन्द्र कोहली जी का संस्मरणत्मक लेख 'मेरा गुरूर', फणीश्वर नाथ 'रेणु' पर भारत यायावर का संस्मरण, गोवर्धन प्रसाद 'सदय' पर डॉ. रामसिंहासन सिंह का आलेख, तामिलनाडु की डॉ प्रियंका कुमारी द्वारा 'मधुबनी लोककला के विविध रंगों में मैथिल स्त्री की संवेदना' शीर्षक शोध आलेख, डॉ. अमरकांत कुमार द्वारा रचित गीत 'ओ! बसन्त के अग्रदूत..' सहित कई महत्वपूर्ण रचनाओं के साथ इस अंक को संग्रहणीय बनाने का प्रयास किया गया है। आशा है सुधी पाठक का स्नेह पूर्व की भाँति इस अंक को भी मिलेगा।

यह अंक वर्ष 2020 का अंतिम अंक है। आप सबों को नवीन वर्ष 2021 की हार्दिक शुभकामनाओं के साथ ही आशा है कि नए वर्ष में हमारे मुँह पर से बंधन हटेगा, कोरोना का भय दूर होगा और हम पुनः दूरियों को नजदीकियों में बदल देंगे।

कलानाथ मिश्र

मेरा गुरुर

नरेन्द्र कोहली

विश्व हिंदी सम्मेलन उस वर्ष भोपाल में होनेवाला था, इसलिए उसकी तैयारी के लिए होनेवाली बैठक में मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री शिवदान सिंह चौहान भी उपस्थित थे। दूसरी ओर हिंदी की लेखिका और गोवा की राज्यपाल मृदुला सिन्हा भी उस समिति की सदस्य थीं और लोगों ने क्या कहा, मुझे स्मरण नहीं किंतु इन दोनों की कुछ उक्तियाँ आज भी हृदय में रड़क रही हैं।

लखनऊ में ''उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान'' के पुरस्कार-वितरण का अवसर था और अटल बिहारी वाजपेयी पुरस्कार देने के पश्चात् भाषण देने के लिए खड़े हुए थे। मुझे तब 'साहित्य्-भूषण' पुरस्कार मिला था। मैं अति उत्साहित और प्रफुल्लित था। मैं जानता था कि वह पुरस्कारों में प्रथम सोपान था। बिना साहित्य भूषण के बड़े पुरस्कार नहीं मिलते थे।

अटल जी ने भाषण आरंभ किया। उन्होंने अपनी बात पंजाब के कुछ साहित्यकारों और अध्यापकों से अपनी चर्चा के साथ आरंभ की। उन्होंने कहा कि पंजाब के लोगों को शिकायत है कि हिंदी के पाठयक्रम में गुरुओं की वाणी नहीं पढ़ाई जाती।

मैं जानता था कि यह शिकायत किन की है और क्यों है। और हम तो अपने पाठ्यक्रम में गुरु नानक की रचनाएं पढ़ते और पढ़ाते आए थे। मैंने हाथ उठाया और बोला, ''गुरु नानक हमारे पाठ्यक्रम में हैं।''

उन्होंने मुझे देखा। स्पष्ट था कि उन्हें मेरा इस प्रकार बीच में बोलना पसंद नहीं आया था। फिर भी वे टाल गए और कुछ ऐसा बोले, जिसका अर्थ था कि हमें दूसरों को शिकायत का अवसर नहीं देना चाहिए। मैं खड़ा हो गया और बोला, ''हम तो पढ़ाते ही हैं।''

इस बार मेरे साथ कमलकिशोर गोयनका भी खड़े हो गए थे।

अटल जी ने जैसे अपनी नाराजगी जताते हुए अपना हाथ झटका और विषय बदल दिया।

सभा के पश्चात् किसी समझदार ने मुझे समझाया, ''प्रधानमंत्री के भाषण के मध्य उत्पात करने के आरोप में तुम्हें दंडित भी किया जा सकता था। उनके अंगरक्षक अथवा पुलिस वाले चाहते तो तुम्हें टांग कर ले जाते और बाहर सड़क पर फेंक देते।''

यह सब तो मैंने सोचा ही नहीं था। मैंने तो केवल एक असतण्य सूचना का विरोध किया था। मेरे मन में कहीं यह शिकायत भी थी कि पंजाब में से हिंदी पूर्णत: विलीन हो गई है। या विलीन कर दी गई है। वह तो मैंने कहा ही नहीं था। इतना ही कहा, ''पर जो मैंने कहा, वह सत्य है।''

''ठीक है। अब उसी सत्य का हार बना कर अपने कंठ में धारण करना। आगे से कोई पुरस्कार तो तुम्हें मिलने से रहा।''

मैं समझ नहीं पा रहा था कि एक गलत सूचना में सुधार करने से पुरस्कारों का क्या संबंध।

उन्होंने केवल इतना ही बताया, ''सार्वजनिक रूप से प्रधानमंत्री के भाषण में उत्पात कर तुम समझते हो कि वे प्रसन्न होंगे। तुम्ण्हारा कोई भविष्य नहीं है।''

मुझे जीवन में बहुत कुछ मिला है और बहुत कुछ नहीं भी मिला है। मैं यही मानता आया कि जो मेरे भाग्य में है, वह मिल गया। किंतु बाद में, जब अटल जी प्रधानमंत्री नहीं रहे तो उनके अत्यंत निकट के एक व्यक्ति ने बताया कि उन्होंने कहा था, ''मैं छह वर्ष इस देश का प्रधानमंत्री रहा किंतु यह व्यक्ति मुझ से कभी कुछ मांगने नहीं आया।''

मैं प्रसन्न था कि उन्होंने मेरे विषय में ऐसी बात कही किंतु यह भी सोचता रहा कि यदि उनके मन में ऐसा कुछ था तो जो देना था, दे देते। इस बात की प्रतीक्षा क्यों करते रहे कि मैं मांगने जाऊं। और मुझे मांगना भी क्या था ... किंतु इतना तो स्पष्ट था कि लखनऊ वाली उस घटना से वे रुष्ट नहीं थे।

विश्व हिंदी सम्मेलन उस वर्ष भोपाल में होनेवाला था, इसलिए उसकी तैयारी के लिए होनेवाली बैठक में मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री शिवदान सिंह चौहान भी उपस्थित थे। दूसरी ओर हिंदी की लेखिका और गोवा की राज्यपाल मृदुला सिन्हा भी उस समिति की सदस्य थीं और लोगों ने क्या कहा, मुझे स्मरण नहीं, किंतु इन दोनों की कुछ उक्तियाँ आज भी हृदय में रड़क रही हैं।

शिवदान सिंह बोले, ''हमें हिंदी को सरल बनाना चाहिए। हम विधानसभा में कुछ ऐसे शब्द बोलते हैं, जो सामान्य लोगों की समझ में नहीं आते। हमें उनको सरल करना चाहिए। नया कानून बनाते समय हम विधि और विधान के संबंध में ऐसे ही अनेक शब्दों का प्रयोग करते हैं। उन्हें सरल बनाना चाहिए।''

मैं जानता था कि वे मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री थे और हमारा सम्मेलन भी उनके ही प्रदेश में होने वाला था। फिर भी उनको बताना तो पड़ेगा न कि वे जो कुछ कह रहे हैं, वह भ्रमित अथवा अज्ञानी मन की उक्तियां हैं। मैंने कह ही दिया, ''ज्ञान के जिस क्षेत्र के जो शब्द हैं, वे तो बोले ही जाएंगे। आप विधि, विधान, संविधान, विधायक और इस प्रकार के अन्य शब्दों को सरल कैसे

करेंगे। दृषि क्षेत्र की चर्चा करेंगे तो उन्हीं शब्दों का प्रयोग करेंगे, जो उस क्षेत्र के हैं। रोगों और औषधियों के नामों को अंग्रेजी में कहा जाएगा तो अंग्रेजी को सरल करने का सुझाव आप कभी नहीं देंगे। तो हिंदी के साथ ही अत्याचार क्यों? यह भ्रम है कि हिंदी कठिन है। शब्द सरल और कठिन नहीं होते। वे ज्ञात और अज्ञात होते हैं। परिचित और अपरिचित होते हैं। उन्हें सरल नहीं करना होता, उनका परिचय प्राप्त करना होता है।''

मैं जानता था कि मेरी बात शिवदान सिंह जी को अच्छी नहीं लगेगी। यह भी जानता था कि वह उनके पद से टकरा कर धवस्त हो जाएगी। वही हुआ भी। मैंने उनको भोपाल में भी ये ही बातें कहते हुए सुना।

मृदुला जी बोलीं कि अंग्रेजी मस्तिष्क की भाषा है और हिंदी मन की। इसलिए नौकरी के लिए अंग्रेजी आवश्यक हो जाती है। ...

मैं कहे बिना नहीं रह सका कि पहले हमें अपने मस्तिष्क के जाले साफ कर लेने चाहिए। प्रश्न यह है हमारे देश में नौकरी के लिए अंग्रेजी की अनिवार्यता क्यों है? संसार के सारे स्वतंत्र देशों में नौकरी के लिए उनकी अपनी भाषा की आवश्यकता होती है, एक हमारा ही देश है जहाँ अंग्रेजी की अनिवार्यता है। हम अपने मन की भाषा में ही नौकरी क्यों नहीं कर सकते।

मुझे समझाया गया कि मुझे मुख्य मंत्रियों और राज्यपालों से टकराने की क्या आवश्यकता है। मैं इस गुमान में न रहूं कि मैं समिति का सदस्य हूं। मुझे समिति से निकाल फेंकने में पांच मिनट भी नहीं लगेंगे।

लगता है कि मुझे सत्य को उजागर करने का रोग है, किंतु उसके संकट?

उन्हीं दिनों विदेश मंत्रालय की हिंदी संबंधी एक बैठक में श्रीमती सुषमा स्वराज ने कुछ लोगों का परिचय देते हुए एक संयुक्त सचिव के विषय में कहा कि वे हिंदी भाषा के अच्छे जानकार ही नहीं, विद्वान् हैं। उन्हें उर्दू का भी अच्छा ज्ञान है। विश्व हिंदी सम्मेलन की तैयारी के संदर्भ में उन्हें कोई दायित्व दे कर नियुक्त किया गया था। यह उनकी पहली ही बैठक थी। शायद इसीलिए सुषमा जी ने उनका परिचय दिया था। किंतु जब वे बोलने के लिए खड़े हुए तो उनके शब्द डगमगा रहे थे। बोलने के लिए शब्द-चयन उनके लिए कठिन हो रहा था। अंतत: चार-छह वाक्यों के पश्चात् अंग्रेजी पर आ गए।

बैठक के पश्चात् हम लोग भोजन की ओर बढ़ रहे थे। संयोग ही था कि वे मेरे साथ-साथ चल रहे थे। मैंने उनकी ओर देखा और मेरे मुख से जैसे स्वत: ही निकल गया, ''सुषमा जी आपकी हिंदी की बहुत प्रशंसा कर रही थीं किंतु मुझे तो लगा कि आपको हिंदी आती ही नहीं है।''

उन्होंने जिस दृष्टि से मुझे देखा, वह आज भी मुझे स्मरण है। लगा वे मुझे अभी, मेरे पद, मेरी नौकरी और जहां कहीं से भी उनके लिए संभव है, हटा देंगे।

किंतु वे संभल गए और बोले, ''हां। मुझे हिंदी नहीं आती।''
वे तत्काल आगे बढ़ गए। वे नहीं चाहते थे कि वे मेरे साथ चलें और मैं कुछ और बोल दूँ।

ऐसी ही अगली किसी बैठक में, जिसमें मॉरिशस की शिक्षा मंत्री आई हुई थीं, भोजन से पहले सुषमा जी और उनमें उपहारों का आदान-प्रदान हुआ। सुषमा जी को उपहार देने के पश्चात् उन्होंने पूछा कि सुषमा जी और किसे उपहार दिलवाना चाहेंगी। सुषमा जी ने मेरी ओर संकेत किया और कहा आप उपहार ग्रहण करें।

बैठक में हमें इतनी मोटी-मोटी फाइलें सौंप दी गई थीं। मेरे लिए उनका बोझ ही कठिनाई पैदा कर रहा था। अब यह उपहार। वह बड़ा सा भारी-भरकम लगने वाला एक डिब्बा था।

जाने कैसे मेरी जिह्वा पर मेरे मन की बात आ गई, ''मेरे पास तो पहले ही काफ़ी बोझ है।''

सुषमा जी ने मेरी ओर देखा, ''नरेन्द्र जी, उपहार सम्मान का विषय है, भार का नहीं।''

उन्होंने सब कुछ संभाल लिया था, किंतु मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मेरे मुँह से ऐसी बातें निकल ही क्यों जाती हैं। मैं बोलने के पहले सोचता क्यों नहीं? विचार करता हूँ तो लगता है कि मन में आई बात को जिह्वा तक आने में समय ही कितना लगता है कि उससे पहले उस पर विचार भी कर लूँ।

मैंने इस विषय में बहुत सोचा। मेरे मन में दो बातें आती हैं : पहली बात है सच बोलने की।

डॉ. नसीम निकहत का एक शेर है :

''सच बोलना भी लाजिम, जीना भी है जरूरी।
सच बोलने की धुन में मंसूर हो न जाना।''

उनका परामर्श उपयोगी है किंतु मुझे लगता है कि सत्य्य में मिलावट हो ही नहीं सकती। कोई सूली पर चढ़ने से बचने के लिए चुप रह जाए या असत्य वचन बोल जाए, यह तो संभव है। प्रत्येक व्यक्ति मंसूर नहीं हो सकता। किंतु प्रत्येक व्यक्ति सत्य भी तो नहीं बोलता। साधारण जीवन में तो सूली चढ़ने की बात नहीं आती।

मैं जमशेदपुर में सूर्या और भास्कर के घर पर दोपहर के भोजन के लिए आमंत्रित था। सूर्या ने कई पकवान बनाए थे। खाना समाप्ति की ओर था कि सूर्या ने कहा, ''नरेन्द्र, तुम्हें मीठा बहुत पसंद है, मैंने तुम्हारे लिए खीर बनाई है।''

मैंने उत्साहपूर्वक खीर ले ली। दो चमच खा भी ली और तब मुझे लगा कि मुझे मीठा तो पसंद है किंतु इतना भी पसंद नहीं है।

''कैसी है?'' वह प्रशंसा सुनने को आतुर बैठी थी।

''चीनी कुछ ज्यादा ही है। किसी चीज को इतना भी मीठा नहीं होना चाहिए कि कड़वी लगने लगे।''

उसका चेहरा लटक गया।

''चीनी तुम्हारे हिसाब से अधिक हो गई होगी किंतु कोई उसकी इस प्रकार निन्दा तो नहीं करता।''

''सच न बोलूँ?''

''ऐसा सच बोलने का क्या लाभ।''

और यह समस्या हमारे समाज में आम है कि सच बोलना चाहिए या नहीं। ऐसा सच नहीं बोलना चाहिए, जो दूसरे को बुरा लगे। किंतु ऐसा सच कहां से ढूंढ कर लाया जाए, जो किसी को बुरा न लगे, जो शिष्ट हो, शालीन हो, मधुर हो, मृदुल हो। मुझे लगता है कि हमारे समाज का आदर्श (शास्त्र) है कि सत्य बोला जाए, व्यवहार (लोक) है कि सत्य न बोला जाए। मैं सोचता हूँ कि सच बोलना है तो ''ऐसा सच'' और ''वैसा सच'' का भेद नहीं करना होगा। नहीं तो वह सच रह ही नहीं पाएगा।

उन दिनों मैं एम. ए. में था। गुरु जी पढ़ा रहे थे और जाने कैसे बौद्ध दर्शन की चर्चा आ गई। बात पुनर्जन्म की थी। वे कह रहे थे कि बौद्ध दर्शन आत्मा को अमर नहीं मानता। इस जन्म के प्रभाव से अगला जन्म होता तो है, किंतु हमारी यही आत्मा अगले जन्म के शरीर में प्रवेश नहीं करती।

मैं खड़ा हो गया और बोला, ''बौद्ध दर्शन के अनुसार एक दीपक से दूसरा दीपक जलता है। न एक लौ दूसरे दीपक में जाती है और न नई लौ जन्म लेती है।''

गुरु जी जाने किस मूड में थे। हंस कर बोले, ''महात्मा बुद्ध आपको यह बता गए होंगे।''

मैं कहाँ चुप रहता। बोला, ''न वे मुझे कुछ बता कर गए हैं और न आपको ही उन्होंने बताया है। मैंने तो भारतीय दर्शन की एक पुस्तक में यह पढ़ा है।'' और मैं पुस्तक का नाम और पृष्ठ संख्या तक बोल गया।

मेरे साथ की कुर्सी पर बैठे रवीन्द्र कुमार सेठ ने मेरी कमीज खींची, ''बैठ बेवकूफ। अपना सारा कैरियर नष्ट करेगा।''

मेरी समझ में यह कभी नहीं आया कि कक्षा में अपनी राय देने से किसी का कैरियर कैसे नष्ट हो सकता है। मेरे सहपाठी और मित्र लोग यह समझाते रहे कि अध्यापकों की बात को कभी इस प्रकार नहीं काटना चाहिए। और मैं इसे अपने अध्ययन का एक अंग मानता रहा हूँ। यह मेरा स्वभाव है या फिर मेरी आरंभिक शिक्षा का अंग। मुझे स्मरण है कि बी.ए. के दिनों में हमें मेजर चंद्रभूषण सिन्हा, जयशंकर प्रसाद का 'आंसू'' पढ़ा रहे थे। कुछ पंक्तियाँ ऐसी आ गईं कि जिनका अर्थ अध्यात्म और शृंगार दोनों क्षेत्रों में हो सकता था। उन्होंने पूरी गंभीरता से उसका आध्यात्मिक अर्थ किया। उनके व्याख्यान के पश्चात् मैं धीरे से बोला, ''सर, इसकी व्याख्या लौकिक शृंगार की दृष्टि से नहीं हो सकती क्या?''

''बिल्कुल हो सकती है। और वह सहज भी होगी।'' अर्थात् वे मुझ से सहमत थे।

वहीं से मैंने सीखा कि अपने अध्यापकों से भयभीत रहने की आवश्यकता नहीं है। उनसे सीखना है तो अपना मन खोल कर उनके सामने रख देना चाहिए। प्रश्न पूछने अथवा तर्क करने से संकोच नहीं करना चाहिए।

अपने इस व्यवहार के लिए एक कारण मेरे पास लेखक का स्वभाव भी है। मैं यह मानता हूँ कि लेखक के मन में अभिव्यक्ति की उत्कट अभिलाषा होती है। शायद यही कारण है कि मन में विचार उठते ही उसके शब्द बोलने लगते हैं। उसके मन में मंथन होता है, चिंतन नहीं होता। चिंतन होता भी है तो अपने बचाव के लिए नहीं होता, सत्य का अन्वेषण करने के लिए होता है। यही कारण है कि सत्य और अभिव्यक्ति की अभिलाषा के मिश्रित प्रभाव से मेरे मन की बात तत्काल मेरी जिह्ववा पर आ जाती है। पर मेरा समाज तो उसके लिए कोई छूट नहीं देता।

अभी दो-चार दिन ही हुए होंगे, जब चित्र मुद्गल से फोन पर बात हो रही थी। इन दिनों कोरोना के दबाव में गृहवास के कारण फोन बहुत बड़ा सहारा है। जो सम्मेलन भी हो रहे हैं, वे भी जूम इत्यादि के भरोसे हो रहे हैं। फोन करने का कारण तो ''आजतक'' के मंच से दिया गया उसका वक्तव्य था किंतु बातों में सब ही बहक जाते हैं। जाने कैसे उसने अपने एक आलोचक पाठक की चर्चा आरंभ कर दी। वे इस कोरोना-पीड़ित समय में भी उसके घर आए थे, अपनी लिखी पुस्तक भेंट करने। वैसे उनका संबंध गोरखपुर से था। उसी संदर्भ में चित्र ने बताया कि कहीं से मेरी चर्चा भी आ गई तो उन सज्जन ने कहा, ''हां नरेन्द्र कोहली। उनमें गुरूर बहुत है।''

मुझे तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ। किंतु मैंने पूछ ही लिया, ''वे कभी मुझ से मिले हैं?''

''नहीं।''

''उन्होंने मेरी कोई पुस्तक पढ़ी है?''

''शायद नहीं।''

मेरी समझ में नहीं आया कि उन सज्जन ने मेरा गुरूर कहाँ से देख लिया। हालाँकि चित्र ने बताया कि उसने उन सज्जन के सामने मेरे अनेक गुणों का वर्णन किया और पूछा कि यदि ऐसे में मुझमें गुरूर है भी तो गलत क्या है।

मैं उस विवाद में नहीं पड़ता कि किन गुणों के कारण व्यक्ति को गुरूर का अधिकार मिल जाता है। मेरे मन में तो प्रश्न यह है कि एक व्यक्ति जो मुझ से कभी मिला ही नहीं, उसने मेरा गुरूर कहाँ से खोज निकाला। पर मेरे लिए यह कोई नई बात भी नहीं है। कई लोग बहुत कुछ कहते रहते हैं और कई लोग बहुत कुछ सुन लेते हैं और उसे सत्य मान लेते हैं। मैं जानता हूँ कि मेरी ख्याति बहुत गुस्सैल, बहुत अशिष्ट, बहुत झगड़ालू व्यक्ति के रूप में है। उसका कारण है भी और अनेक स्थानों पर वह अकारण भी है।

नरेन्द्र कोहली, 175 वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली–110034

✧ ✧ ✧

जिनकी छाया भी सुखदायी है- आवारा मसीहा के विष्णुप्रभाकर

डॉ. शरद पगारे

मै भाग्यवान रहा कि अंगुली पकड़ कर उपन्यास 'गुलारा बेगम', मुझे विष्णु जी के पास ले गयी। 'गुलारा बेगम' पढ़ने के बाद उन्होंने आशीर्वाद पत्र भेजा। ''शरद जी! किसी अच्छी रचना का पहला गुण सम्प्रेरणीयता होता है। वह इसमें है। निरन्तर आगे पढ़ते रहने की उत्सुकता बनी रहती है। उस युग का वातावरण प्रामाणिक लगता है। कहानी कहने का ढंग आकर्षक है। जो चरित्र निर्मल हुए हैं, वे भी विश्वसनीय लगते हैं। अबू शंगी इनू-सलमा की कहानियाँ अधिक प्रामाणिक बन गई हैं। चरित्र की दृष्टि से सलमा सर्वोत्तम है। पढ़ने में मन रचता है। कहानी कहने के ढंग से रोचकता बढ़ गई है।''

बीसवीं सदी में 'गोदान' लिख प्रेमचंद जी ने समकालीन ग्रामीण समाज, उसकी विडम्बनाओं और विसंगतियों से देश को रूबरू कराया। वहीं जैनेन्द्र कुमार ने सुनीता द्वारा उपन्यास साहित्य में एक नई परंपरा आरंभ की। उनके समकालीन श्री विष्णु प्रभाकर ने शरत चन्द्र चटोपाध्याय पर 'आवारा मसीहा' लिख एक नया अध्याय जोड़ा। अपने उपन्यासों के जरिए शरत बाबू ने परिवार, समाज में नारी के त्रासद जीवन को उजागर कर उपन्यास को नया मोड़ दिया। यों भी शरत बाबू ने जो जीवन जीया, जिन्दगी के विभिन्न पहलुओं से रूबरू हुए, अपने रिश्ते की विधवा नारी, उनकी दैहिक मांग, विशेष कर जवान विधवा की इच्छाओं, आकांक्षाओं के दमन का सजीव मन की आंखे चित्रण कर दिमाग खोलने को पर्याप्त है। अपने व अन्यों से मिले जीवनानुभवों का बेबाकी से यथार्थवादी प्रस्तुतिकरण समकालीन लेखकों से अलग खड़ा करता है। शरत् बाबू एक अनुभव को पेश करते लिखते है ''मैने वेश्या से सती के और सती में वेश्या के दर्शन दिए है''।

निम्न मध्यमवर्गीय परिवार से होने के कारण वे अनेकों नारीयों पुरूषों के चरित्रों के सम्पर्क में आए। उन्होंने शराब का भी सेवन किया। पैसेवाले मित्र के साथ कलकत्ता के प्रसिद्ध सोनागाछी वेश्यालय में एक वेश्या के यहाँ शराब व भोजन लिया और रात वहीं गुजारी। सम्पन्न मित्र से एक बड़ी रकम लेकर वेश्या के यहाँ गया था। अत्यधिक मदिरापान से दोनो रात में यही लुढ़क गए। सुबह सोकर उठने

पर मित्र को रूपयों से भरा झोला नहीं मिला। वह वेश्या को गालियाँ बकने लगे पुलिस में शिकायत करने की धमकी देने लगे। नहा कर आ रही गीले बालों को टॉवेल से सुखाकर ही वेश्या का गोरा-गुलाबी मुख अपमान से पीला पड़ गया। तत्काल रूपयों की थैली मित्र के पास फैक दिया दोस लो संभालो अपने ये रूपए। इन पर थूकती भी नहीं। ओ मूर्ख। यहाँ पाँच रूपये के लिए हत्या कर दी जाती है और तुम इतने रूपये ले कर आ गया। हैरान शरत बाबू उस जल से नहाए वैश्या के भुखले इमानदार आलोक को निहारते रह गए। तब उन्होंने उस दिन एक वेश्या में सती के दर्शन किए। इसी से जुड़े दूसरे प्रसंग के बारे में वे लिखते हैं, उनके परिवार की एक जवान सुन्दरी विधवा हो गई। परिवार, समाज एवं गाँव में उसकी उज्वल छवि सती सावित्री की थी। उसे अधिक चमकाने के लिए शरत बाबू को रात मे सोने बुलाती थी। शरत बाबू के लिए आँगन में खटिया पर सोने की व्यवस्था की गई। खुद कमरे में सोने चली जाती। एक आधी रात शरत बाबू की अचानक नीद खुल गई। आंगन के दरवाजे पर खटखट की आवाज सुनी। वे चुपचाप पड़े रहे। तभी रिश्तेदार महिला कमरे से बाहर आई। कुछ काल शरद बाबू को निहारा कि वे सच में सो रहे हैं? जब कोई हलचल न दिखी तो दबे पांव दरबाजा खोल। अंदर एक जवान मर्द आया। दोनो कमरे में चले गए। दो चार घंटे बाद वह आदमी लौट गया। शरद बाबू लिखते हैं उस दिन मैने एक सती में वैश्या को देखा। जिन्दगी की नंगी सच्चाई को पेश कर वे प्रसिद्ध इटालियन उपन्यास कार अलपर्रो मोराविदा और विश्व प्रसिद्ध फ्रेंच उपन्यास कार स्टीफेंन जींग की बंगाल में जा खड़े हुए। इस प्रकार की नंगी सच्चाई को साहित्य में परोसने का साहस न तो, राजेन्द्र चाद, कमलेश्वर, मृदुला गार्ता, मन्नू भण्डारी में थान है। इस प्रकार के अनेक अछूते, अज्ञान, अल्पहपाल प्रसंगो को विष्णु प्रभाकर जी ने अवारा मसीहा में परोसा है।

मै भाग्यवान रहा कि अंगुली पकड़ के उपन्यास 'गुलारा बेगम' मुझे विष्णु जी के पास ले गयी। गुलारा बेगम पढ़ने के बाद उन्होंने आशीर्वाद पत्र भेजा। ''शरद जी। किसी अच्छी रचना का पहल गुण सम्प्रेरणीयता होता है। वह इसमें है। निरन्तर आगे पढ़ते रहने की उत्सुकता बनी रहती है। उस युग का वातावरण प्रामाणिक लगता है। कहानी कहने का ढंग आकर्षक है। जो चरित्र निर्मल हुए है, वे भी विश्वसनीय लगते है। अबू शंगी इनू-सलमा की कहानियाँ अधिक प्रामाणिक बन गई है। चरित्र की दृष्टि से सलमा सर्वोत्तम है। पढ़ने में मन रचता है। कहानी कहने के ढंग से रोचकता बढ़ गई है।'' इस आशीष पत्र के बल पर उनसे मिलने अजमेरी गेट, दरियागंज के उनके निवास धमका। पुरानी शैली के मकान की प्रथम मंजील पर उनका निवास था बैठक के कमरे में एक तख्त पर वे बैठे हुए थे। सामने ढलान वाली डेस्क थी। जिसके भीतर शायद लेखन सामग्री थी। डेस्क पर भी कुछ लिखे पेज थे। घर में थे इसलिए खादी के कुर्ते पायजामें में थे। आयु के अनुसार सिर के अनेक बाल उड़ गए थे।

''अन्दर आ सकता हूँ।'' नम्र स्वर में इजाजत मांगी।

''कौन?''

''जी मैं शरद पगारे। गुलारा बेगम का लेखक।''

''आइए। आइए।'' चश्मे में से उत्सुक नजरों से आमंत्रित किया। कमरे में पहुँच चरण स्पर्श किए। पास रखी कुर्सी पर बैठने लगा तो बड़े स्नेह से रोकर, ''यहाँ हमारे पास बैठिए।'' परे

सरक तख्त पर जगह बनाई। ससंकोच बैठा।

''कब आए? कंहा ठहरे हो? किन-किन से मिले?''

मैने सब बताया।

''पगारे जी। आप भाग्यवान है जो जैनेन्द्र जी के स्नेह भाव में दिल्ली आने पर उनसे हमेशा मिलते रहे। उपन्यास सम्राट प्रेमचंद के बाद वे ही हिन्दी उपन्यास के वर्तमान में शीर्ष पुरोधा है। उनके सारे उपन्यास खरीद कर पढ़े। मार्गदर्शन मिलेगा।'' घड़ी देखी। पांच बज रहे थे।'' चलिए। कॉफी हाऊस चलते हैं।'' घर से बाहर आए।

''रिक्शा रोकूँ।''

''ना पैदल ही चलेंगे। वाकिंग हो जाएगी।''

मन ही मन में घबराया'' कौन से कॉफी हाऊस चलना है?''

कनाट में मोहन सिंह प्लेस की प्रथम मंजिल पर इंडियन कॉफी हाउस है। वहाँ दिल्ली के साहित्याकार आते है। सो एक घंटे अच्छी चर्चा हो जाती है। आपको भी सब से मिलवा दूंगा।''

''आप एक बात भूल रहे हैं शरद जी। रविन्द्रनाथ अकल्पनिय प्रतिभा के कहानियों साहित्य ही नहीं, चित्रकथा संगीत खास कर कविता पर उनका अप्रतिमा अधिकार था। बांग्ला संगीत जो रविन्द्र संगीत के नाम से ही उपज की जाना जाता है। वे बहुमुखी प्रतिभा के सम्राट है परन्तु उनमें एक महानता भी थी। जब शरद बाबू का कथा साहित्य बांग्ला में बहुप्रशस्ति पाठक प्रिय हुआ तो मुझ पाठकों को लगा शायद रवि बाबू ही शरद चटोपध्याय के छद्म नाम से लिख रहे है। उनसे यह सवाल पूछा भी जो, गुरूदेव का उत्तर था।''

शरीर स्थूल कर हाइट भी अच्छी थी। गोरे-गुलाबी गौरवर्ण-सा खिलाल गेहूउआं रंग भरे कपोल। चौड़ी छाती। कसरती बदन। मोटे ताजे होते हुए भी तेजी से चल रहे थे। हांफने में लगभग दौड़ल साथ दे रहा था। एकाध घंटे में कॉफी हाउस पहुंचे। दिल्ली के साहित्याकार अलग-अलग टेबलो पर बैठे चाय-कॉफी की चुस्कियों का आनंद ले रहे थे। कुछ विष्णु जी से मिलन आए। मेरा परिचय कराया। अधिकांश के मुख अभिमान, श्रेष्ठता के भावना से पीड़ित।

''कुछ खाएँगे?''

''ना! आप लेलिजिए।''

''ना। मै सिर्फ कॉफी लूँगा।''

''मैं भी।'' विष्णु जी अत्यंत मृदु भाषी थे।

धीरे-धीरे बोलते थे। शब्द चयन भी सुंदर होता था। तकरीबन दो एक घंटे बाद अनुमति ले अंधेरे के पहले चल दिया। फिर वापसी में पैदल उनका साथ देने का साहस नहीं रह गया।

दूसरे दिन भी मिला ''शरद बाबू पर आवारा मसीहा लिख आपने सर्वकालिक श्रेष्ठतम कार्य किया है। आवारा मसीहा में उनकी जिन्दगी के ''अइपाल, अनछुए पहलुओ पर आपकी कलम इमानदार रही है।''

''आप ठीक कह रहे है। मैने कुछ छिपाने का प्रयास नहीं किया। आवारा मसीहा उनके अनुभवों, संवेदनाओं, लेखन के प्रति सत्यनिष्ठा का आइना है। मानवीय व्यवहार उसके चरित्र की विसंगतियों को बेबाकी से और पूरी इमानदारी से उन्होंने प्रस्तुत किया है।''

''आप शरद बाबू की कृतियों, उनकी जिन्दगी से लगता है गहरे तक प्रभावित-प्रेरित है। वे रविन्द्रनाथ टैगोर के समकालीन थे। मगर कथा साहित्य में उनका योगदान अमूल्य है।'' मेरा अगला सवाल था।

''आप एक बालभूत रहे है शरद जी। रविन्द्रनाथ अकल्परिय प्रतिभा के कहानियों साहित्य ही नहीं चित्र कथा संगीत खास कर कविता पर उनका अप्रतिम अधिकार था। बांग्ला संगीत जो रविन्द्र संगीत के नाम से ही उपज की जाना जाता है। वे बहुमुखी प्रतिभा के सम्राट है। परन्तु उनमें एक महानता भी थी। जब शरद बाबू का कथा साहित्य बांग्ला में बहुप्रशसूति पाठक प्रिय हुआ तो मुझ पाठको को लगा शायद रवि बाबू ही शरद चटोपध्याय के छद्म नाम से लिख रहे है। उनसे यह सवाल पूछा भी जो गुरूदेव का उत्तर था।'' ''ना बाबा ना'' मैं उस नाम से नहीं लिख रहा। पर हां एक बात तो हैं। बांग्ला साहित्य में एक महान लेखक का आगमन हुआ है।'' भला बताइए तो शरद जी क्या हिन्दी का कोई बड़ा लेखक किसी उभरते प्रतिभाशाली लेखक के बारे में इस प्रकार प्रशंसा करेगा? सवाल लाख टके का था, मैं अनउत्तरित।

''सर आवारा मसीहा उपन्यास शैली में लिखा होने से कथात्मक आनंद कैसा है। दूसरे वह शोक का दस्तावेज'' शरद जी! ये तो मै नहीं जानता कॉलेज विश्वविद्यालय के प्रबुद्ध ही शोध की बात कर सकते है। जहां तक उपन्यास शैली का सवाल है उपन्यास भी लम्बी कहानी ही है। जिसे पढ़ने में मन रमता है। उपन्यास की शैली रोचक एवं रोमांचक होती है। आगे पढ़ते रहने को प्रेरित करती है। आवारा मसीहा को उपन्यास शैली में लिखने के कारण ही उसे पाठक-मान्यता एवं पाठक-प्रियता मिली। जहां तक रिसर्च का प्रश्न है वह मैने किया। शरद बाबू की रचनाओं, भाषा, शैली का मैं भक्त था। उनके लेखन के बारे में जानने को उत्सुक था। अत: मैने कलकत्ता ही नहीं मैंने बंगाल के हर गांव, कस्बे, नगर की खाक छानी। उनकी स्कूली शिक्षा, वे जहां जहां जिन रिश्तेदारों के पास रहे वे सभी जगह खंगाली। उनके परिजनो, मित्रों यहां तक कि विरोधियो-आलोचकों से भी मिला। अपने मित्र के साथ बंगाल प्रसिद्ध सोनागाछी के वेश्यालय में जाकर एक रात वहां बिताने का उनका उल्लेख लेखकीय इमानदारी का परिचायक है। पूछाने पर उसने कहा'' बाबू! इतना तो हम नही जानता उन दोनों में से शरद बाबू कौन था? शायद दूसरा ही रहे होंगे? ग्राहक को जरूर चीन्हता है। वो हमारी इमानदारी पर आरोप लगाया। हम देह बेचने वाली जरूर हैं। लेकिन इमान बेचने वाला नहीं।'' बात खतम करते करते उसका गोरा गुलाबी मुख आलोकित हो आया। शायद इसी को शरद बाबू कई पल हैरानी से निहारते रहे होंगे। इससे प्रेरित

प्रभावित हो तब शरद बाबू ने लिखा, ''उस दिन मैने एक वेश्या में सती के दर्शन किए।'' यह उल्लेख उनकी कलम के प्रति लेखकीय ईमानदारी का परिचायक है। उनकी लेखनी बेईमान नही थी। जिन्दगी की सच्चाईयों को उन्होंने बेबाकी से पाठक समाज को पेश किया। इसीलिए वे पाठक प्रिय है। क्योंकि उन्होंने भी अपनी जिन्दगी के अंधेरे कोनो को छिपाया नहीं।

''एक बात और बताना चाहूँगा। गुरूदेव ने बांग्ला साहित्य, संगीत-नाटक, नृत्य रंगकर्म को बोलपुर में शांति निकेतन की स्थापना कर सांस्कृतिक चेतना का आगाज किया। जब कि शरद बाबू ने बांग्ला साहित्य को शीर्ष पर पहुँचाया। उनका देवदास बांग्ला साहित्य ही नही सारे देश की सर्वकालिक सम्पति बन गया।

''देवदास के बारे में आपका क्या विचार है? वह पाठक प्रिय, पाठक प्रशंसित तो है ही फिल्मवालो ने भी उसमें आमदनी की अपार संभावनाए तलाश ली।'' अच्छा पैसा कमाया। निर्माता निर्देशक संजय लीला भंसाली ने पैसा लूटने के लिए पारो और चन्द्रमुखी के बीच नृत्य प्रतियोगिता तक करवा दी। कहानी में काफी तोड मरोड और टूट फूट की।''

''आप सही है। जो सवाल आपने हमसे किया है वही शरद बाबू से उनके प्रशंसक ने किया था। तब उन्होंने हंसते कहा था,'' बन्धु। वह किशोर वय के चरित्रों को उद्घाटित करती है। अत्यंत भावुक रचना है। प्रेम की असफलता प्रेमी को किस तरह से भाव विगलित कर भाव व वेश्यागारी, बना देता है। यही उसमें है। ऐसा उनका विश्वास था जिन्दगी का प्रेम में असफलता का यह एक रश्म है। पगारे जी मुझे लगता है कि देवदास की चन्द्रमुखी सोनागाछी की वही तवायफ थी जिसमें उन्होंने सती के दर्शन किए थे।'' ''आप शायद शरद बाबू की जिंदगी के सच की खोज में रंगून भी गए थे।''

''हां! मैं उन सब से मिला जिन्हें शरद बाबू की भौजी साहित्यप्रेम मिला था। हर एक ने मुझे आगे का रास्ता सुझाया। उनके दूसरे मित्र का पता भी दिया। रंगून की जानकारी भी उन्हीं से मिली थी। सो रंगून भी गया। उसका जिक्र आवारा मसीहा में है। आपको उसमे मिल जाएगा। दुहराने में कोई लाभ नहीं।''

''पगारेजी। उपन्यास शैली का उपयोग करने से जीवनी में रोचकता, उत्सुकता का समावेश हुआ। एक बात और आवारा मसीहा लिखने समय मैने जिस आनंदानुभति का अनुभव किया वह अवर्णनीय है।''

चर्चा समाप्ती के बाद विष्णु जी ने अपने हस्ताक्षर से आवारा मसीहा की प्रति दी जो मेरे पारिवारिक वाचनालय की अमूल्य धरोहर है।

डॉ. शरद पगारे, सुमन कुंज, 110 स्नेह नगर नवलखा, इन्दौर – 452001
मो. : 0731–2467561, 9406857388

✧ ✧ ✧

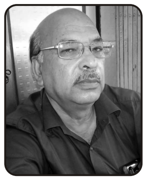

रूप का वह आकर्षण

भारत यायावर

यहाँ विषयांतर में जाकर 'देवदास' उपन्यास के बारे में बताना आवश्यक समझता हूँ। इस उपन्यास की रचना शरत्चन्द्र ने 1917 में की थी। एक बार उन्होंने कहा था- 'देवदास' के सृजन में मेरे हृदय का योग है।' इस उपन्यास में भावुकता से भरे एक असफल प्रेमी का आत्महंता स्वरूप अजीब तरह से नवयुवकों को अपने में आविष्ट कर लेता था और कई भावुक युवकों ने इसे पढ़कर आत्मधात भी कर लिया था। बाद में शरतचन्द्र ने यह स्वीकार भी किया था कि देवदास की आत्मधाती भावुकता को इतना निश्छल और महान् बनाकर आदर्श रूप में उन्हें प्रतिष्ठित नहीं करना चाहिए था, लेकिन वे क्या करते? जब वे लिख रहे थे उस समय वे ऐसे ही प्रेम की पीड़ा से छटपटाते रहते थे।

1934 में रेणु का चौदहवाँ साल चल रहा था। उनके भीतर रूप-पिपासा की लपट-सी उठने लगी थी। यह मानसिक रोग था, जिसकी गिरफ्त में वे आते जा रहे थे। अररिया में कई बंगाली परिवारों के घर उनका आना-जाना होता था। तब तक उन्होंने रवीन्द्रनाथ की अनेक कविताएँ कंठस्थ कर ली थीं। वे शरतचन्द्र के उपन्यासों का भी पारायण कर चुके थे। अपने बंगाली मित्रों के साथ बंगला साहित्य पर उनका गपशप खूब होता। उनके भीतर एक प्रेमी हृदय का निर्माण हो रहा था। उसी समय एक सुन्दर बंगाली लड़की के प्रति उनका आकर्षण बढ़ रहा था। वे उसके घर जाते और उस लड़की से उनकी घंटों बातचीत होती। उस बातचीत में कभी-कभी उसके घर के भाई-माता-पिता भी शामिल हो जाते। रेणु के मन में उसके प्रति एकतरफा प्रेम पैदा हो रहा था। वे कहते कुछ नहीं थे। ऊपर से सामान्य रहते और नियमित स्कूल जाते।

एक दिन स्कूल में उनका एक सहपाठी अपने बस्ते में एक किताब ले आया। वह पुस्तक थी- जवाहरलाल नेहरू की 'पिता के पत्र पुत्री के नाम।' जवाहरलाल नेहरू तब युवा हृदय सम्राट थे। उनका आकर्षक व्यक्तित्व और ओजस्वी भाषण लोग बेहद पसंद करते थे। रेणु के मन में नेहरू के प्रति बहुत आदर था। लोग उनकी इकलौती बेटी इंदिरा प्रियदर्शिनी की भी काफी चर्चा करते थे। यह कैसी है? रेणु को भी देखने की जिज्ञासा थी। यह किताब मूल रूप से अंग्रेजी में लिखी गई थी। जवाहरलाल नेहरू ने हिंदी में प्रेमचंद

से अनुवाद करवाकर बहुत अच्छे कागज पर इसे प्रकाशित करवाई थी। किताब के शुरू में आर्ट पेपर पर नवयौवना इंदिरा प्रियदर्शिनी की एक सुन्दर तस्वीर थी।

रेणु ने जब उस पुस्तक को अपने सहपाठी से माँगकर देखी, तो तस्वीर देखकर मुग्ध हो गए। अपने सहपाठी से अनुनय-विनय कर पढ़ने के लिए उन्होंने यह किताब ली। डेरे पर आकर उस फोटो को निहारते रहते। सुंदर मदमाती आँखें। लम्बी नाक। उनके मन-मस्तिष्क पर इतना असर कर गई थी कि वे उसे घंटों निहारते रहते। सुबह उठकर एक बार देखकर नित्यक्रिया करते। फिर स्कूल से आने के बाद बार-बार उसे देखते।

उनके सहपाठी ने पुस्तक लौटाने के लिए कहा तो रेणु ने जवाब दिया- 'एक-दो दिनों में लौटाता हूँ। अभी कुछ पढ़ना शेष रह गया है!'

कुछ दिनों बाद किताब लौटाने के लिए उनका सहपाठी लड़ाई करने पर उतारू हो गया। अंत में, आजिज आकर रेणु ने किताब लौटा दी। उनके सहपाठी ने जब किताब को खोलकर देखा तो इंदिरा प्रियदर्शिनी की तस्वीर गायब थी। वह गुस्से में भर उठा- 'तस्वीर कहाँ गई?' रेणु ने कहा- 'मैंने निकाल ली है और उसे नहीं लौटाऊँगा।'

उनका अपने परम मित्र से इस बात पर बहुत झगड़ा हुआ। बात क्लास टीचर के पास पहुँची। उन्होंने भी रेणु को समझाया। पर रेणु अड़े रहे। हेडमास्टर साहब तक बात पहुँची तो उन्होंने पिटाई भी कर दी। लेकिन रेणु टस-से-मस नहीं हुए और वह तस्वीर नहीं ही लौटाई! ऐसा उस रूप का आकर्षण था।

वे अपनी पढ़ाई जारी रखते हुए रोज स्कूल जाते। लेकिन उस तस्वीर को देखना नहीं भूलते। उसे कई बार मोड़कर अपनी धोती में छुपाकर रखते। जब एकान्त मिलता, एक नजर देख लेते। अंत में वह तस्वीर जब जीर्ण-शीर्ण हो गई, तभी रूप का वह आकर्षण समाप्त हुआ।

इसी समय उन्होंने शरतचन्द्र का उपन्यास 'देवदास' पढ़ा। धीरे-धीरे वे अपने-आपको 'देवदास' समझने लगे, और जिस बंगाली लड़की से वे प्रेम करते थे उसे पारो।

यहाँ विषयांतर में जाकर 'देवदास' उपन्यास के बारे में बताना आवश्यक समझता हूँ। इस उपन्यास की रचना शरत्चन्द्र ने 1917 में की थी। एक बार उन्होंने कहा था- 'देवदास' के सृजन में मेरे हृदय का योग है।' इस उपन्यास में भावुकता से भरे एक असफल प्रेमी का आत्महंता स्वरूप अजीब तरह से नवयुवकों को अपने में आविष्ट कर लेता था और कई भावुक युवकों ने इसे पढ़कर आत्मघात भी कर लिया था। बाद में शरतचन्द्र ने यह स्वीकार भी किया था कि देवदास की आत्मघाती भावुकता को इतना निश्छल और महान् बनाकर आदर्श रूप में उन्हें प्रतिष्ठित नहीं करना चाहिए था। लेकिन वे क्या करते? जब वे लिख रहे थे उस समय वे ऐसे ही प्रेम की पीड़ा से छटपटाते रहते थे। वे छटपटाहट और प्रेम की पीड़ा की कसक एक अपरिपक्व किशोर हृदय की है और वह पार्वती या पारो तक पहुँचने का सही रास्ता स्वयं को समाप्त करना भी ठीक नहीं है। लेकिन 'देवदास' छप चुका था और उसके पाठकों की संख्या बढ़ती ही जाती थी। हिन्दी अनुवाद होकर जब वह हिन्दी प्रदेशों में फैला तो अनगिनत नवयुवकों के हृदय को उसने झकझोर दिया।

'देवदास' में प्रेम की प्रगाढ़ता एक अजीब तरह की बेचैनी पैदा करती है। भावुकता का प्रसार करती है और जो प्रेम के मायाजाल में फँसे हुए हैं, उन्हें तो मानो पागल ही बना देती है।

रेणु प्रेम में पड़े हुए थे और शरत्चन्द्र का देवदास उनके भीतर प्रवेश कर गया था। कुछ दिनों तक इन्दिरा प्रियदर्शिनी की तस्वीर ने इस देवदास का ध्यान पारो से हटाया, पर जब वह मुड़ी-तुड़ी तस्वीर का अस्तित्व समाप्त हो गया, तो फिर पारो की तरफ उनका मन भागने लगा। ऐसे में ही 1934 का साल बीत गया। आठवीं कक्षा उत्तीर्ण कर 1935 में वे नवीं कक्षा में गए। लेकिन उनका मन पढ़ाई से उचट चुका था। वे इधर-उधर से जुगाड़कर कहानी और उपन्यास पढ़ते। साहित्यिक पुस्तकें पढ़ने का यह रोग तो उनमें कम ही उम्र से था, वह अब ऊफान पर आ चुका था।

वे जैनेन्द्र कुमार का कहानी-संग्रह 'फाँसी' पढ़ चुके थे। इसे पढ़कर वे इसके पात्र शमशेर और जुलैका के बारे में घंटों विचार करते रहते। बहुत बाद में उन्होंने 'फाँसी' कहानी के इन दोनों पात्रों को लेकर जैनेन्द्र पर लिखते हुए एक रूपक बाँधने की कोशिश की थी, जो इस प्रकार है-

लोगो,
शमशेर से क्यों डरते हो ?
वह फौलादी है,
पर देखो, कितना झुक जाने को तैयार है!
लेकिन, खबरदार!
उसकी धार के सामने न पड़ना,
वह न्याय की तरह बारीक है।
शमशेर दो बातें जानता है.....
बहादुरी और गरीबी
जिनमें दोनों नहीं, वे क्या आदमी हैं?

...जानते हो, शमशेर प्यार का क्या करता है? उसे कुचल डालता है, फिर जरा रो लेता है और अपने काम में लग जाता है।

रेणु की तब यही मन:स्थिति थी। उनका एक मन फौलादी था और एक मन झुकने को तैयार रहता था। उनका एक मन अपना सबकुछ लुटाकर मुफलिसी को गले लगाना चाहता था, पर बहादुरी को कभी खुद से अलग करना पसंद नहीं करता था।

'फाँसी कहानी में शमशेर और जुलैका प्रसंग पर लिखते हैं-

'और कुछ नहीं शमशेर, और कुछ नहीं?'
'और कुछ नहीं?.... मरते वक्त और कुछ नहीं?'
'नहीं!'
'थोड़ा-सा प्यार?'
'जुलैका, क्या कहती हो?'
'बिल्कुल जरा, जरा-सा प्यार...'

रेणु लिखते हैं- मेरा पूरा विश्वास है कि हिन्दी का प्रिय कवि शमशेर वही है, जिसे जुलैका प्यार करती थी। इसी विश्वास को लेकर जी गया। वरना पार्वती के दरवाजे पर किसी दिन सुबह भीड़ लग जाती और बैलगाड़ी पर लदी हुई लाश को लोग हाथ में अंकित नाम से ही पहचानते। देवदास पढ़ने के बाद ही अपने हाथ पर अपना नाम 'गोदवा' चुका था।

देवदास बने रेणु के मन में पलायनवादी मानसिकता का निर्माण हो चुका था। वे भावुकता के भीषण दौर से गुजर रहे थे। प्रेम के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना उनमें बलवती हो रही थी। एक दिन वे अररिया से फरार होकर भागलपुर पहुँच गए। दो दिनों तक इधर-उधर भटकते रहे। फिर घर की याद आने लगी- माँ, बाबूजी और दादी। सभी भाई-बहन। फिर अपनी प्रिया की याद आई। वे लौट आए। एक बार वे भागकर गौहाटी चले गए। किन्तु, मन को चैन नहीं था।

अररिया में स्कूल जाते, घर आते और गुमसुम रहते। लेकिन पढ़ने का जो रोग लगा था, वह बरकरार रहा। वे हिन्दी और बंगला साहित्य की साहित्यिक किताबें बड़े ही मनोयोग से पढ़ते। एक रोग और भी उनमें लगा था- मेला देखने का। रूप का आकर्षण, प्रेम की ज्वाला, पढ़ने-लिखने के साथ-साथ मेला के अनेक दृश्यों को बहुत गौर से देखना- उनके व्यक्तित्व में समाहित था। ये सभी प्रसंग एक साथ चल रहे थे।

इसलिए इस प्रेम-प्रसंग की कथा कहने के पहले मेला-प्रसंग की कथा कहना जरूरी है।

पूर्णिया जिले में दुर्गापूजा के समय से अगहन महीने तक जगह-जगह मेला लगा करता था। उसमें तरह-तरह की नौटंकी कम्पनियाँ अपना 'खेल' दिखातीं। दुकानें सजतीं। तरह-तरह के सामान बिकते। रेणु स्कूल से भागकर इन मेलों में प्राय: जाते रहते थे। उनकी कहानी 'तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम' में फारबिसगंज में लगे एक मेले का आंशिक चित्र भी उन्होंने उपस्थित किया है, किन्तु अपनी कहानी 'नेपथ्य का अभिनेता' में उन्होंने अपने स्कूली दिनों के मेला देखने के शौक को संस्मरणात्मक रूप में प्रस्तुत किया है।

1929 ई. में रेणु पहली बार गुलाबबाग मेला अपने पिताजी के साथ गए थे। गुलाबबाग पूर्णिया शहर के नजदीक एक व्यापारिक मंडी है। वहाँ के एक बड़े मैदान में यह मेला लगता था और यह पूर्णिया जिले का सबसे बड़ा मेला होता था। रेणु जब पहली बार गुलाबबाग मेला गए थे, तो वहीं पहली बार एक हवाई जहाज को बहुत नजदीक से देखा था। वहाँ कलकत्ता से एक थियेटर कम्पनी आई थी, जिसमें तिल धरने की जगह भी नहीं थी। उन्हें बेहद अजूबा लगा था- मंच पर ही रेलगाड़ी आती-जाती थी- इंजिन सहित, पुक्का फाड़ती, धुँआ उगलती हुई! मंच पर ही लाल-पीली रोशनी में अनेक परियों को उन्होंने पहली बार देखा था और देखते रह गए थे। जीवन में पहली बार थियेटर में यह सब देखकर वे बेहद उत्तेजित हो गए थे और आश्चर्य से भर उठे थे। उनका एक मित्र था बकुल बनर्जी! उसने बताया था कि इस थियेटर कम्पनी में नागेसरबाग मेला से निकाले गए कलाकार ही हैं। इसमें एक कलाकार का अभिनय रेणु को बहुत पसंद आया था। उस कलाकार ने एक रेलवे पोर्टर का अभिनय किया था- वह रेलवे के वेटिंग रूप में सोये हुए लड़के को छुरा से खून कर रहा था। देखकर रेणु का डर से रोम-रोम सिहर उठा था। यह दृश्य भूलता ही नहीं था- गुलाबबाग मेला का वह थियेटर- मंच पर पंजाब मेल का आना- लड़के का खून!

फिर कई साल के बाद सिंहेश्वर मेला में उमाकान्त झा की कम्पनी में इस अभिनेता को उन्होंने पहचान लिया था! अरे यह तो था वही खूनी हत्यारा! लेकिन यहाँ 'बिल्वमंगल' नाटक खेला जा रहा था और चिंताबाई की मजलिस में एक बाबाजी के भेष में वह सुमधुर कंठ से गा रहा था-

काया का पिंजरा डोले रे
साँस का पंछी बोले!

रेणु चौंक पड़े! गुलाबबाग मेला में ठीक हत्यारे की तरह लग रहा था- हाथ में चाकू और लाल-लाल आँखें। पर यहाँ तो ठीक बाबाजी लग रहा है- गेरुआ कपड़े पहने! उस हत्यारे का कथन तो मानों उनको याद ही हो गया था- 'क्यों मेरे हाथ! तू क्यों थरथरा रहा है? तू तो केवल अपने मालिक का हुक्म अदा कर रहा है। मत काँप मेरे खंजर... वक्त बर्बाद मत कर! शिकार सोया है चादर तानकर! ले तू भी अपना काम कर!'

लेकिन यहाँ तो यह सचमुच का बाबा लग रहा है! फिर उसने एक अद्‌भुत कवित्त का पाठ किया-

मृदंग कहै धिक है, धिक है!
मंजीर कहै किनको, किनको?
तब हाथ नचाय के गणिका कहती
इनको, इनको, इनको, इनको!

फिर अद्याप्रसाद की नाटक कम्पनी में 'श्रीमती मंजरी' नामक खेल में वही अंगरेज जज का भेष बनाकर टेबुल पर हथौड़ा ठोंककर बोला था- 'वेल मोंजरीबाई! हाम टुमको सिड़ीमटी मोंजरी का खेताब डेटा हाय। आज से टुमको सिड़ीमटी मोंजरी बोलेगा, समझा!'

फिर इस दृश्य के कुछ समय बाद वह बाबाजी के गेरुए भेष में वही गीत गाता हुआ प्रकट हुआ था- 'काया का पिंजरा डोले रे! साँस का पंछी बोले।'

रेणु के मन में थियेटर के इस अभिनेता के प्रति बेहद आकर्षण था। लेकिन अपने इलाके के रंगमंच के वे भी जमे हुए अभिनेता थे। उनके स्वाभिमान को ठेस लगने से वे तनकर खड़े हो जाते और उसका उत्तर दो टूक दिया करते। उस समय रेणु के भीतर देवदास की आत्मा घुसी हुई थी और दिल बहलाने को वे इधर-उधर भटकते रहते थे।

एक बार फारबिसगंज में मेला लगा हुआ था और अभिनेताओं का दल दिन में पान-सिगरेट-चाय के लिए निकला था। उसमें लैला, मजनूँ, शीरी, फरहाद, राजा, डाकू आदि का रोल करने वाले एक ग्रुप में गपशप करते हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे और यह नया देवदास उनके पीछे-पीछे उनकी बातें सुनता चल रहा था। अचानक 'काया का पिंजरा डोले रे' गाने वाला साधु यानी वह हत्यारा यानी वह अंगरेज जज पीछे मुड़ा और इस देवदास को कड़े शब्दों में फटकारा- 'क्यों बे छोकरे! इस तरह क्यों घूम रहा है हमारे पीछे-पीछे? पॉकेट मारेगा क्या?'

यह देवदास बने रेणु के आत्मसम्मान पर आधात था। उनके अहं को चोट लगी थी। उन्होंने करारा उत्तर दिया- 'आपके पॉकेट में है ही क्या जो कोई मारेगा?'

'क्यों? तू यह कैसे जानता है कि मेरा पॉकेट खाली है?' उसने चकित होकर पूछा था।

रेणु के भीतर से तब देवदास निकलकर फुर्र हो गया था। उनके शिक्षक ने उन्हें सिखाया था कि अपरिचित आदमी से जब भी बात करो, अंग्रेजी में करो। क्योंकि अंग्रेजी बोलने से रौब जमती है और स्कूल का नाम भी होता है। लोग कहते हैं कि देखों इस स्कूल का विद्यार्थी फर्राटे से अंग्रेजी में बात कर लेता है। लेकिन उनके भीतर हिन्दी के प्रति बेपनाह प्रेम था, इसलिए अपनी अंग्रेजी को भीतर ही रोककर उन्होंने हिन्दी में कहा- 'क्यों, रात को जो भीख माँग रहे थे- दाता तेरा भला करे!'

वह अभिनेता पिछली रात को नाटक में भिखारी का अभिनय कर रहा था। उसी की याद रेणु ने दिलाई थी। उनकी बात सुनकर सभी अभिनेता ठठाकर हँस पड़े थे। उसने कहा- 'यह छोकरा तो बहुत तेज है!'

तब रेणु की अंगरेजी बाहर आई और उस अभिनेता को झाड़ते हुए उन्होंने कहा- 'यू सी मिस्टर रेलवे पोर्टर-ऐक्टर! डोंट से भी छोकरा! आई एम एक हाई स्कूल स्टूडेंट! यू नो?'

रेणु के इस अंदाज में कहे गए शब्दों पर फिर सभी ठठाकर हँस पड़े।

वहीं मेला में घूमते हुए उनकी नजर एक आदमी पर पड़ी। वह गोदना गोद रहा था। रेणु के भीतर से फिर घायल प्रेमी देवदास जाग्रत हुआ और उन्हें लगा कि जब उनकी लाश लावारिश रूप में पड़ी होगी तो लोग कैसे पहचानेंगे? उन्होंने अपने नाम के प्रथमाक्षर को एक कागज पर लिखकर गोदना वाले को दिया- F.N.M.A और उनकी बाँह पर गोदना अंकित हो गया।

1935 ई. में नौवीं कक्षा में वे पढ़ रहे थे। देवदास की भावुकता भरी छाया से वे लिप्त होते और फिर मुक्त होते। उनकी पारो की शादी तय हो गई थी। उसके परिवार में गहना-जेवर खरीदने की चिन्ता सता रही थी। एक दिन देवदास जी अपने गाँव गए और अपनी माँ के गहने जाकर दे आए। घर में जब जेवर की खोज शुरू हुई तो पिता का संदेह पुत्र पर हुआ। उन्होंने रेणु से पूछा तो उन्होंने अपने पिता को सब बातें बता दीं। फिर यह भी बताया कि उसकी शादी हो गई है और वह ससुराल चली गई है।

फिर रेणु के भीतर का देवदास फफक-फफककर रोने लगा!

पिता उसे देखते रह गए। उनके हृदय में दुख की लहरें उठने लगीं। उन्होंने सोचा था कि बेटा हमारा बड़ा नाम करेगा! लेकिन यह पुत्र तो प्रेम में पड़कर नालायक हो गया था अर्थात् किसी काम का नहीं रह गया था। घर भर में मातम पसर गया था। उसने यह भी घोषणा कर दी कि अररिया स्कूल में अब वह नहीं पढ़ेगा।

देवदास बने रेणु गुमसुम रहते। माँ उनको जबरदस्ती कुछ खिलाती, वरना भूखे रहते। फिर उन्होंने रवीन्द्र और शरत को विधिवत पढ़ना शुरू किया। उनके बंगला साहित्य के गुरु फुदो बाबू हर सप्ताह आते और रेणु की अनेक जिज्ञासाओं को शांत करते। रेणु को रवीन्द्र की अनेक कविताएँ तब याद हो गई थीं। हिन्दी कविता और कथा-साहित्य भी वे मनोयोग से पढ़ते थे। वे ऋषभचरण जैन के कथा-साहित्य को भी बड़े ही चाव से पढ़ते।

रेणु अररिया स्कूल में पढ़ना नहीं चाहते थे, इसलिए औराही में ही रहते। उनके पिता ने उन्हें बहुत समझाया और हाथ पकड़कर स्कूल ले गए। फिर उनको अपनी कक्षा में जाकर बिठा दिया। फिर गाँव चले आए। कुछ देर के बाद रेणु मियाँ भी स्कूल से फरार होकर अपने गाँव चले आए। लेकिन पिताजी की मार न पड़ जाए, इसलिए धान रखने के कोठार में जाकर छुप गए। कोठार में धान भरा हुआ था। उसमें छुपने के लिए पैर को मोड़ना और सिर को झुकाकर रखना आवश्यक था। ऐसी दशा में कुछ देर रहने के बाद ही उनका दुबला-पतला शरीर भी अकड़ने लगा। उनके सामने समस्या थी कि इतनी कम जगह में मेंढक की तरह बैठा कैसे जाए। वे कभी-कभार हाथ-पैर फैलाते तो खटर-पटर की आवाज सुनाई पड़ती। किसी ने कोठार की जब यह हलचल सुनी तो जोर से चिल्लाया- चोर ! चोर !

घर के सभी लोग जुट गए- आँय! कोठार में चोर घुसा हुआ है? इसके पहले घर में कई बार चोरी हो चुकी थी। लोग चोरों से परेशान थे। शोर सुनकर पड़ोस के लोग भी जमा हो गए थे। सबने अपने हथियार अपने हाथों में पकड़े हुए थे- आज चोर को पकड़े हुए थे- आज चोर को पकड़ ही लेना है!

रेणु मेंढकावस्था में कोठार में छुपे हुए मुस्कुरा रहे थे। तभी उनकी अपने पिताजी की कड़क आवाज सुनाई पड़ी- 'ऊपर से भाला भोंक दो। जो भी चोर होगा, वहीं राम नाम सत्य हो जाएगा।'

रेणु की जान सूख गई! चोर भी तो आदमी ही है। ऐसा कहीं भाला से भोंककर मारा जाता है! उन्होंने चिल्लाकर कहा- 'पिताजी! मैं रेणु हूँ!' फिर कोठार के मुँह से अपना सिर बाहर निकाला।

'अरे, यह तो रेणु है!' कहकर चोर पकड़ने वाले लोगों की भीड़ छँटती चली गई। शिलानाथ मंडल रेणु का हाथ पकड़कर अपनी बैठकी में ले आए और कहा, 'तुम्हें तो मैं सुबह लेकर स्कूल में तुम्हारी कक्षा में बिठा आया था, फिर क्यों भाग आया?'

रेणु ने सपाट उत्तर दिया, 'मुझे इस स्कूल में नहीं पढ़ना है। मेरा दिल नहीं करता। इसलिए आप मेरा टी. सी. लेकर फारबिसगंज में नाम लिखा दीजिए।'

उनके पिताजी को धीरे-धीरे सभी बातें समझ आ रही थीं। उन्होंने कहा, 'ठीक है!'

दूसरे दिन में हेडमास्टर के कक्ष में बैठकर रेणु का टी.सी. ले रहे थे। टी.सी. पर हस्ताक्षर करते हुए हेडमास्टर साहब ने कहा, 'मंडल जी, इस लड़के को जिस स्कूल में ले जाना है, ले जाओ! दुनिया-जहान की सैर कराओ। लेकिन इस मूर्ख लड़के का कुछ नहीं हो सकता! अस्तबल बदलने से घोड़ा तेज नहीं होता।'

शिलानाथ मंडल ने बस इतना कहा, 'देखते हैं आगे यह घोड़ा भागकर कहाँ-कहाँ जाता है? लेकिन, सर! मैं यह समझ गया हूँ कि यह बँधकर रहनेवाला घोड़ा नहीं है।'

फिर वे रेणु को घर ले आए। आगे जो भी करना था, गणेश प्रसाद विश्वास और रामदेनी तिवारी 'द्विजदेनी' से विचार-विमर्श कर ही करना था।

रेणु के बचपन के शिक्षक गणेश प्रसाद विश्वास ढोलबज्जा स्कूल चले गए थे। वे फारबिसगंज से सटे ढोलबज्जा मिडिल स्कूल में पढ़ाने पैदल ही जाते। 1934 ई. के मध्य में फारबिसगंज के 'ली एकेडेमी' नामक हाई स्कूल में शिक्षक का एक पद रिक्त हुआ और उन्होंने आवेदन दिया। वे वहाँ बहाल हो गए। वे लिखते हैं- 'अष्टम श्रेणी पास कर जब रेणु नवम् में गया तो एक दिन उसके पिताजी ने एकाएक फारबिसगंज में आकर मुझसे एकान्त में कहा- 'गणेश बाबू, मैं जिस उच्च अभिलाषा से प्रेरित आपके विद्यार्थी को अररिया भेजा था, उस पर उसने पानी फेर दिया। वह एक बंगाली लड़की के प्रेम-चक्कर में फँस गया है। घर के पैसे के अलावे उसने कुछ स्वर्ण आभूषणों को भी उसके हवाले कर दिया है। अब मैं भारी परेशानी में पड़ गया हूँ। आप ही इसका उपचार सोचें।'

आगे वे लिखते हैं- 'मैं यह दुर्भाग्यपूर्ण समाचार सुनकर अवाक् एवं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। फिर उन्होंने अपना विचार प्रकट करते हुए कहा- आप अन्यथा न मानें तो मैं पुनः आपको कष्ट दूँ। मैं उसे फिर से आपके जिम्मे लगाना चाहता हूँ। आप उसे सुधारें।'

गणेश प्रसाद विश्वास ने सहर्ष सहमति दी। फिर वे फारबिसगंज में ही रह रहे रामदेनी तिवारी 'द्विजदेनी' से मिले और रेणु के सन्बन्ध में सभी बातें बताईं। उन्होंने भी अपने संरक्षण में रखने की स्वीकृति दे दी। शिलानाथ जी अपने गाँव लौट गए। उन्होंने रेणु को अपने पास बुलाया और समझाया, फिर तिवारी जी और गणेश बाबू के सानिध्य में रहकर फारबिसगंज में ही शिक्षा प्राप्त करने की बात कही। रेणु ने अपनी सहर्ष सहमति दी अर्थात् वे फारबिसगंज में रहने के लिए तैयार हो गए।

एक दिन एक संदूक में अपने कपड़े और किताबों के साथ फारबिसगंज में तिवारी जी के घर शिलानाथ मंडल उनको छोड़ आए। तिवारी जी ने चंदा उगाहकर फारबिसगंज में एक नेशनल स्कूल एक खपड़ैल के मकान में कायम किया था, जो चल नहीं पाया था। उसी में काँग्रेस के कुछ युवा कार्यकर्त्ता रहा करते थे। रेणु पहले भी काँग्रेस के इस दफ्तर में रह चुके थे। तिवारी जी के घर से यह लगा हुआ था। तिवारी जी ने इसी के एक कमरे में रेणु के रहने की व्यवस्था कर दी। यहाँ रहकर उनका सघन अध्ययन का अभ्यास और भी तीव्र हुआ। तिवारी जी इन सभी युवाओं को देश-दुनिया की बातें बताते और बीच-बीच में कई हास्य-प्रसंग सुनाकर हँसाते। समय निकालकर पास में ही स्थित ली एकेडेमी स्कूल में जाकर वे गणेश मास्टर से भी शिक्षा ग्रहण करते।

पूर्णिया जिले में उन दिनों हिन्दी के प्रमुख कथाकार अनूपलाल मंडल रहा करते थे। वे उपन्यासकार थे। उनके उपन्यास भागलपुर के उन्हीं द्वारा स्थापित युगांतर साहित्य संस्थान से प्रकाशित होते थे। इसी नाम से उनकी किताबों की दुकान थी। वे पूर्णिया जिले के विभिन्न कस्बों में जाकर अपनी किताबें बेचा करते थे। उन्हीं के शब्दों में उनका आत्मवृतांत सुनिए : जब मुझे रुपयों की विशेष आवश्यकता पड़ती, एक बड़े बक्स में पुस्तकें भर कर सीधी ट्रेन से फारबिसगंज जा पहुँचता और वहाँ के नेशनल स्कूल में अपने साथी श्री बोकाय मंडल के यहाँ डेरा डालता। उन दिनों नेशनल स्कूल टूट चुका था, उसकी जगह काँग्रेस पार्टी के दस-बारह स्वयंसेवक रहा करते थे, जिनके संचालक मेरे साथी श्री मंडल थे। उन्हीं दिनों मेरे एक श्रद्धास्पद् और हितैषी थे, उनका

मकान उक्त स्कूल के पास था। वे स्वयं अच्छे नाटककार थे और उनके कई नाटक निकल चुके थे। उनका वहाँ बड़ा सम्मान था। वे मुझ पर बड़े सदय और मेरे बड़े प्रशंसक थे। उन्हीं के सहयोग से मेरी सारी पुस्तकों की खपत हो जाती थी।

अनूपलाल मंडल अपनी किताबों पर अपना नाम तब मंडल की जगह साहित्यरत्न लिखते थे यानी अनूप साहित्यरत्न। द्विजदेनी जी के यहाँ यदा-कदा उनकी भेंट शिलानाथ जी से हो जाती थी, जो अपने मंडल को छुपाकर विश्वास बताया करते थे। वे अपने पुत्र की रचनात्मक प्रतिभा की प्रशंसा भी करते रहते थे।

1935 ई. में तिवारी जी के घर पर साहित्यरत्न की भेंट विश्वास से हुई। उन्होंने पूछा- आपका पुत्ररत्न कहाँ है? क्या कर रहा है?

पिता ने बताया कि उसने पढ़ना छोड़ दिया है। वह यहीं काँग्रेस आश्रम में रहकर काँग्रेस पार्टी की वोलंटियरी करता है। शायद आपने देखा भी होगा।

अनूप जी ने कहा- 'काँग्रेस के आश्रम में तो दस-बारह लड़के रहते हैं, इसलिए पहचान नहीं पाया!'

शिलानाथ ने कहा- 'अभी तो आप हैं न! मैं उसे आपसे मिलने को कह दूँगा।'

फिर वे जब लौटने लगे तो रेणु को बता गए कि प्रसिद्ध साहित्यकार अनूप साहित्यरत्न आए हुए हैं और वे तिवारी जी के यहाँ ठहरे हुए हैं। तुमसे मिलना चाहते हैं, मिल लेना।

रेणु अनूपलाल की किताबें पढ़ चुके थे। अपने पिता के लेखक मित्र से मिलना उनका सौभाग्य था। अगले दिन तीन बजे वे अनूपलाल जी का चरण-स्पर्श कर सामने खड़े हो गए और अपना नाम बताया। रेणु के व्यक्तित्व को देखकर वे बहुत प्रभावित हुए- किशोर वय का शरीर, लम्बा और सुडौल, पानीदार साँवला-सलोना रंग, सिर पर सघन केश-कुछ ललाट पर छाए हुए, तीखे नाक-नक्श। वे देखते ही मोहित हो गए।

उन्होंने पूछा- 'तुम कविता करते हो?'

रेणु के सिर हिलाने पर उन्होंने सुनाने के लिए कहा। रेणु ने अपना लिखा एक सवैया सस्वर सुनाया, जिसकी आखिरी पंक्ति थी-

कवि रेणु कहे, कब रैन कटे, तमतोम हटे!

अनूपलाल जी ने तब पूछा- 'तुमने अपना कवि नाम रेणु रखा है। रेणु का मतलब क्या होता है?'

रेणु ने उत्तर दिया- 'जी रेणु का मतलब धूल होता है। मुझे धूल और धरती से बहुत लगाव है!'

अनूपलाल जी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने दिल खोलकर आशीर्वाद दिया और समझाया, 'पढ़ाई करना बहुत जरूरी है। तुम देशहित में काम कर रहे हो, लेकिन भारत जब आजाद होगा तो

पढ़े-लिखे लोगों का ही मान होगा। तुम्हारे बाबूजी तुम्हें पढ़ाना चाहते हैं। तुम्हें कुछ बनते हुए देखना चाहते हैं। वोलंटियरी करने से तुम्हें कुछ लाभ नहीं होगा। देखो रेणु, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। पढ़ना शुरू कर दो। किसी स्कूल में नाम लिखाकर। क्या कहते हो? पढ़ोगे न?'

रेणु ने कुछ क्षण मौन रहकर कहा- 'हाँ-हाँ, मैं पढ़ूँगा। आप मेरे बाबूजी से कह दें, वे मेरे पढ़ने की व्यवस्था कर दें।'

अनूपलाल जी ने कहा- 'वे चार बजे मुझसे मिलने आएँगे, मैं उनसे कह दूँगा।'

रेणु को तो पढ़ने का भीषण रोग लगा ही हुआ था। वे नियमित साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें पढ़ रहे थे। स्कूल में पढ़ने से भी उनकी कोई असहमति नहीं थी। किन्तु, अररिया में रहते हुए उनके भीतर जो प्रेम का संचार हुआ था, वह उन्हें मथता रहता था। द्विजदेनी जी के सानिध्य में रहते हुए वे इस भीषण यंत्रणा से बाहर आने की कोशिश करते रहते थे। वे उन्हें लेकर विभिन्न गाँवों में जाया करते। एक बार वे अपने तीन-चार शिष्यों को लेकर काँग्रेस और गाँधी के संदेश को प्रचारित करते दूर के गाँव के एक सम्पन्न व्यक्ति के यहाँ पहुँचे। उन्होंने सब लोगों के लिए चाय की व्यवस्था की। रेणु के सामने भी चाय का गिलास रखा गया। तब तक वे चाय नहीं पीते थे। उन्होंने चाय पीने से इनकार कर दिया। तब द्विजदेनी जी ने चाय पर एक दोहा बनाकर सुनाया-

दूध-चीनी-चाय डाली, केतली गरमागरम।
एक प्याला पी लो रेणु, सर्वरोग विनाशनम।

यह दोहा सुनकर सब हँसने लगे। गुरु का आदेश था। रेणु ने पहली बार चाय पी। सभी रोगों का विनाश चाय कैसे कर सकती थी? रेणु को तीन रोग लग चुके थे जो असाध्य थे। पहला रोग पढ़ने-लिखने का था। दूसरा स्वाधीनता प्रेमी का और तीसरा प्रेम का! पहले दोनों रोग उनको विकास के पथ पर ले जा रहे थे लेकिन तीसरा रोग तो उनको भीतर-भीतर कुतर-कुतर कर खा रहा था।

गर्मियों के दिन थे। रेणु के मन में इच्छा हुई कि कविगुरु और शरत को देखा जाए। इनकी चर्चा बंगला पत्र-पत्रिकाओं में ही नहीं, हिन्दी की पत्रिकाओं में भी भरपूर रहती थी। रवीन्द्र और शरत् को तो वे लगातार पढ़ते ही रहते थे। एक दिन बिना किसी को बताए वे कलकत्ता के लिए प्रस्थान कर गए। फारबिसगंज से ट्रेन पकड़कर वे कटिहार जंक्शन पहुँचे। यह पूर्णिया जिले का सबसे बड़ा जंक्शन था। वहीं से कलकत्ता के लिए ट्रेन में बैठकर यात्र की। इधर उनके गायब होने से उनके पिता और घर वाले बहुत चिंतित हुए। द्विजदेनी जी ने काँग्रेस आश्रम के सभी शिष्यों से कहा- 'रे रेणु कहाँ है, खोज-खोज!'

लेकिन रेणु तो कलकत्ता पहुँचकर इधर-उधर भटक रहे थे। वे महानगर की भव्यता के चकाचौंधा से विस्मित थे। कई दिनों के बाद खोजते-खोजते रवीन्द्रनाथ के महल के द्वार तक पहुँचे। उनके कपड़े धूल-धूसरित हो गए थे। उन्हें गेट पर ही रोक दिया गया। वे कविगुरु के भव्य भवन को देखते ही रह गए। उन्होंने चौकीदार से पूछा- इस जगह का नाम जोड़ासांको क्यों है? उसने

बताया कि यहाँ पहले एक नाला था, जिसपर लकड़ी के पतले दो पुल बने थे। एक आने के लिए और एक जाने के लिए। पुल को बंगला में सांको कहते हैं। इसी के कारण इस जगह को जोड़ा सांको पुराने जमाने से कहा जाने लगा। अंग्रेजों ने जब इसका निर्माण किया तो नाले को भूमिगत कर दिया।

रेणु को रवीन्द्रनाथ का दर्शन तो नहीं हो सका, लेकिन अब शरत से मिलना था। उन्होंने शरत के घर का पता लगाया तो उन्हें मालूम हुआ कि दक्षिण कलकत्ता के बालीगंज इलाके में 24, अश्विनी दत्त रोड में उनका मकान है। जैसे-तैसे वे वहाँ पहुँचे। पर शरत के मकान को खड़ा होकर देखा और सोचा- एक लेखक अपने दम पर इतने बड़े मकान का निर्माण करवाकर रह रहा है। यह बड़ी बात है। फिर उनके मन में आया कि कलकत्ता आए पाँच दिन हो गए हैं और मेरी माँ तथा बाबूजी चिंतित हो रहे होंगे। पितातुल्य तिवारी जी मुझे खोजते हुए भटक रहे होंगे। घर लौटना चाहिए। जो रकम थी, वह भी खत्म होने वाली थी। वे घर की ओर लौटे। घर लौटते हुए उनके मन में विचार आया कि इस तरह फटेहाल घर जाना ठीक नहीं है। वे पूर्णिया के बाद जैसे ही गढ़बनैली स्टेशन आया, उतर गए। वहाँ से वे बड़ी बहन लतिका की ससुराल बरेटा गाँव पहुँचे। दीदी ने नहला-धुलाकर खाना खिलाया। दूसरा कपड़ा पहनने को दिया और पहने हुए कपड़े को धोकर सुखा दिया। दो दिन आराम करने के बाद शरीर में स्फूर्ति आई। फिर घर की ओर प्रस्थान करने के लिए स्टेशन आए।

गढ़बनैली का छोटा-सा स्टेशन। प्लेटफॉर्म पर कोयले की छाय बिछी हुई। ऊपर से पुरवा हवा के साथ झमाझम बारिश होने लगी। जोगबनी की तरफ जानेवाली ट्रेन जब पहुँची तो उसमें हर डब्बे के दरवाजे पर अपार भीड़। बहादुर लोग ठेलम-ठेल कर किसी तरह भीतर प्रवेश कर रहे थे। बारिश के कारण हर डिब्बे की खिड़कियाँ यात्रीगण बन्द किए हुए थे। रेणु इधर-उधर पानी में भींगते हुए भीतर घुसने की कोशिश कर रहे थे, पर सफल नहीं हो पा रहे थे। गार्ड साहब की तीखी सीटी के बाद इंजन का मोटा सुर बजा। गाड़ी चल पड़ी। तब तक रेणु इधर-उधर दौड़-भाग ही कर रहे थे।

चलती हुई गाड़ी का सामने का जो डिब्बा मिला, उसका हैंडल पकड़कर वे लटक गए। दरवाजा बन्द था। बारिश लगातार हो रही थी। दूसरे डिब्बे के दरवाजे पर एक आदमी गिरने ही वाला था कि उसके मित्र ने कहा- हत्था पकड़। हत्था! और इधर कुशाग्र बुद्धि रेणु ने भी हत्था पकड़ लिया।

रेणु ने इस प्रसंग को अपने ही दिलचस्प अंदाज में लिखा है- 'उस समय प्लेटफॉर्म पर जो हो-हल्ला हो रहा था- वह मेरे ही लिए। गढ़बनैली के अद्य-पगला प्वाइंट्समैन की बोली आज भी कानों के पास स्पष्ट गूँज जाती है- 'ए-य! छोटे मियाँ- आँ-आँ! मरेगा साला!'

छोटे मियाँ उसने मुझे ही कहा था और गाली मुझे ही दी गई थी। बात यह है कि हमारे इलाके में उन दिनों पाजामा पहनने का रिवाज आम नहीं हुआ था। इसे मुसलमानों का ही पोशाक समझा जाता था। पाजामा नहीं-सूथना!

रेणु भी पहले धोती ही पहनते थे। हाल-फिलहाल में ही उन्होंने पाजामा पहनना शुरू किया था। पाजामा पहनने के कारण ही मियाँ कहा गया था। उन्होंने सोचा- ...छोटे मियाँ मरेगा। हवा

और बारिश की मार को कब तक बर्दाश्त कर सकेगा! जलालगढ़ पहुँचने के पहले ही वह गिरेगा-मरेगा। छोटे मियाँ काँप उठा। लपककर 'हत्था' पकड़ते समय ही उसने दरवाजे पर फर्स्ट क्लास का रोमन अंक देख लिया था। उसने सोचा- अन्दर कोई अंगरेज या एंग्लो इंडियन बैठा होगा। अनुनय-विनय करने पर दरवाजा खोलेगा। खादी का पाजामा-कुर्ता देखकर बूट की ठोकर मारकर गिरा देगा। छोटे मियाँ का कलेजा धड़कने लगा। जीभ सूखकर पहले लकड़ी हो चुकी थी। मरता क्या न करता!

छोटे मियाँ के मुँह से ब-मुश्किल निकला- 'ओपेन सर! प्लीज! आई एम डाईंग-डाईंग-ओपेन!!'

दरवाजा खुला। एक गोरी कलाई, एक गोरा मुँह?

छोटे मियाँ ने आँखें मूँद लीं- अब बूट मारा!

हैंडिल से हाथ कैसे छुटा और मैं डब्बे के अन्दर कैसे गया- सो, न आज याद है और न उस दिन!

गौर वर्ण व्यक्ति कोई गोरा या एंग्लो नहीं? शुद्ध खादीधारी! स्वजनोचित मुस्कान? शुद्ध हिन्दी में ही उन्होंने पूछा, 'क्यों? चलती गाड़ी में क्यों सवार हुए आप?'

'जी, गाड़ी यहाँ ठहरना ही नहीं चाहती......। तब गढ़बनैली में कभी-कभार ही गाड़ी रुकती थी। कोई रुक गई तो जल्दी चढ़ जाओ, नहीं तो स्टेशन पर किसी और गाड़ी के रुकने की प्रतीक्षा करते रहो।

'कौन-सा स्टेशन था यह?'
'गढ़बनैली!'
'कहाँ जाना है?'
'सिमराहा स्टेशन!'

मैं लज्जित हुआ। क्योंकि बर्थ पर बैठी हुई लड़की रेणु के भींगे कपड़ों को देखकर शुरू से ही मुस्कुरा रही थी- एक ही अंदाज में। भले आदमी ने उस लड़की से कुछ कहा। न अंगरेजी, न हिन्दी, न ही बंगला-मैथिली। किन्तु, एकदम ग्रीक या चीनी भी नहीं। मैंने जितना-सा समझा- ठीक ही समझा। उन्होंने कहा था- अभी तो यह गिरकर मरता।..... लूगा? कपड़े को हमारे गाँव में 'लूगा' ही कहते हैं।

'लूगा' सुनते ही मुस्कुराती हुई लड़की उठी। चमड़े के बक्स से खादी की धोती निकालकर वह अपनी भाषा में बोली, 'धोती तो हुई लेकिन कुर्ता?'

मैंने कहा, 'क्या जरूरत है? सूख जाएगा.....।'

भद्र व्यक्ति ने मेरे हाथ में धोती देते हुए बाथरूम का दरवाजा दिखलाया। शहर की धुली खादी की महीन धोती पहनकर निकला- देखा, एक धुला हुआ हाफ शर्ट! पहनकर देखा- बिल्कुल फिट। कमीज के अन्दर गर्दन के पास लाल सूत से एक मोनोग्राम अंकित था टी.पी. क...।

गाड़ी जलालगढ़ स्टेशन पर आकर रुकी। चेकर ने मुझे गढ़बनैली में ही देखा था। अत: गाड़ी रूकते ही दौड़ा आया- 'कहाँ वह छोकरा?' फिर मुझ पर दृष्टि पड़ते ही कर्कश स्वर में चिल्लाया- 'बाहर निकलो!'

भद्र व्यक्ति ने उसे रोककर कहा, 'सिमराहा तक इसके पास थर्ड-क्लास का हाफ टिकट है। फर्स्ट क्लास का बना दीजिए।'

धोती-कुर्ता लेने के समय मैंने थोड़ा 'किन्तु-परन्तु' किया था। इस बार कुछ बोल ही नहीं सका। उधर वह लड़की, जो मेरी ही उम्र की रही होगी- मुस्कुराती जा रही थी।

इसके बाद, भले आदमी ने मुझे अपने पास बैठाया।

नाम-धाम, पढ़ाई-लिखाई के बारे में पूछा। मैंने देखा, लड़की 'चाँद' मासिक पत्रिका को खोलकर हँसी को छुपाने की चेष्टा कर रही थी।

मैंने कहा- 'इन स्कूलों में मेरा मन नहीं लगता है। पहले गुरुकुल कांगड़ी जाना चाहता था। बाबूजी तैयार नहीं हुए। अब कहता हूँ शान्तिनिकेतन भेज दीजिए। तो माँ तैयार नहीं होती।'

लड़की ने 'चाँद' के पृष्ठों को बन्द कर रख दिया। इस बार भले आदमी ने भी मुस्कुराना शुरू किया। मैं 'चाँद' पत्रिका का अंक हाथ में लेकर बोला- 'नया अंक है!' फिर 'दुबेजी की चिट्ठी' निकालकर पढ़ने लगा। (चाँद पत्रिका में 'दुबेजी की चिट्ठी' एक व्यंग्य स्तम्भ था, जिसे उस समय के प्रसिद्ध साहित्यकार विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक लिखा करे थे।) फिर बात कैसे बढ़ी कि मैंने 'भारत-भारती' का सस्वर पाठ शुरू कर दिया- 'भगवान भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती!'

भद्र व्यक्ति मंत्रमुग्ध हुए थे या नहीं, किन्तु मुस्कुराहट मुझे पल-पल उत्साहित कर रही थी। और उनके साथ की लड़की की मुस्कुराहट मुझे उत्तेजित। इसके बाद रवीन्द्रनाथ की कई कविताएँ- 'दिनेर शेषे-घूमेर देश घोमता परा ए छाया... भूलाले रे भूलाले मोर प्राण... न वासरे करिलाम पन लेबे स्वदेशेर दीक्षा...।

बारिश रूक गई थी। मेरा स्टेशन निकटतर होता जा रहा था। स्वरचित कविता सुनाने का समय नहीं था। अब मेरी प्रश्नावली की बारी थी।

'आपका नाम? कहाँ जाइएगा? कहाँ से आ रहे हैं? घर कहाँ है?'

नाम सुनकर तनिक चमत्कृत हुआ था, 'कोइलावाला'?

घर विराटनगर बताया, तो मुझे अचानक अपने 'दोस्तबाप' की याद आई- विराटनगर के खरदार साहब- जिन्हें मैंने देखा नहीं। माँ और बाबूजी के मुँह से सुनी कहानी- दोस्तबाप की.....।

मैंने कहा, 'मेरे दोस्तबाप...... माने मेरे बाबूजी के मित्र विराटनगर में रहते हैं।'

'क्या नाम है आपके पिताजी के मित्र का?'

'खरदार साहब!'

बस, रूपवती कन्या की हँसी छलक पड़ी। बेवजह की हँसी का क्या अर्थ? मैं अप्रतिभ तनिक भी नहीं हुआ, किन्तु!

'कौन खरदार साहेब? वहाँ तो कई खरदार साहेब हैं। नाम क्या है उनका?....... खरदार साहेब नाम नहीं। वह तो आपके यहाँ जैसे कहते हैं न- मुन्सिफ, डिप्टी कलक्टर.......।'

छोटे मियाँ का मुँह छोटा हो गया। तो, खरदार साहब नाम नहीं? वह कुनमुनाया, 'नाम नहीं?...... जिन्होंने टेढ़ी में आश्रम बनाया था। जिनका स्कूल है।'

'अच्छा! कभी आप गए नहीं विराटनगर? नहीं? तो आइए कभी। आपके पिताजी के मित्र पहले से हैं- अब आपसे मेरी मिताई.....।'

इस बार वह सौभाग्यवती हँसते-हँसते मर गई मानो।

मैंने कहा, 'आने का मन तो बहुत दिनों से है। लेकिन.....।'

मेरी मंजिल निकटतम की सीमा रेखा पारकर डिस्टेण्ट सिग्नल के पास पहुँची तो सकपकाया- 'ये कपड़े? कमीज-धोती?'

बोले, 'ठीक है आप आ ही रहे हैं!'

अपने गाँव का स्टेशन- सिमराहा स्टेशन- इतना नजदीक पहुँचने का दुख पहली बार हुआ। इसके पहले गाड़ी पर सवार होते ही सोचता- बीच के स्टेशनों पर नहीं रुककर- सीधे हमारे स्टेशन पर आकर क्यों नहीं रुकती गाड़ी?

रेणु ने अपने जीवन के प्रसंगों को लिखते हुए दृश्यों की संरचना सही की है, किन्तु कुछ तथ्यों में उनसे भूल हो जाती थी। विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला से ट्रेन में पहली बार उनकी भेंट हुई थी, किन्तु वे द्वितीय श्रेणी में यात्रा कर रहे थे। उस समय उनकी उम्र बाईस साल की थी। उनकी पत्नी सुशीला कोइराला पन्द्रह साल की थी। वे तब पटना से अपनी पत्नी को लेकर विराटनगर जा रहे थे। रेणु की साहित्यिक प्रतिभा से वे चमत्कृत हुए थे। अपने घर जाकर अपने इस नवोदित मित्र के बारे में रस ले-लेकर बताया था। इस प्रसंग को उन्होंने रेणु पर लिखे अपने संस्मरण में इस प्रकार बताया है-

बात 1935 की है। महीना मुझे याद नहीं। मैं अपनी पत्नी सुशीला के साथ अपने घर विराटनगर (नेपाल) जा रहा था। हमारी नई-नई शादी हुई थी। हम कटिहार से जोगबनी जाने वाली गाड़ी में सफर कर रहे थे। जोरों की वर्षा हो रही थी। एक स्टेशन से गाड़ी जब खुली तो देखता हूँ कि एक किशोर हमारे डिब्बे के बाहर डंडी पकड़कर पाँवदान पर खड़ा है। गाड़ी साँय-साँय करती हुई द्रुतगति से दौड़ने लगी थी। वह युवक भींगकर पानी-पानी हो रहा था। हमारा डब्बा सेकेंड क्लास का था। उन दिनों का राजसी सेकेंड क्लास! उस डब्बे में हम केवल पति-पत्नी थे। हम दोनों इसी उधेड़बुन में थे कि उस नितांत अपरिचित व्यक्ति को डब्बे के अन्दर आने दिया जाए या नहीं। क्या यह कोई उचक्का तो नहीं है हो सकता है वह चोर हो और हमें एक प्रकार से निर्जन पाकर हमारी हत्याकर हमारा सामान लेकर चलता बने! लेकिन सुशीला से रहा नहीं गया। उसकी सतही सही, उस समय की हालत पर तरस खाकर उसने डब्बे का दरवाजा खोल दिया। अन्दर आने पर जब उसने देखा कि डब्बे में पति-पत्नी सरीखे केवल दो ही प्राणी हैं तो वह सकते में आ गया और सीट पर बैठने से कतराता रहा, लेकिन बैठने के लिए हमारे बारम्बार अनुरोध पर वह एक सीट पर

दुबककर बैठ गया।

रेणु और विशेश्वर प्रसाद कोइराला को इस प्रथम भेंट की याद जीवन भर रही। और रेणु के जीवन में भी यहीं से एक मोड़ आया।

जब वे सिमराहा स्टेशन पर उतरकर पाँव-पैदल अपने गाँव पहुँचे तो अपने पिताजी के एक मित्र से भेंट हुई। उन्होंने रेणु से पूछा, 'अरे तुम इतने दिन कहाँ थे? तुम्हारे पिताजी आग-बबूला हैं। कह रहे हैं कि जो नया खड़ाऊँ बनवाया है, उसी से इस बार पिटाई करूँगा।'

रेणु पिता की पिटाई की बात सुनकर डर गए। उन्होंने सोचा- अभी घर जाने में खतरा है! उन्होंने कहा, 'चाचाजी, आप मेरे पिताजी को कह दें कि मैं सकुशल हूँ। लेकिन वे जब तक गुस्से में रहेंगे और मारपीट करेंगे, मैं घर नहीं आऊँगा। मैं फारबिसगंज जा रहा हूँ।'

सुबह की पहली गाड़ी से रेणु फारबिसगंज से जोगबनी पहुँचे। जोगबनी में रेलवे का टी-स्टॉल था, जहाँ बहुत अच्छी चाय बनती थी। वे रात में खाना नहीं खा पाए थे। चाय पीकर तृप्त हो गए। फिर भारत और नेपाल सीमा पर नो मेन्स लैंड अर्थात् दस गज जमीन को पार किया। यह पहली बार सरहद के पार जाना था। उस पार एक जूट-मिल बन रहा था। रेणु नेपाल की धरती पर पहली बार आए थे, लेकिन नेपाल के बारे में तब भी काफी जानकारी रखते थे। उन्होंने लिखा है- 'स्टेशन के पूरब, सीमा के पास अन्य यात्रियों के साथ मोटर-लौरी की प्रतीक्षा करते समय मालूम हुआ कि बीड़ी-सिगरेट जिसके पास पकड़ी जाएगी- उसको काठ से धुन दिया जाएगा और जेल भेज दिया जाएगा। बात उन दिनों की है जब नेपाल के महाराजाधिराज यानी पाँच-सरकार के जन्मोत्सव में एकाधा दीप टिमटिमाते थे और तीन-सरकार (प्रधानमंत्री) के जन्म-दिन पर विराटनगर में होली और दीपावली एक साथ मनाई जाती थी। तीन दिनों तक उत्सव के बाजे बजते रहते थे।

और रेणु सिमराहा लौट गए। पर कोई ट्रेन नहीं थी। वे पैदल ही लगभग चौदह किलोमीटर की दूरी तय कर रेलवे लाइन पर चलते हुए अर्द्धरात्रि को फारबिसगंज पहुँचे। पिताजी की यह उक्ति वे बार-बार स्मरण करते-

पाँच वर्ष की उम्र तक लालन
उसके बाद सोलह वर्ष की उम्र तक ताड़न
सोलह की उम्र के बाद पुत्र से मित्रता के व्यवहार का पालन।

लेकिन अभी तो वे पन्द्रह साल के ही थे यानी ताड़न की अवस्था। वह भी खड़ाऊ से ताड़न।

फारबिसगंज शहर में सब दुकानें बन्द थी। वे स्टेशन के पास बन्द हो चुकी गाजीराम की दुकान के सामने के एक बेंच पर पड़े रहे। काँग्रेस आश्रम जाने का मतलब था फँस जाना। उन्होंने

विराटनगर जाने का फैसला कर लिया था। उन्होंने सोचा कि भागलपुर, गौहाटी और कलकत्ता तो घूम आया हूँ, लेकिन अब तक हिमालय की ओर नहीं गया। बगल में सटे मोरंग जिले में नहीं गया। विराटनगर अब तक नहीं गया। तो मौका है, कल की ट्रेन पकड़कर जोगबनी जाना है और वहाँ से विराटनगर तो सटा ही हुआ है।

माँ उनको कई बार एक महापुरुष की कहानी सुनाती थी कि वह जब गौने के बाद ससुराल आई थी तो चौथे ही दिन शाम को एक टप्परगाड़ी से एक देवता जैसा पुरुष और उसके साथ देवी दुर्गा जैसी उनकी स्त्री का पदार्पण हुआ। उनकी स्त्री बुखार से लबेजान थी बेचारी? तुम्हारे बाबूजी ने तुम्हारी दादी से कहा था- 'माँ, शायद देवता ही है वे!'

वे देवता यानी दिव्य पुरुष विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला के पिता कृष्ण प्रसाद कोइराला थे। नेपाल की राणाशाही के दमन से बचने के लिए वे नेपाल से चुपचाप पलायन कर गए थे। विराटनगर से औराही-हिंगना बैलगाड़ी से लगभग बीस किलोमीटर दूर चलकर आए थे। जब उनकी पत्नी स्वस्थ हो गई थी, तब जाते हुए उन्होंने कहा था- 'ये दिन और यह दोस्ती कभी नहीं भूलूँगा!'

रेणु जी के पिताजी के वे दोस्त थे और रेणु ने उन्हें कभी नहीं देखा था, पर वे जानते थे कि ये खरदार साहेब उनके 'दोस्तबाप' हैं। पिछले साल उनके बाबूजी ने बताया था कि नेपाल के नए प्रधानमंत्री ने खरदार साहब को नेपाल के विराटनगर में स्कूल खोलने की इजाजत दे दी है और उन्होंने वहाँ एक 'आदर्श विद्यालय' की स्थापना की है। इसके पहले बिहार में वे टेढ़ी आश्रम में शिक्षा का आदर्श रूप प्रस्तुत कर रहे थे। जब विराटनगर में उन्होंने आदर्श विद्यालय की स्थापना की थी, तब टेढ़ी आश्रम के सभी तपे-तपाये शिक्षक भी आ गए थे। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और काकोरी कांड के अभियुक्त मन्मथनाथ गुप्त के पिताजी इस स्कूल के हेडमास्टर थे।

सुबह की पहली गाड़ी से रेणु फारबिसगंज से जोगबनी पहुँचे। जोगबनी में रेलवे का टी-स्टॉल था, जहाँ बहुत अच्छी चाय बनती थी। वे रात में खाना नहीं खा पाए थे। चाय पीकर तृप्त हो गए। फिर भारत और नेपाल सीमा पर नो मेन्स लैंड अर्थात् दस गज जमीन को पार किया। यह पहली बार सरहद के पार जाना था। उस पार एक जूट-मिल बन रहा था। रेणु नेपाल की धरती पर पहली बार आए थे, लेकिन नेपाल के बारे में तब भी काफी जानकारी रखते थे। उन्होंने लिखा है- 'स्टेशन के पूरब, सीमा के पास अन्य यात्रियों के साथ मोटर-लौरी की प्रतीक्षा करते समय मालूम हुआ कि बीड़ी-सिगरेट जिसके पास पकड़ी जाएगी- उसको काठ से धुन दिया जाएगा और जेल भेज दिया जाएगा। बात उन दिनों की है जब नेपाल के महाराजाधिराज यानी पाँच-सरकार के जन्मोत्सव में एकाध दीप टिमटिमाते थे और तीन-सरकार (प्रधानमंत्री) के जन्म-दिन पर विराटनगर में होली और दीपावली एक साथ मनाई जाती थी। तीन दिनों तक उत्सव के बाजे बजते रहते थे। इसीलिए, छोटी-सी बात पर भी काठ से धुना जाने का खतरा था। इतनी-सी राजनीतिक चेतना उस समय भी थी।'

नेपाल की सीमा में प्रवेश कर रेणु किसी वाहन की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ समय के बाद एक ट्रक विराटनगर से आकर रुका। उसमें मजदूरों का हुजूम सवार था। उनके उतरते ही धड़ा-धड़ विराटनगर जाने वाले मजदूर उसमें चढ़ने लगे। रेणु को ट्रक में खचाखच भरे नेपाली मजदूरों के

बीच खड़ा होकर यात्रा करने में भय लगा। वे ड्राइवर के पास गए और अपने बगल में बिठाकर ले चलने की याचना करने लगे। ड्राइवर के बगल में एक पंडितजी बैठे हुए थे। उन्होंने रेणु को अपने बगल में बैठा लिया। बैठते ही एक सुगन्ध उनके मन और प्राण को आह्लादित करने लगी। पंडित जी ने पूछा- 'कहाँ जाना है?'

रेणु ने जवाब दिया- 'अपने मित्र के घर।'
फिर सवाल- 'क्या नाम है मित्र का?'

'नाम! अस्पताल के पच्छिम घर है।....... कोइलवरवाला। खूब गोरे हैं। मुस्कुराते रहते हैं। खादी पहनते हैं।'

जोगबनी से विराटनगर की कच्ची सड़क कीचड़ से भरी थी।

जंगलों और तराई के बीच कच्ची सड़क की कीचड़ को मथती हुई गाड़ी विराटनगर के बाजार-अड्डा पर जा लगी। पंडित जी ने कहा, 'चलो, मैं पहुँचा दूँगा। मेरा घर भी अस्पताल के पच्छिम है। लेकिन, कोई कोइलवरवाला मेरे घर के पास नहीं रहता है।'

तब रेणु ने कहा, 'शायद कोई कोयलावाला रहता हो?' पंडित जी ने तब खिलखिलाकर हँसते हुए कहा था, 'नीचे कीचड़ और गड्ढे देखकर सावधानी से चलो।'

रेणु ने जिज्ञासा प्रकट की, 'यहाँ कोई म्युनिसिपल बोर्ड या लोकल बोर्ड जैसी कोई चीज नहीं?'

पंडित जी ने तब समझाया, 'अपने मित्र से पूछना घर चलकर। यहाँ रास्ते में लोग कीचड़ और धूल से बचते हैं, बोलते नहीं।'

पंडित जी रेणु को साथ लेकर एक लकड़ी के दो मंजिले मकान के सामने पहुँचे। ट्रेन वाली लड़की ऊपर की एक खिड़की से मुस्कुराती हुई झाँक रही थी। पंडित जी ने कहा- 'यह रहा तुम्हारे मित्र का घर-लकड़ी से बना दुमंजिला।' फिर उन्होंने आवाज दी, 'बिशु को मीत आयेकोछ!'

सीढ़ी के पास बैठकर वहाँ रखे पानी से पंडित जी अपने पैर धोने लगे। रेणु ने कहा- 'आपका बहुत-बहुत धन्यवाद पंडित जी! अब आप जाइए!'

पंडित जी ने कहा- 'पहले पैर धो लो!'

रेणु ने अपने पैरों को धोकर जब सिर ऊपर किया तो देखा कि उनके मित्र सहित बहुत लोग दुमंजिले से नीचे झाँक रहे हैं। वे सभी हँस रहे थे। पंडित जी उन्हें ऊपर पहुँचाकर नीचे ही अपने आसन पर बैठ गए। रेणु के मित्र ने बताया कि ये मेरे पिताजी हैं। आयँ पंडित जी ही खरदार साहब हैं और 'दोस्तबाप' हैं! जैसे ही ज्ञात हुआ वे दौड़कर गए और 'दोस्तबाप' का चरण-स्पर्श किया।

अब दोस्तबाप को रेणु ने पहली बार 'पिताजी' कहकर सम्बोधित किया और जीवनभर करते रहे। पिताजी ने पूछा- 'उधर ये लोग क्यों हँस रहे हैं, जानते हो?'

इसका कोइराला बन्धुओं की सबसे छोटी और लाड़ली बहन बुन्नू अर्थात् विजयलक्ष्मी ने उत्तर दिया, 'छक्क पर्ने अचरज की बात! हाफ शर्ट पहना तारिणी दाज्यु का और दोस्त कहते हैं सान्दाज्यु को!'

बिशू यानी विशेश्वर प्रसाद कोइराला रेणु से उम्र में बड़े थे। उनके बाद केशव और उनके बाद तारिणी थे। ट्रेन में जो शर्ट उन्होंने पहना था, वह तारिणी का था। तारिणी उनके हमउम्र थे। मुस्कुराने वाली लड़की ने अपने हँसने का राज खोला, 'मैं तो ट्रेन में ही यह नजारा देखकर हँस रही हूँ कि इन्होंने कहा, अब आपसे मेरी मिताई हुई।' फिर वह खिलखिलाकर हँसने लगी। बी.पी. यानी सान्दाज्यु ने परिचय कराया- 'यह सुशीला है। आपके दर्जे में ही पढ़ती है, लेकिन तुम्हारी तरह 'भारत-भारती' का सस्वर पाठ नहीं कर सकती!'

अब उस शर्ट का मालिक टी. पी. अर्थात् तारिणी का आगमन हुआ और रेणु को अपनी बाँहों में भर लिया और फिर सुशीला से कहा, 'देखा भाभी! देखा न! मैंने कहा था न, मेरी खोई हुई कुछ खोजकर वापस आएगी। मुझे तो एक 'मुसल्लम मितर' मिल गया।'

पहले बिशेश्वर 'मीत' बने, फिर उसे बदल दिया गया और तारिणी मीत बने। सुशीला भाभी को रेणु ने प्रणाम किया, पर उसने आशीर्वाद नहीं दिया, सिर्फ मुस्कुराती रही।

रेणु दो दिन कोइराला-निवास में रहे और इतना प्यार तथा अपनत्व उन्हें मिला कि अपने को इस परिवार का सदस्य ही समझने लगे। माँ दिव्या कोइराला ने घोषणा की, 'अब मेरे पाँच नहीं छह पुत्र हैं।' पाँचों भाइयों ने कहा, 'हम पाँच नहीं छह भाई हैं।'

रेणु जब लौटने लगे, तब सबने एक स्वर में कहा, 'जब भी इच्छा हो, चले आना। तुम्हारा एक घर विराटनगर में भी है।'

रेणु लौट रहे थे, पर उनके भीतर यही वाक्य अनुगूँजित हो रहा था- तुम्हारा एक घर विराटनगर में भी है। धीरे-धीरे यह वाक्य उनके भीतर घर कर गया। सहसा रवीन्द्रनाथ की उनकी पढ़ी हुई एक कविता की दो पंक्तियाँ याद आ गईं- निःस्व आमि, रिक्त आमि, देबार किछु नाई/आछे शुधु आलोबाशा, दिलाम आमि ताई! अर्थात् मेरा स्व यानी मैं होने का बोध समाप्त हो गया है, मैं भीतर से रिक्त हो गया हूँ, कुछ देने की स्थिति में नहीं हूँ। मेरे पास सिर्फ प्रेम है, वही मैंने दिया। यह देना अपना हृदय ही सौंप देना था। अपनी पूरी भाव-सम्पदा सौंपकर ही तो सब कुछ पाया जा सकता है।

भारत यायावर, यशवत नगर, हजारीबाग–825301 (झारखण्ड)
मो. : 6204130608, 6207264847

✧ ✧ ✧

''आँख नम और हृदय बोझिल शब्द कहाँ से लाऊँ''

मृदुला सिन्हा : स्मृतियों के झरोखों में

डॉ. आशा मिश्रा 'मुक्ता'

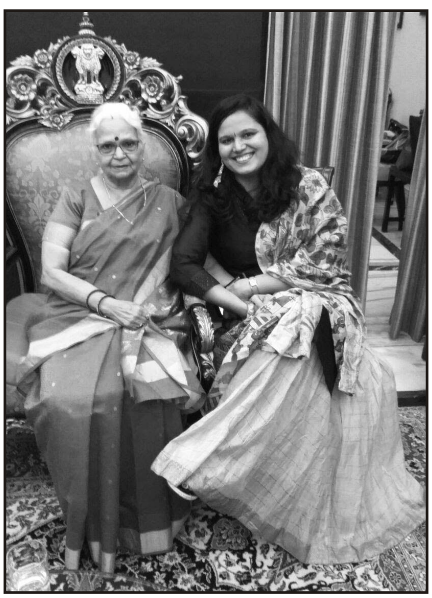

अधिक दिन नहीं हुए । पिछले वर्ष की ही तो बात है। मैंने आवश्यक कार्य हेतु उन्हें फोन किया था। कुछ काम की बात करनी थी। बात खत्म होने के बाद उन्होंने कहा– 'विवाह दिवस की बधाई नहीं दोगी?' मैं सफाई पेश कर पाती उसके पहले ही उनकी आवाज आई 'अरे कोई बात नहीं, मुझे पता है कि आप बधाई देने ही वाली थीं, मैंने ही पूछने में जल्दबाजी कर दी।' उन्होंने मुझे सहज करते हुए आगे कहा –

'और कितने वर्ष हमें सालगिरह मनाते हुए देखना चाहती हैं आप?'

'भाभी जी, कम से कम 10-15 वर्ष और।' मेरा उत्तर था।

'बस इतने ही दिन! हम तो 25 वर्ष और मान कर चल रहे है।' उनकी हँसती हुई आवाज आई।

मृदुला सिन्हा, नाम लेते ही आँखों के समक्ष एक सौम्य और कोमल व्यक्तित्व घूम सा जाता है। सफेद दूधिया बालों के बीच सिंदूर की पतली सी लकीर और माथे पर दमकती हुई बड़ी सी लाल बिंदी। मृदुल, कोमल, सरल और सहज व्यक्तित्व और उस व्यक्तित्व को परिभाषित करता हुआ नाम 'मृदुला'। कहते हैं कि ईश्वर के घर में भी भले लोगों की अधिक आवश्यकता होती है। 18 नवंबर 2020 को बुला लिया उन्हें अपने पास। हम दोनों कई रिश्तों में बंधे थे। रिश्ते में वह मेरी जेठानी थीं, पर उम्र और व्यवहार में माँ जैसी। आदर इतना कि उनकी पुत्री की उम्र की होने के बावजूद

हमेशा उन्होंने मुझे आप कहकर सम्बोधित किया। अपनी मेहनत और काबिलियत के बल पर बिहार के एक स्कूल मास्टर की बेटी से यात्रा प्रारम्भ कर साहित्य, समाज और राजनीति तक का सफर पूर्ण किया। हर क्षेत्र में ख्याति हासिल करते हुए सदा लोक कल्याण के कार्य में संलग्न रहीं और अंतत: गोवा की गवर्नर के पद से सेवानिवृत्त हुईं। भारतीयता उनकी रग-रग में बसी थी। संस्कारों को जीना और भारतीय परंपरा को जिन्दा रखना कोई उनसे सीखे। मिथिला में रिवाज है कि पर्व-त्योहार या शादी के अवसर पर बेटियों को लाल चंगेरा (बाँस की चौड़ी वाली टोकरी) में संदेश भेजा जाता है जिसमें खाने-पीने का सामान होता है। आज के जमाने में भी मृदुला जी अवसर खोज लेती थीं और चंगेरा को लाल कपड़े से सजा कर दिल्ली में बसे रिश्तेदारों को संदेश भेजा करती थीं। दिल्ली जैसे महानगर में रहते हुए भी मिथिला के रीति-रिवाजों को जिंदा रख मिथिला की बेटी होने का फर्ज निभाया।

मेरा सौभाग्य रहा कि उनके साथ समय व्यतीत करने का अवसर मुझे अक्सर प्राप्त होता रहा और वे मुझे अपने स्नेह से स्नेह सिक्त करती रहीं। मृदु भाषी ऐसी कि पिछले 30 वर्षों में मैंने उन्हें कभी तैश में आते नहीं देखा। शुरू से ही मैं उनकी लेखनी की कायल रही हूँ। उनकी कहानियों में मिट्टी की वह सोंधी खुशबू थी जिसे मैं गाँव में छोड़ हैदराबाद आ गई थी। उनकी कहानियों के माध्यम से अनजाने ही मैं उन खुशबुओं की ओर खिंची चली जाती। उनके कहानी संग्रह 'एक दीये की दिवाली' पढ़ते वक्त मेरा गाँव और वे सारे रिश्ते मेरे समक्ष होते। शायद यही कारण था कि एमफिल के उपरांत जब पीएचडी करने की बारी आई, तो मृदुला सिन्हा के अलावा मुझे अन्य कोई नाम नहीं सूझा। 'मृदुला सिन्हा का स्त्री विमर्श' विषय पर मैंने शोध प्रारम्भ किया। इस बात का पता चलते ही उन्होंने तुरंत मुझे फोन किया और कहा कि गोवा विश्वविद्यालय में उन पर द्वि-दिवसीय सेमिनार का आयोजन हो रहा है। मैं भी वहाँ आ जाऊँ ताकि मुझे मेरे पीएचडी विषय से संबंधित सामग्री मिल जाय। सदा सकारात्मक सोच रखने वाली मृदुला सिन्हा जी स्त्री को विशेष मानती थीं। पुरुष के साथ स्त्री की तुलना करना उन्हें कतई पसंद नहीं था। पुरुष के साथ प्रतिस्पर्धा में पड़कर वह स्त्री सुलभ गुणों को खोने की हिमायती कभी नहीं रहीं। स्त्री को विमर्श की वस्तु न मानने वाली साहित्यकार के साहित्य में स्त्री विमर्श खोजना मेरे लिए एक चुनौती का कार्य था। परन्तु मुझे यह चुनौती सहर्ष स्वीकार्य हुई और मैंने यथाशक्ति इस विषय से न्याय करने की कोशिश की है। 3 दिन गोवा राजभवन में रहकर पता चला कि इतने बड़े पद पर रहने के बावजूद कोई इतना सरल और सरह भी हो सकता है। आप वहाँ भी न सिर्फ राज्यपाल थीं, बल्कि एक कुशल गृहिणी की तरह रोज सुबह 7 बजे खणनसामा को सुबह के नाश्ते से लेकर रात के खाने तक के मेन्यू बताना अपना कर्तव्य मानती थीं। सभी अतिथियों का ख्याल रखना और उनके साथ इतनी आत्मीयता से पेश आना कि उन्हें एहसास ही न हो कि वे राजभवन के मेहमान हैं। इस तरह के अनुभव से मैं अब तक अनभिज्ञ थी। मेरे लिए यह अचंभित करने वाली बात थी, क्योंकि मैंने ऐसे लोगों को भी देखा है जिनके पति उच्च सरकारी पद पर आसीन होते हैं और पत्नी स्वयं को महारानी से कम नहीं आंकती!

प्रकृति से प्रेम करना मनुष्य की संवेदना को दर्शाता है। प्रकृति प्रेमी कई लोग होते हैं परंतु रोज अनगिनत पेड़-पौधों को निहारना और उसमें आए बदलाव को चिह्नित करना सबके बस की

बात नहीं। मैंने देखा है, उन्हें रोज सुबह राजभवन के कम्पाउंड में प्रात: भ्रमण के दौरान पेड़ों को निहारते और उनमें आए बदलाव को चिह्नित करते।

राजभवन में उनके निर्देश पर लगाए गए सब्जियों के बाग में गोभी, बड़े-बड़े बैंगन, भिंडी आदि कई प्रकार की हरी सब्जियों की ओर बंद मुठ्ठी के माध्यम से इशारा करके दिखाना आज भी आँखों से ओझल कहाँ हो पाया है! आप पेड़ पर लगे फल-फूल को उंगली इसलिए नहीं दिखाती थीं क्योंकि लोक मान्यता के अनुसार पेड़ों और फलों की ओर उंगली से इशारा करने पर फल या फूल सूख जाते हैं। आप अन्धविश्वासी बिल्कुल नहीं थीं, परंतु प्रकृति प्रेम के प्रति विवश अवश्य थीं। मैं उनके इस प्रेम के प्रति नतमस्तक हूँ। प्रकृति प्रेम और लोक सेवा भाव ही था, जो आपने फूलों की जगह फल की टोकरी भेंट स्वरूप लेना स्वीकार किया। उनके द्वारा भेजे गए गोवा राजभवन के आम का स्वाद आज भी जिह्वा पर ताजी है।

सुबह चार बजे से उनकी दिनचर्या शुरू हो जाती। 7 बजे तक लिखने का कार्य उसके बाद देश और समाज की जिम्मेदारियों को पूर्ण करना उनका रोज का कार्य होता था। मैंने पूछ लिया एक दिन - 'आप कैसे लिख लेती हैं इतना, मैं ऐसा चाह कर भी क्यों नहीं कर पाती हूँ?' मैंने अपनी विवशता व्यक्त की। इस पर बड़ी ही सरलता से उन्होंने कहा था - 'अभी आप हरवाह हैं। गृहस्थी के खेत को सींचने और बोने में लगी हैं। जब यह बीज फल देने लगेगा, तो आप भी बेफिक्र होकर मेरी ही तरह लिख लेंगी।' कितना संतोष मिला था सुनकर। मैं भी जीवन के प्रति आशान्वित हो गई। इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी कहा कि जब भी मन में कोई विचार कौंधे, उसे उसी वक्त पन्ने पर उतार लेना चाहिए, क्योंकि बाद में स्मृति धूमिल पड़ जाती है।

रिश्तों को जीना कोई उनसे सीखे। मैं भी सीखने की कोशिश ही कर रही थी अभी। उनसे बात करके आत्मसंतुष्टि तो मिलती ही थी, साथ ही सारे बुरे विचार खत्म हो जाते थे। पति-पत्नी के बीच इतना प्यार कि अपने ही अनुभव से कई किताबें लिख डालीं। पति-पत्नी के सम्बन्धों पर आधारित 'दाम्पत्य की धूप-छाँह' उनके स्व-अनुभव पर आधारित है, जो भारतीय नव दंपतियों के लिए प्रेरणास्रोत है। मेरे पूछने कि हम पति-पत्नी आप लोगों की तरह क्यों नहीं रह पाते हैं और न चाहते हुए भी छोटी-छोटी बातों पर मनमुटाव क्यों होता रहता है, का उत्तर उन्होंने बड़ी सरलता से दिया था- 'अभी आप लोगों का एक ही कॉमन इंटरेस्ट है और वह है बच्चे। इस उम्र में पति-पत्नी के बीच अधिकतर लड़ाइयाँ बच्चों के लिए ही होती हैं। दोनों ही प्राणी बच्चों की भलाई अपने अपने तरीके से करना चाहते हैं। और यही 'अपना तरीका' मनमुटाव का कारण बनता है।' कितनी सच्चाई थी उन बातों में और कितना व्यावहारिक भी। पति-पत्नी के बीच के मतभेद में अपना स्वार्थ कहाँ होता है? अधिकतर दूसरों के लिए ही तो मतभेद होते हैं। वे अपने पति डॉ. रामकृपाल सिन्हा को अक्सर मजाक में 'सास का बेटा' कहकर सम्बोधित करतीं जो मुझे बहुत भाता था। भाई साहब (डॉ. रामकृपाल सिन्हा) को जब भी कुछ कहना होता, तो भाभी जी (मृदुला सिन्हा) को कहने के लिए कहते। कहानी सुनाते हुए वह प्यार से कहतीं- 'देखो न एक ही बात को बार बार कहलवाते हैं। क्या करूँ, जब अपने बेटे की बात मानती हूँ तो सास के बेटे का मन भी तो रखना ही पड़ेगा न।' और मुस्कान की फुहार चेहरे पर फैल जाती।

गोवा राजभवन में साथ बिताया हरेक क्षण मेरी स्मृतियों में बसा हुआ है। मिथिला के तरीके से कटहल के बड़े (कटलेट) वाली सब्जी और सत्तू की रोटी बनाने की फरमाइश मुझसे करना और कहना कि इन लोगों (राजभवन के रसोइये) के हाथ से वह वाला स्वाद नहीं आता और रसोइये को बुलाकर प्यार भरी हिदायत देना कि 'आप मेरी देवरानी से सीख लीजिए, नहीं तो आपकी नौकरी खतरे में पड़ सकती है।' उनकी आत्मीयता को दर्शाता है। कटु शब्द निकालना और किसी की बुराई करना जैसे उन्हें आता ही न था। उन्होंने कहा था मुझे कि- 'तारीफ के शब्द व्यक्ति तक पहुँचने की कोई गारंटी नहीं है, परन्तु यदि आपने किसी की शिकायत की, तो वे लफ्ज घुमाफिराकर कभी न कभी उस व्यक्ति तक अवश्य पहुँच जाएँगे। साथ ही यह भी संभव है कि आपके द्वारा कही हुई बातों के अलावा अन्य कई गलत बातें भी जुड़ जाएँ।' मेरा सौभाग्य रहा कि मुझे ऐसे व्यक्तित्व का सान्निध्य मिला।

गवर्नर बनने के उपरांत वे अपने पतिदेव के ननिहाल यानी सास के मायके जानीपुर गईं। सौभाग्य से मेरा ससुराल भी उसी परिवार में है। मेरे ससुर जी राजदेव मिश्रा उनके पति डॉ. रामकृपाल सिन्हा के रिश्ते में मामा लगते थे। इसी रिश्ते से मेरे पतिदेव उनके देवर और मैं देवरानी हुई। मेरी सासु माँ डॉ. अहिल्या मिश्र को वे 'मामी जी' कहकर सम्बोधित करती थीं। उम्र एवं पद दोनों में स्वयं उनसे बड़ी होने के बावजूद सार्वजनिक स्थान हो या मंच कभी भी उन्हें मामी जी कहकर चरण स्पर्श करने से नहीं चूकीं। उनके बड़प्पन का अंदाजा आप इस बात से लगा सकते हैं। जानीपुर पहुंचते ही सब लोग उनके औपचारिक स्वागत और आवभगत में लग गए। स्वाभाविक है एक राज्यपाल की खातिरदारी में वे कोई कसर नहीं रखना चाह रहे थे। परन्तु मृदुला सिन्हा जी ने जाते ही कह दिया- 'देखिए आगत-स्वागत की जरूरत नहीं है। पहले खाना खिलाइए, जोर से भूख लगी है।' उनकी इस सरलता पर सब नतमस्तक हो गए। उनका सरल व्यवहार सिर्फ घर तक ही सीमित नहीं था। मंच पर भी वे वैसी ही थीं। सीतामढ़ी में मंच पर भाषण के दौरान जब उन्हें पता चला कि मेरी बड़ी बहन वहाँ आई हुई हैं तो उन्होंने झट से उन्हें स्टेज पर बुला लिया और इतने प्यार से मिलीं कि मेरी बहन भावविभोर हो गईं। प्रथम महिला गोवा बनने से पूर्व भी वे चाहे पार्टी के कार्य से हैदराबाद आएँ या संस्थागत कार्य से, अक्सरहाँ वे हमारे पूरे परिवार के साथ एक रात या कुछ समय अवश्य गुजारतीं। इस प्रकार वे रिश्तों को जीती और स्नेह बाँटती रहीं।

कितनी बातें कितनी यादें, क्या कहूँ क्या छोड़ूँ! शायद पृष्ठ कम पड़ जाएँ। ऐसा व्यक्तित्व जिन्होंने रिश्ते और मानवता को सबसे ऊपरी पायदान पर रखा। आजकल वे मुझे डॉ. के साथ सम्बोधित करने लगीं थीं। मेरे मना करने पर कहतीं- 'क्यों नहीं, आप इतनी मेहनत करके डॉ. बनी हैं, तो मैं बुला भी नहीं सकती क्या?' और मैं चुप हो जाती। मिथिला की बेटी मिथिला के रीति-रिवाज को सदा प्राथमिकता देती रहीं। लोक संगीत, लोक पर्व में उनकी जान बसती थी। उनके मुख से वगैर लोक गीत की पंक्ति सुने उनका वक्तव्य मुझे अधूरा लगता। कादम्बिनी क्लब के रजत जयंती समारोह में मुख्य अतिथि के तौर पर वह आमंत्रित थीं। कार्यक्रम से पहले उन्होंने मुझे चुटकी लेते हुए कहा था- 'अब मैं स्टेज से गीत नहीं गाऊंगी, गवर्नर बन गई हूँ न, शोभा नहीं देता।' परंतु कार्यक्रम में जैसे ही भाषण खत्म हुआ कि उनकी सुरीली आवाज गूंजने लगी- 'अपना किशोरी जी के टहल बजेबै हे मिथिले में रहबै, हमरा ने चाही चारों धाम हे मिथिले में रहबै ......।'

साथ ही यह कहने से भी नहीं चूकीं कि 'यह गीत मैं मेरी देवरानी के लिए गा रही हूँ।'

मेरे पुत्र आर्यव मिश्रा के उपनयन संस्कार के वक्त ग्रामीण महिलाओं के झुण्ड में बैठकर जनेऊ, सोहर, बधाई जैसे कई संस्कार गीत गाकर उपनयन संस्कार को संगीतमय बना दिया। उस वक्त आप महिला मोर्चा के अध्यक्ष के पद पर सुशोभित थीं। वहाँ उपस्थित सारे अतिथि यह जानकर अचंभित थे कि बचपन से हॉस्टल में रहनेवाली और आज इतने बड़े पद पर होने के बावजूद इतनी सरल और व्यावहारिक कैसे हो पाईं। लोकाचार का ज्ञान कहाँ से आया! वह अकसर मुस्कुराते हुए कहा करतीं कि पोता अमेरिका में है, तो क्या हुआ जनेऊ तो करना ही है। यदि जनेऊ नहीं होगा, तो मेरा गीत गाने का शौक कैसे पूरा होगा।' उन्होंने दोनों पौत्रों का दिल्ली में पूर्ण पारम्परिक तरीके से जनेऊ किया जिसमें हमारा परिवार भी शामिल हुआ था। क्या याद करूँ, क्या भूलूँ। बहुत कम साहित्यकार होते हैं जिनकी कथनी और करनी एक सी होती है। मृदुला सिन्हा जो कहती थीं, वही लिखती थीं और उनके मंच से भाषण और प्रत्यक्ष वार्तालाप में कोई अंतर नहीं था। ऐसा अकसर कम ही देखा जाता है। उनके साथ ऐसा इसलिए था क्योंकि वे ऊपर से नीचे और अंदर से बाहर तक एक समान थीं। पूर्णतः असली, कहीं कोई बनावट नहीं।

उनके पुत्र नवीन जी के माध्यम से जैसे ही पता चला कि वे अस्पताल में हैं और सुधार की सम्भावना कम है, मेरे स्मृति-पटल पर उनकी कही हुई ढेर सारी बातें और उनके संग बिताए हुए कई-कई अनमोल क्षण ऊभ-चूभ करने लगे। मेरे लिए स्वयं की भावाभिव्यक्ति को रोकना कठिन था। अतः मैंने लेखनी का सहारा लिया। परंतु क्या लिखूँ क्या कहूँ? उनकी शादी की पिछली सालगिरह (2020) पर अपना घूँघट वाला फोटो भेजकर मुझसे पूछना कि 'दुल्हन को देखीं आप? 76 वर्ष की आयु वाली दुल्हन ने आपकी दी हुई साड़ी ही पहनी है और उसने मुँह दिखाई भी ली है...' या राजभवन में अपने कमरे की सैर कराते हुए कहना कि यह अपना घर थोड़े ही है, देश की अमानत है। फिर इतना क्या इतराना?' या यह कहना कि 'पौराणिक पात्र जैसे सीता, सावित्री, मंदोदरी, अहल्या और तारा पर उपन्यास लिखने के दौरान ये पात्र मेरे सपने में आकर मुझे अपनी कहानी बताकर मुझे लेखन में सहयोग देते हैं...'', या किताब लिखने के बाद मुझे भेजकर पूछना कि 'किताब पढ़ी या नहीं .. कैसी लगी ..?', या फिर मुझे मेरे कार्यों के लिए हमेशा प्रोत्साहित करना और कहना कि 'आप फिक्र न करें आपकी उम्र में मैं भी ऐसी ही थी।' अविस्मरणीय यादें, शब्दों में समेटना कहाँ आसान है। हृदय को संवेदनाओं के बादल ने घेर रखा है। विश्वास करने का मन नहीं हो रहा कि सबकी सेवा में संलग्न रहने वाली ने अपनी सेवा का अवसर तक किसी को नहीं दिया और इस दुनिया से सदा के लिए विदा ले लीं। बस मानस-पटल पर अपनी मधुर स्मृतियों को अवश्य छोड़ गईं। आप सदा ही मेरी प्रेरणा स्रोत बनी रहेंगी। आपकी बातों को आत्मसात् कर उसे अपने व्यवहारिक जीवन में उतार सकूँ यहीं श्रद्धांजलि मैं उन्हें अर्पित करना चाहती हूँ।

डॉ. आशा मिश्रा 'मुक्ता', 90—सी, वेंगल राव नगर, हैदराबाद—500038
मो. : 9908855400, ई—मेल : ashamukta@gmail.com

✧ ✧ ✧

मधुबनी लोककला के विविध रंगों में मैथिल स्त्री की संवेदना

डॉ. प्रियंका कुमारी

इस लोककला के उद्‌भव के संदर्भ में ऐसी लोकमान्यता है कि विदेह राजा जनक ने राम-सीता के विवाह के मनोरम दृश्यों को महिला कलाकारों को भित्ति रुप में अंकित करने को कहा। तब से इस अद्वितिय चित्रकला की परंपरा चल पड़ी। मधुबनी में विकसित होने के कारण इस कला को मधुबनी चित्रकारी शैली भी कहा जाता है। मधुबनी चित्रकला का उद्‌भव सत्रहवी सदी में मधुबनी के जितवारपुर (ब्राह्मण बहुल) और रतनी (कायस्थ बहुल) गाँव में मैथिल स्त्रियों द्वारा हुआ था।

प्राचीन काल से ही विदेह राजा जनक की जन्म भूमि मिथिला की लोक संस्कृति समृद्ध रही है। मिथिला क्षेत्र भारत और नेपाल दोनों देशों में विस्तारित है। लोकभाषा, खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, संस्कार, लोककला, लोकगीत, लोकनाट्य, लोकसाहित्य आदि मिथिला की लोक संस्कृति के अनेक अंग-उपांग हैं। मधुबनी लोककला इसी लोक संस्कृति का एक सोपान है। मैथिल स्त्री के ओजस्वी हृदय का उद्‌गार है मधुबनी लोककला। इसमें वह सीमित साधन में अपनी आकांक्षा को साकार रुप देती है। यह कला मैथिल स्त्री के असाधारण प्रतिभा का प्रतीक है। मैथिल स्त्रियों की यह प्रतिभा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सराही गई है। इस कला से मैथिल स्त्री की न केवल पहचान निर्मित हुई, बल्कि यह कला वर्तमान में उनके उन्नत व्यवसाय के साधन का पर्याय भी बन गया है।

मधुबनी लोककला का वर्गीकरण :

मधुबनी लोककला के दो प्रकार हैं- मधुबनी चित्रकला और मधुबनी शिल्पकला। मधुबनी चित्रकला मिथिलांचल की प्रसिद्ध चित्रकला शैली है। मधुबनी चित्रकला शैली मिथिलांचल की वह सांस्कृतिक धरोहर है, जो पीढ़ी-दर-पीढी महिलाओं से महिलाओं को प्राप्त होती आ रही हैं। स्त्री साहचर्य और सशक्तिकरण का सर्वोत्तम उदाहरण है मिथिला की 'मधुबनी चित्रकला'। यह मधुबनी चित्रकला, मधुबनी पेंटिग तथा मिथिला की लोककला आदि पर्याय के रुप में विख्यात है। मैथिल स्त्रियों द्वारा सूत्रपात की गई मधुबनी

शिल्पकला मिथिला की प्रसिद्ध लोककला है। मधुबनी शिल्पकलाओं में मृण्मूर्ति (terracotta), मूँज और सिक्की की हस्तनिर्मित रंग-बिरंगी वस्तुएँ-सिक्की के मौनी, चंगेरी (खर से बनाई गई कलात्मक डिजाईन वाली उपयोगी वस्तुएँ), सुजनी, बुनाई, कढ़ाई, बाँस के वस्तुएँ, लकड़ी पर नक्काशी, कपड़ों पर रंगाई, सूत कातना और लहठी का निर्माण प्रमुख हैं। मधुबनी लोककला स्वयं में इतना कुछ समेटे हुए है कि आरंभ में पुरुषों द्वारा उपेक्षित इस कला को वर्तमान में उन्होंने ही अपने व्यवसाय के उन्नत साधन के रुप में स्वीकार कर लिया है।

मधुबनी चित्रकला का उद्‌भव

इस लोककला के उद्‌भव के संर्दभ में ऐसी लोकमान्यता है कि विदेह राजा जनक ने राम-सीता के विवाह के मनोरम दृश्यों को महिला कलाकारों को भित्ति रुप में अंकित करने को कहा। तब से इस अद्वितिय चित्रकला की परंपरा चल पड़ी। मधुबनी में विकसित होने के कारण इस कला को मधुबनी चित्रकारी शैली भी कहा जाता है। मधुबनी चित्रकला का उद्‌भव सत्रहवी सदी में मधुबनी के जितवारपुर (ब्राह्मण बहुल) और रतनी (कायस्थ बहुल) गाँव में मैथिल स्त्रियों द्वारा हुआ था। 1935 के भीषण आकाल के समय विदेशी विद्वान डब्ल्यू जी आर्चर ने यत्र-तत्र गाँवों की भित्ति पर सिमित साधन में मैथिल स्त्रियों की उकेरी गई इस उपेक्षित चित्रकला को देखा, और उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर मधुबनी चित्रकला (Mithila painting) की संज्ञा से सम्मानित किया और प्रश्रय दिया। आर्चर महोदय के प्रश्रय के कारण ही यह उपेक्षित कला आज जीवित ही नहीं सम्मानित भी है। वैश्वीकरण के इस युग में अशिक्षित मैथिल स्त्री के उर्वर मष्तिष्क की इस असाधारण प्रतिभा को देश ही नहीं विदेशों में भी सराहा गया।

मधुबनी चित्रकला शैली

मधुबनी चित्रकारी का विषय समाज, संस्कृति, धर्म एवं प्रकृति होता है। सामाजिक परिवेश के अन्तर्गत पुरुष-स्त्री, विवाह, कोहबर, शाही अदालत के दृश्य व प्रकृति के अन्तर्गत सूर्य, चंद्रमा, पेड़-पौधे, फूलों, जानवरों, पशु-पक्षियों व धार्मिक परिवेश के अन्तर्गत प्राचीन महाकाव्यों के दृश्य, शिव-पार्वती विवाह, राम-जानकी स्वयंवर, कृष्ण लीला, सूर्य, चंद्रमा और धार्मिक पेड़-पौधो जैसे- तुलसी, पीपल, वट आदि को ज्यामितीय आकृति में व्यापक और गहन रूप से चित्रित किया जाता है। 1960 के दशक में भर्णी, कच्छनी और तांत्रिक शैली मुख्य रूप से उच्च कुल की स्त्रियों (ब्राह्मण और कायस्थ) द्वारा बनायी जाती थी। उनके विषय मुख्य रूप से धार्मिक होते थे। उनके चित्राकारी में देवी-देवताओं, वनस्पतियों और जीवों को चित्रित किया जाता था। कालान्तर में इस लोककला का निर्माण सभी वर्ग की (निम्न वर्ग) महिलाओं में लोकप्रिय हो गया। जहाँ उच्च वर्ग की स्त्रियों के चित्रकारी विषय भर्णी, कच्छनी, तांत्रिक, गोदा और कोहबर था, वहीं निम्न वर्ग की महिलाओं के चित्रकारी का विषय दैनिक जीवन तथा राजा शैलेश ख्गांव की रक्षा, से संबद्ध कहानी और उनका चित्र।

मैथिल स्त्रियों की विशेषता यह है कि मधुबनी चित्रकला में प्रयोग किए जाने वाले रंग कागज, कैनवस का निर्माण वे स्वयं करती हैं। गाय के गोबर को महीन सूती कपड़े पर डालकर तथा उसे घूप में सुखाकर कैनवस का निर्माण, पौधों की पत्तियों, फलों तथा फूलों से रंगों का

निर्माण जैसे पीले रंग के लिए हल्दी, हरे रंग के लिए केले के पत्ते, लाल रंग के लिऐ पीपल की छाल प्रयोग करती है। इस चित्रकला में चटख रंगो- जैसे लाल, हरा, नीला, काला, पीला, गुलाबी और नींबू रंगो का प्रयोग किया जाता है। कागज पर बनी कलाकृतियों के पार्श्व में महीन कपड़ा लगा कर इन्हें पारिवारिक धरोहर के रूप में सहेज कर रखा जाता है। यही कारण है कि हर परिवार में मधुबनी कलाकृतियों के आकार, रंग संयोजन और विषय वस्तु में भिन्नता के दर्शन होते हैं। प्रारम्भ में रंगोली के रूप में रहने के बाद यह पेंटिंग गांवों की मिट्टी से लीपी गई झोपड़ियों में देखने को मिलती थी, परन्तु वर्तमान में यह चित्रकला कपड़े या पेपर के कैनवास पर उतर आई है और वैश्विक बाजार की शोभा बन चुकी है।

मधुबनी चित्रकला का बाजार

पारंपरिक रूप से विशेष अवसर पर घर में बनाई जाने वाली यह कला आज विश्व बाजार में लोकप्रिय है। वर्षों से उपेक्षित रहने के पश्चात मधुबनी कला को 1962 में व्यावसायिक रुप से प्रतिष्ठा प्राप्त हुआ। जब एक कलाकार ने इन गाँवों का भ्रमण किया तो उन्होंने महिला कलाकारों को अपनी चित्रकला कागज पर उतारने के लिए प्रेरित किया। यह प्रयोग व्यावसायिक रूप से सर्वाधिक कारगर प्रमाणित हुई। आज मधुबनी कला शैली में अनेक उत्पाद बनाए जा रहे हैं, जिनका बाजार विस्तृत होता जा रहा है। वर्तमान में इस चित्रशैली का उपयोग कार्ड, बैग, दरी परिधानों पर किया जाता है। इस कला की मांग न केवल भारत के घरेलू बाजार में बढ़ रही है, वरन विदेशों में भी इसकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। आज मधुबनी कलाकृति दीर्घाओं, संग्रहालयों और हस्तकला की दूकानों के साथ विश्वजाल पर भी खरीद-विक्री हेतु उपलब्ध है।

मधुबनी चित्रकार

मधुबनी चित्रकला के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करने वाली अन्यतम चित्रकारों में प्रमुख है - पद्मश्री से सम्मानित बौआ देवी, जगदम्बा देवी, गंगा देवी, कुमुदिनी देवी, सीता देवी, गोदावरी देवी, चन्द्रप्रभा देवी, यमुना देवी आदि तथा राष्ट्रपति सम्मान से सम्मानित चन्द्रकला देवी, राष्ट्रपति सम्मान और बिहार राज्य श्रेष्ठ शिल्प पुरस्कार से सम्मानित महासुन्दरी देवी आदि। बौआ देवी को मधुबनी कला में उत्कृष्ट अवदान के लिए 2017 में पद्म श्री पुरस्कार से सम्मानित किया गया। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा अपने विदेश यात्रा के दौरान, हैनोवर के मेयर स्टीवन स्कॉस्टक को, बौआ देवी द्वारा निर्मित चित्र उपहार स्वरुप दिया जाना, मैथिल स्त्री समाज को गौरवान्वित करता है।

मधुबनी चित्रकला के प्रकार

- भूमिचित्र
- भित्ति चित्र
- पट चित्र

भूमिचित्र या अल्पना

अल्पना (अलि-पन) देशज शब्द है। अलि का अर्थ है-बांध और अंकन का अर्थ है-कला। अर्थात अल्पना का शाब्दिक अर्थ हुआ बांधने की कला। मैथिली में इसे अरिपन या ऐपन

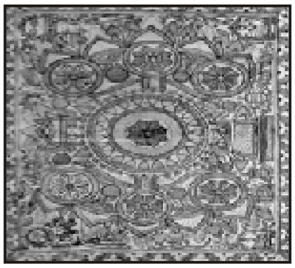

भी कहा जाता है। अरिपन में अध्यात्म प्रधान होता है। इसमें तंत्र-मंत्र को विशेष रुप से बनाये जाने की परंपरा है। अल्पना संपूर्ण भारत में लोकप्रिय है। बंगाल में इसे अल्पना, उड़ीसा में ओसा, गुजरात में सठिया, बिहार और उत्तरप्रदेश में चाक या चाकपूरन, राजस्थान में मेंहदीमंडन या मंडन और महाराष्ट्र सहित संपूर्ण दक्षिण भारत में इसे रंगोली कहा जाता है। अल्पना को घर के बैठक या मुख्य दरवाजे के बाहर शुभ कार्यों यथा यज्ञ, पूजा, व्रत, मुडंन, विवाह के अवसर पर तथा खेतों में उन्नत फसल के लिए ज्यामितीय और वृत्ताकार आकृति में व्यापक और गहन रूप से बनाया जाता है। कोई भी कोना रीता नहीं रह पाता है। अरिपन निर्माण के मुख्य विषय होते हैं- मनुष्य, पशु-पक्षी, मत्सय, शेषनाग, कछुआ, वृक्ष, फूल-फल, पत्ता, पर्वत, नदी, यंत्र, बिन्दु, स्वास्तिक, गणेश, विष्णु, विष्णुपद, शंख, त्रिशुल शिव-पार्वती विवाह, राम-जानकी स्वयंवर, कृष्ण लीला सूर्य, चंद्रमा और धार्मिक पेड़-पौधे जैसे - तुलसी, पीपल, वट। अरिपन के विविध प्रकार हैं- अष्टदल अरिपन, षडदल अरिपन, स्वास्तिक अरिपन, सर्वतोभद्र अरिपन। अरिपन को त्रिकोण, समकोण, समचतुर्भुज वृत और वृताकार आकृति में भूमि पर बनाया जाता है। समचतुर्भुज वृत में किए जानेवाले चित्रण को मंडल कहा जाता है। मंडल दो प्रकार का होता है- रेखांकन मंडल, व्रत मंडल। रेखांकन मंडल में तंत्र-मंत्र चित्र तथा अलौकिक दृश्यों की प्रधानता होती है, व्रत मंडल का विषय समान्य होता है। मिथिला में वृताकार तथा त्रिकोणात्मक अरिपन सर्वाधिक लोकप्रिय है। चित्र बनाने के लिए माचिस की तीली व बाँस की कलम का प्रयोग किया जाता है। स्त्रियाँ स्वयं पिसे हुए चावल से श्वेत, ज्वार के बीज में बेल, कनैल तथा गोबर मिलाकर काला, पीपल की छाल और कुसुम के फल से लाल, हल्दी से पीला, पलाश के फल से नारंगी, बेल तथा केले के पत्तों से हरा रंगों का निर्माण करती हैं। रंग की पकड़ बनाने के लिए बबूल वृक्ष के गोंद को मिलाया जाता है। महिलाएँ कुची या तुलिका के स्थान पर अपनी उँगली, माचिस की तीली और बाँस की कलम का प्रयोग करती है।

भित्ति चित्र

भित्ति चित्र मधुबनी चित्रकारी की अति प्रसिद्ध अर्थमूलक तथा वर्णनात्मक शैली है। इसका उद्येश्य मनोरंजक, आह्यलादपूर्ण तथा क्रीड़ामय जीवन का चित्रण है। भित्ति चित्र को घर के तीन विशेष स्थानों पर ज्यामितीय आकारों में बनाये जाने की परंपरा है, जैसे- पूजास्थान, कोहबर कक्ष (नवविवाहितों का कमरा) या किसी विशेष उत्सव पर घर की बाहरी दीवारों पर। मानव, देवी- देवता, पशु-पक्षी, पेड़-पौधा, मनोहर प्राकृतिक दृश्य आदि भित्ति चित्र के मुख्य विषय होते हैं- देवी-देवताओं में दुर्गा, काली, सीता-राम, राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती, गौरी-गणेश और विष्णु

के दस अवतारय पशु-पक्षियों में तोता, कछुआ, मछली, हाथी, घोड़ा, शेरय पेड़-पौधों में बाँस, कमल, फूल, लताएँ, फूल-पत्तियाँ आदिय प्राकृतिक दृश्यों में सूरज, चांद आदि। समृद्धि के लिए

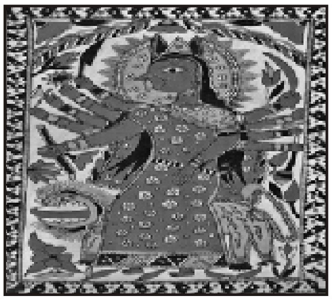

स्वास्तिक के चित्र को बनाया जाता है। इस चित्रकारी के निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री की व्यवस्था स्त्रियाँ स्वयं सीमित साधन और प्राकृतिक संसाधनों से करती हैं। भित्तिचित्र की आवश्यक सामग्री भित्ति होती है। इस चित्रकारी शैली में कैनवस दो प्रकार के बनाने की परंपरा है- एक भित्ति की तो दूसरी कागज की। चित्रकारी के पूर्व महिलाएँ कैनवस का निर्माण दीवार को चूने से पोतकर या मिट्टी और गाय के गोबर के मिश्रण में बबूल की गोंद मिलाकर दीवारों पर लिपाई कर के करती है। कैनवस के निर्माण के लिऐ कागज, गाय का गोबर तथा बबूल के गोंद का प्रयोग किया जाता है। गाय के गोबर में एक खास तरह का रसायन पदार्थ होने के कारण दीवार तथा कागज पर विशेष चमक आ जाता है। भित्ति चित्रकारी में चटख रंगों - गुलाबी, हरा (सुगापंखी), पीला, श्वेत, श्याम, नीला एवं सिन्दुरी लाल आदि रंगों का प्रयोग किया जाता है। महिलाएँ पिसे हुए चावल से श्वेत, ज्वार के बीज को जलाकर उसमें बेल, कनैल तथा गोबर मिलाकर या दिये की कालिख को गोबर के साथ मिला कर काला रंग, पीपल की छाल और कुसुम के फूल से लाल, हल्दी और चूने को बरगद की पत्तियों के दूध में मिला कर पीला, पलाश या टेसू के फूल से नारंगी, केले तथा बेल की पत्तियों से हरा रंगों का निर्माण करती हैं। रंगों को स्थायी और चमकदार बनाने के लिये बकरी का दूध या बबूल के गोंद का प्रयोग किया जाता है। महिलाएँ चित्रांकन के लिए कुची या तुलिका के स्थान पर अपनी उँगली, माचिस की तीली और बाँस की कलम, बाँस की तीलियों में रूई लपेट कर अनेक आकारों की तूलिकाओं का प्रयोग करती हैं। मिथिलांचल में भित्तिचित्रा की तीन शैलियाँ अति प्रसिद्ध है-

- हरिसौन पूजा शैली
- कोहबर चित्र शैली
- सरोवर चित्र शैली

हरिसौन पूजा शैली

हरिसौन पूजा भित्ति चित्र शैली मिथिलांचल में सर्वाधिक लोकप्रिय है। यह हास्य प्रधान चित्र शैली है। इसे सिन्दूर से बनाने की परंपरा है। इस शैली में मुख्यत: स्त्री के वैवाहिक जीवन के सुख-दुख को चित्रित किया जाता है।

कोहबर चित्रकला शैली

कोहबर (विवाहोपरान्त पति-पत्नी के प्रथम मिलन का कमरा) भित्ति चित्र शैली अत्यन्त ही चमकदार, भव्य एवं संवेदनशील चित्र शैली है। विश्व प्रसिद्ध अजन्ता के नवम् तथा दशम् गुफा

के प्रारंभ की चित्रकला तथा मिथिला के कोहबर चित्रकला में समानता लक्षित होता है। इसका उद्देश्य विवाहोपरान्त नवसृष्टि के संरचना का संदेश है। कोहबर चित्रकारी में सौन्दर्य, आनंद और कामवासना का अदभुत मिश्रण होता है। इस चित्रकृति में बाँस, कमल का पत्ता, दही, मछली को ढ़ोते हुए भरिया (भाड़ ढ़ोनेवाला) भित्ति के चारों कोनों पर, मस्तक पर विभिन्न सामग्री या कलश लिए महिलाएँ जिसे जनसाधारण में नैना-जोगिन कहा जाता है, सर्वाधिक लोकप्रिय है। मैथिल संस्कृति में वैवाहिक अवसर पर भरिया और नैना-जोगिन को बनाना अत्यधिक शुभ माना जाता है। मयूर और मछली दीर्घ जीवन के साथ-साथ उर्वरता का भी प्रतीक है। भित्ति पर शिव-पार्वती विवाह, राम-जानकी स्वयंवर, बाँस की झाड़ी में विविध पक्षी, कबूतर, तोता, आम, कटहल और फलों के पेड़, खिले फूल के साथ गुलाब का पौधा के उपर मानव रुप में चाँद की आकृति, वधू के घर से दही, मछली, केला, भोजन परोसती स्त्री, प्रेम विभोर हो नृत्य करते मयूर, नदी में स्नान करती गोपियों के वस्त्र-हरण करते कृष्ण, राधा के संग बाँसुरी बजाते कृष्ण, नृत्य करते गोपी कृष्ण के नृत्य करते शारीरिक और आध्यात्मिक प्रेम के पौराणिक चित्र, नवदंपति के यौन संबंध तथा संतानोत्पत्ति के अतिरिक्त नवयुगल दंपति के अनंदातिरेक करने वाले विविध मनोहारी दृश्य कोहबर चित्रकारी की विशेषता है।

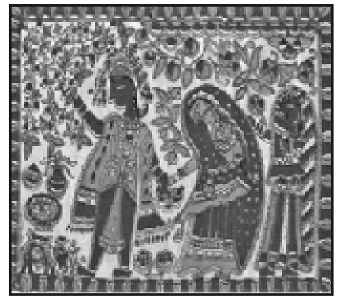

सरोवर चित्र कला शैली

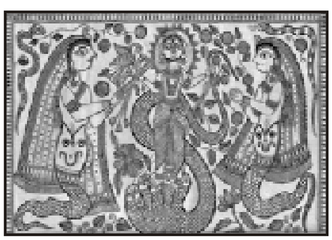

सरोवर भित्ति चित्र शैली में विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षी (कबूतर, मछली, गाय), समुद्री जीव-जन्तु, मछली और सर्प के मानवी रुप, विविध प्रकार के फूल, लताएँ, पूजा-घर के प्रवेश द्वार के चारों दिशाओं का भव्य शैली में चित्रांकन किया जाता है। यह चित्र शैली उल्लास एवं प्रणय भावना को मूर्त रुप देती है।

मधुबनी शिल्पकला

मृण्मूर्ति (terracotta)

यह कला मिथिला की महिलाओं द्वारा पोषित और संचालित है। मृण्मूर्ति में मिट्टी की मूर्तियाँ, रंग-बिरंगे आर्कषक खिलौने तथा अनेक घरेलू वस्तुओं का निर्माण किया जाता है। कार्तिक मास में कृष्ण की बहन श्यामा के जीवन पर मनाया जाने वाला पर्व सामा-चकेवा के अवसर पर महिलाएँ मिट्टी के मनोहारी खिलौने (सामा-चकेवा) का निर्माण करती है। मिट्टी के घरेलू उपयोग में आने वाले

वस्तुओं में प्रमुख है- कोठी (अनाज को रखने के लिए मिटी का गोदाम), बोरसी (शरद ऋतु में आग को जलाकर कमरे में रखने वाला मिट्टी का वृताकार पात्र), मटकूड़ (घरे की आकृतिवाला मिट्टी का पात्र), चूल्हा (दो मुँह या एक मुँह वाला), आदि।

मूँज, सिक्की और बाँस की हस्तनिर्मित रंग-बिरंगी वस्तुएँ

मैथिल स्त्रियों की प्रतिभा का अन्यतम उदाहरण मूँज और सिक्की की हस्तनिर्मित रंग-बिरंगी वस्तुएँ है, जो घर-घर में अत्यंन्त उत्साह और मनोयोग से सीमित साधन में बनाये जाते हैं। मूँज और सिक्की की हस्तनिर्मित रंग-बिरंगी वस्तुओं में प्रमुख है- चटाई, चंगेरी, मौनी, पौती, डाला, पिटारी आदि। बाँस से निर्मित वस्तुओं में चटाई, सुप, सुपली, डाली, टोकड़ी, मौनी, पौती प्रमुख है। इसके निर्माण के लिए सितम्बर-अक्टूबर मास में मूँज और सिक्की को काटकर, उपर के फूल को तोड़कर सुखाती है, फिर हरा और लाल रंगों को घोलकर उसे चूल्हे पर एक बर्तन में रखकर गर्म कर उसमें मूँज और सिक्की को कुछ समय के लिए भिंगो दिया जाता है। तत्पश्चात इसे सुखाया जाता है और फिर टेकुली के सहारे इन रंग-बिरंगी मूँज और सिक्की को अपने कल्पना को मूर्त रुप देकर हस्तनिर्मित अतीव सुन्दर और आर्कषक चटाई, चंगेरी, मौनी, पौती, डाला, पिटारी का निर्माण किया जाता है।

सुजनी -

गृह शिल्पकला में सुजनी का महत्वपूर्ण स्थान है। इस शिल्पकला का निर्माण मुख्यत: बिहार में किया जाता है। पर मिथिलांचल की बनी सुजनी की कोई तुलना नहीं है। इसका सामग्री पुराना कपड़ा होता है। सुजनी बनाने के लिए सर्वप्रथम एक बड़ा कपड़ा को भूमि पर बिछा दिया जाता है। फिर उसपर पुराने कपड़ों को करीने से कई तहों में बिछाया जाता है। अन्त में इसे श्वेत कपड़ा से ढ़क दिया जाता है। चारों कोनों को हाथों से सुई धागा से सिलते हुए आरा, तिरछा और मध्य में अत्यन्त करीने के साथ सीलाई की जाती है, ताकि सिलवट न पड़े। इसके पश्चात महिलाओं को अपनी प्रतिभा को अपने हाथों से बिखेरने का अवसर आता है और वे अपनी आंतरिक सौन्दर्य को सुजनी पर उकेर देती है। रंग-बिरंगे धागों से तितली, तोता, मैना, मयूर, हाथी, घोड़ा, बाघ, साँप, गमला सहित फूल के पौधे, जल में मछली के साथ तैरता साँप, पतंग उड़ाता बालक, पालकी पर बैठी वधू, तीर्थाटन के लिए जाती वृद्धा आदि का अति सुन्दर और मनोहारी चित्र सुजनी पर बनाया जाता है। सुजनी के निर्माण से बचे कटे-फटे कपड़ों से महिलाएँ कनियाँ-पुतरा अर्थात रंग-बिरंगी तीखे नाक-नक्शे वाले अति लुभावने और मनभावन गुढा-गुड़ियाँ को बनाती हैं।

सूत कातना -

यज्ञ, जनेउ तथा खादी के वस्त्र के निर्माण के लिए मैथिल स्त्रियों द्वारा टकुरी तथा चरखा पर सूत कातने की हस्तकला अति प्राचीन काल से विख्यात है। यह शिल्पकला उच्च वर्ग (कायस्थ और ब्राह्मण) की महिलाओं में, सर्वाधिक प्रचलित था।

लहठी का निर्माण-

मिथिला की एक अन्यतम और महत्वपूर्ण शिल्पकला लहठी चुड़ी का निर्माण भी है। इसके शिल्पकार को लहेरी कहा जाता है। मिथिला में यह शिल्पकला इतनी प्रसिद्ध है कि इसके निर्माण के प्रमुख केन्द्र का नामकरण ही लहेरी से लहेरियासराय कर दिया गया। लहठी के निर्माण में उत्तम कोटि के लाह और रंग की आवश्कता होती है। लहठी बनाने के लिए चटख लालरंग का प्रयोग किया जाता है। लहठी को तिसीफूल, चगोटवा तथा कंगना भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त लाह की सिन्दूरदानी बनाने की भी परंपरा है। विवाह, व्रत-त्योहार के अवसर पर नवविवाहिता और महिलाएँ द्वारा लहठी पहनने की परंपरा है।

बुनाई और कढ़ाई -

मिथिला की गृहकला सुई-शिल्प को कसीदा या कढ़ाई कहा जाता है, जिसे विवाहित, अविवाहित सभी मैथिल स्त्रियाँ बनाती हैं। वे सुई और रंग-बिरंगे धागे से दैनिक जीवन के व्यवहार में आनेवाली वस्तुएँ- चादर, तकिया का खोल, रूमाल, मेजपोश, थालपोश, साड़ी आदि पर अत्यन्त उत्साह और उमंग के साथ साधारण कपड़े पर ही विविध प्रकार की ऐसी अति आर्कषक और नयनाभिराम आकृति बनाती है कि उस कपड़े और परिधान की आभा अतुलनिय और कीमत दोगुनी हो जाती है। इस कसीदाकारी का विषय फूल, पत्ता, तितली, सूर्य, चाँद, तारे आदि होते है। अविवाहित लड़कियाँ इस प्रकार के कढ़ाई किए गए कपड़े और परिधान को विवाहोपरान्त अपने ससुराल में दिखाने के लिए ले जाती है, जिससे उनका सम्मान बढ़ता है। कढ़ाई के अतिरिक्त मिथिला की महिलाओं में बुनाई की परंपरा अत्यन्त ही उत्साह के साथ शरद ऋतु में लक्षित होती है। क्रोशिए एवं काँटे के सहयोग से वे ऊन के भाँति-भाँति के विविध चित्ताकर्षक आकृति वाले रंग-बिरंगी स्वेटर, शॉल, मफलर, स्कार्फ, दस्ताना, मोजे, मुख्य द्वार पर रखे जानेवाले पैरपोछ, टेबुल क्लॉथ आदि की बुनाइ अपने हाथों से करती है। महिलाओं द्वारा रस्सी से बुनाई की जाने वाली वस्तुओं में सिकहर या सिक्का अति महत्वपूर्ण है। गाँवों में आज भी सिकहर को छप्पर पर बाँधकर दूध-दही रखने की परंपरा है।

मधुबनी लोककला और मैथिल स्त्री

मधुबनी चित्रकला पारंपरिक रूप से भारत और नेपाल के मिथिलांचल के विभिन्न समुदायों की महिलाओं द्वारा बनाई जाने वाली प्रमुख चित्रकला है। प्रथमत: यह कला उच्च वर्ग (कायस्थ और ब्राह्मण) की महिलाएँ ही किया करती थीं। अत: इसे कायस्थ चित्रकला तथा ब्राह्मण चित्रकला कहा जाता था। पर अब यह सभी वर्ग की महिलाओं की प्रतिभा और गर्व का प्रतीक है। भित्ति से प्रारंभ होनेवाली यह चित्रकला कागज, कैनवास होते हुए मिट्टी के पात्रों, पंखों और विवाह के अवसर पर प्रयुक्त होने वाली थालियों पर भी की जाने लगी है। इस कला से मैथिल स्त्री की न केवल पहचान निर्मित हुई है, बल्कि यह कला वर्तमान में उनके उन्नत व्यवसाय का साधन भी बन गया है। हँसते-हँसते अपने हृदय की पीड़ा को कुची के द्वारा भित्ति पर उतारने की कला में मैथिल स्त्रियाँ प्रवीण हैं। यह चित्र शैली पितृप्रधान मैथिल समाज में हुए स्त्री के दमन,

शोषण और उत्पीड़न को व्यक्त करने का सर्वोत्तम साधन है। विवाह स्त्री जीवन के सुख और दुख दोनों का कारण है। परन्तु, यह धरुवसत्य है कि अधिकांश स्त्रियों के जीवन में विवाह दुख का ही प्रतीक होता है। बींसवी शताब्दी के उतरार्ध में मैथिल स्त्रियाँ बाल-विवाह, बहु-विवाह, बेमेल-विवाह एवं विधवा समस्या से पीड़ित थीं, जिसके परिणामस्वरुप उनका वैवाहिक जीवन त्रासदीपूर्ण था। एक चित्रकार की वाणी उसकी कुची होती है और कुची के माध्यम से उनके हृदय के चित्र को भित्ति पर उतारना पुरुष वर्चस्व से आहत स्त्री की पीड़ा को दर्शाता है। सीमित प्राकृतिक संसाधन में इस कला के माध्यम से वे अपने जीवन के दुख-सुख, हर्ष-आनंद, और अन्य इच्छाओं को चित्रकारी में उड़ेलकर, पुरुष प्रधान समाज के समक्ष अपने समग्र जीवन की दमित भावनाओं को मूर्त रुप देने में सफल हो जाती है, जो किसी न किसी कारणवश दमित रह गई हो। पद्म श्री से सम्मानित जगदम्बा देवी कोहबर चित्रकला की अन्यतम चित्रकार है। कोहबर के अन्तर्गत उनकी राधा-कृष्ण की रासलीला कोने-कोने में सर्वाधिक प्रशंसित हुई है। रासलीला के अति गुढ़ और क्लिष्ट चित्रण में उन्हें अपूर्व आनंद की अनुभूति होती थी। ध्यातव्य हो कि जगदम्बा देवी मधुबनी के जितवारपुर की ब्राह्मणी थी, जो दुर्भाग्यवश युवावस्था में ही संतानहींन विधवा हो गयी थीं। मिथिलांचल के ब्राह्मण परिवार में सिर्फ स्त्रियों के लिए यह अति कठोर प्रथा है कि ब्राह्मण स्त्री का जीवन में एक ही बार विवाह हो सकता है, चाहे वह बाल विधवा ही क्यों न हो। उसका पुर्नविवाह असंभव है। मिथिलांचल के पितृसत्तात्मक ब्राह्मण परिवार की असमानता के कारण जगदम्बा देवी के दमित हृदय की उद्‌गार कोहबर के रासलीला चित्रकला के रुप में प्रबल वेग से फूट पड़ी और वे इस चित्रकला को अपनी संतान की भाँति आजीवन सहेजती रही।

निष्कर्ष :

मधुबनी चित्रकला सिर्फ कला के लिए नहीं है, वरण यह कला जीवन के लिए है। इस कला के माध्यम से मैथिल स्त्रियां सीमित प्राकृतिक संसाधन में अपने जीवन के सुख-दुख, हर्ष-विषाद और अन्य इच्छाओं को चित्रकारी में उड़ेलकर, पुरुष प्रधान समाज के समक्ष अपने समग्र जीवन की दमित भावनाओं को मूर्त रुप देने में सफल हो जाती है, जो किसी न किसी कारणवश दमित रह गई हो। स्त्रियों के बुलन्द हौसले के कारण उत्पन्न, स्त्री द्वारा परंपरा के धरोहर के रुप में चलाई जानेवाली इस लोककला की सूत्रधार, कर्णधार और विश्व स्तर पर अपनी अतुलनीय प्रतिभा का लोहा मनवाने वाली मैथिल स्त्री ही है।

संदर्भः

1. डॉ. उपेन्द्र ठाकुर, मिथिलाक चित्रकला ओ शिल्पकला, मैथिली अकादमी, पटना।
1. www-hi-mithila-org
2. www-en-m-wikipedia-com

लेखिका : डॉ. प्रियंका कुमारी, 2019 - PHD (PG-Diploma) Jan University (Bangalore), PHD Hindi Sahitya, MA (UGC Net Hindi), 5 ए, टाइप-3, क्वार्टर्स, ब्लॉक-20, नेयवेली-607803, तमिलनाडु, मो. : 9443057237, ई-मेल : pkcney@gmail.com

✧ ✧ ✧

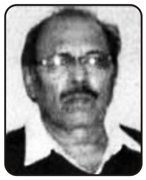

अज्ञेय के काव्य का अनुभूति संसार

डॉ. राजेन्द्र परदेसी

कवि की कविताओं में जीवित रहने की इच्छा भी अधिक तीव्रता एवं तीक्ष्णता के साथ व्यक्त हुई है। आज मानव एक ऐसे चक्रवात में फँसा हुआ है कि उसका जीवन दूभर हो रहा है। वह अगणित समस्याओं के घेरे में आबद्ध है, उसे जीवन की अनेक उलझनों ने अत्यन्त जटिल जाल में फांस लिया है और इसी आकुलावस्था एवं इसी उलझन भरी स्थिति का चित्र अंकित करने के लिए तथा जिजीविषा की धारणा को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए 'मछली' को प्रतीक बनाया है और 'बना दे चितेरे', 'सोन मछली' मछलियाँ, जीवन छाया, टेर रहा सागर', आदि कविताओं में इस जिजीविषा की भावना को इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय के काव्य का शुभारम्भ प्रणय की टीस, चुभन, कसक और छटपटाहट से हुआ है। इनकी दृष्टि में प्रणय का कोई साधनात्मक रूप नहीं है, अपितु वह वासनात्मक रूप को ही अधिक महत्त्व देता है। इसीलिए अज्ञेय ने संयोग के क्षणों की उन्माद स्थिति तथा वियोग के क्षणों की तड़पन एवं विरह कथा को अत्यन्त कुशलता के साथ अंकित किया है। कवि ने लिखा है- '... और प्रेम! एक थका-मांदा पंक्षी, जो सांझ घिरती देखकर आशंका से भी मरता है और साहस संचित करके लड़ता भी जा रहा है। निराशा और कुण्ठा से धैर्यपूर्वक लड़ता हुआ, किन्तु विश्वास की निष्कम्प अवस्था से कुछ नीचे, आज के प्रेम का सर्वोत्तम सम्भव रूप यही है। अन्धकार और आलोक का अनुक्रम, घृति और गति का सामंजस्य, वासना और विरह का संयोग, उदासी और खंडन के बीच में विश्वास का मुक्त स्वर जो सबल कई बार हो उठता है। पर निष्कम्प कभी नहीं। इसीलिए कवि ने लिखा-

> वे रोगी होंगे प्रेम जिन्हें अनुभव-रस का कटु प्याला है,
> वे मुर्दे होंगे प्रेम जिन्हें सम्मोहनकारी हाला है,
> मैंने विद्ग्ध हो जान लिया, अंतिम रहस्य पहचान लिया,
> मैंने आहुति बनकर देखा यह प्रेम यज्ञ की ज्वाला है।

अज्ञेय का विचार है कि प्रणय के कारण ही संयोग के क्षणों में प्रियतमा की देह कनक चम्पे की कली की तरह स्मरण करते ही सुगंध देने लगती है और उसका लावण्य चेतना मोह लेता है-

तुम्हारी देह
मुझको कनक-चम्पे की कली है
दूर ही से
स्मरण में भी गंध देती है
(रूप स्पर्शातीत वह जिसकी सुनाई कुहासे-सी चेतना को मोह ले)

साथ ही यह प्रणय विरह के आघात से दूना हो जाता है। इसी कारण वह विरह के क्षणों में पुकारता है-

पा न सकने पर तुझे संसार सूना हो गया है।
विरह के आघात से प्रिय! प्यार दूना हो गया है।

अज्ञेय की कविताओं में सबसे अधिक एक व्यक्ति निष्ठ कवि का रूप दिखाई देता है, वहाँ न वह क्रान्तिकारी है और न समाज-विद्रोही, अपितु संसार के आकर्षण में आबद्ध एक व्यक्ति है, जो कभी प्रकृति की रमणीयता में शान्ति का अनुभव करता है, तो कभी समाज की विविध समस्याओं में उलझा हुआ जान पड़ता है-

मैं कवि हूँ
द्रष्टा, उन्मेष्टा
संधाता
अर्थवाद
मैं कृतव्यय

अपनी इसी व्यक्तिनिष्ठता के कारण अज्ञेय रात्रि के क्षणों में छिटकती हुई चांदनी में अपने अन्त: स्पंदन को क्षण भर जीने का आग्रह करते है-

ओ प्रिय रहो साथ
भर-भर तक अँजुरी
पी लो
बरसी
शरद चांदनी
मेरा
अन्त: स्पंदन
तुम भी क्षण-क्षण जी लो,

अज्ञेय ने एक क्षण की अनुभूति को अत्यन्त महत्त्व दिया है। इसी कारण अन्य प्रयोगवादी कवि भी क्षणानुभूति को अधिक महत्वपूर्ण समझते है। अज्ञेय जीवन के प्रत्येक क्षण को अमोध मानते है, अजेय समझते है और स्वतंत्र एवं स्वच्छंद बताते है–

क्षण अमोध है
इतना मैंने
पहले भी पहचाना है
इसीलिए सांझ को
नश्वरता से नहीं बांधता

कवि की कविताओं में जीवित रहने की इच्छा भी अधिक तीव्रता एवं तीक्ष्णता के साथ व्यक्त हुई है। आज मानव एक ऐसे चक्रवात में फँसा हुआ है कि उसका जीवन दूभर हो रहा है। वह अगणित समस्याओं के घेरे में आबद्ध है, उसे जीवन की अनेक उलझनों ने अत्यन्त जटिल जाल में फांस लिया है और इसी आकुलावस्था एवं इसी उलझन भरी स्थिति का चित्र अंकित करने के लिए तथा जिजीविषा की धारणा को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए 'मछली' को प्रतीक बनाया है और 'बना दे चितेरे', 'सोन मछली' मछलियाँ, जीवन छाया, टेर रहा सागर', आदि कविताओं में इस जिजीविषा की भावना को इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

बना दे, चितेरे
मेरे लिए, एक चित्र बना दे
****
पहले सागर आंक
****
सागर आंक कर फिर आंक एक उछली हुई मछली
****
ऊपर अधर में
हवा का एक बुलबुला–भर पीने को
उछली हुई मछली
जिसकी मरोड़ी हुई देह–बल्ली में
उसकी जिजीविषा की उत्कष्ट आतुरता मुखर है

आर्थिक असमानता एवं विषमताओं ने आज मानव के हृदय में प्रतियोगिता की भावना जाग्रत की है और दुर्बल एवं असहाय व्यक्तियों के हृदय में पूंजीपतियों एवं धानाढ्यों के प्रति ऐसी तीव्र घृणा पैदा की है जिसे अज्ञेय अपने शब्दों में इस तरह व्यक्त करते है–

तुम जो बड़े-बड़े गद्दों पर, ऊँची दूकानों में
उन्हें कोसते हो जो भूखे मरते हैं खानों में
तुम, जो रक्त चूस ठठरी को देते हो जलदान
सुनो तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान

अज्ञेय ने समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता एवं विषमताओं के प्रति आक्रोश एवं घृणा ही व्यक्त नहीं की है, अपितु इस असमानता को मिटाने एवं दूर करने के लिए संघर्ष की प्रेरणा भी प्रदान की है तथा इस भयंकर वैषम्य हटाने के लिए ''अग्निधर्म'' मनाने के लिए प्रेरित किया है, द्रष्टव्य है-

हमने न्याय नहीं पाया है, हम ज्वाला से न्याय करेंगे
धर्म हमारा नष्ट हो गया, अग्नि धर्म हम हृदय धरेंगे।

यह अग्निधर्म और कुछ नहीं, सामाजिक क्रान्ति का आह्वान है। जन-आन्दोलन की प्रेरणा है और उन कामगारों, मजदूरों एवं श्रमजीवियों को जाग्रत करने वाला धर्म है, जो रात-दिन अपने शरीर का होम करके भरपेट भोजन नहीं पाते, जो गरीबी का शिकार बने हुए है, जिनको श्रम का मूल्य पूरा-पूरा नहीं मिलता, जिनकी कमाई पर धनिक लोग गुलछर्रे उड़ा रहे हैं और जिनका रक्त चूस-चूस कर समाज के ठेकेदार कोटियों एवं हवेलियों में शान के साथ विलास-क्रिया करते रहते हैं। इसीलिए अज्ञेय का कवि इस विषमता के अंधकार को मिटाकर समानता का आलोक प्राप्त करने के लिए बेचैन है, दृष्टव्य है-

कवि एक बार फिर गा दो
एक बार इस अंधकार में फिर आलोक दिखा दो

अज्ञेय ने जहाँ सामाजिक जीवन में व्याप्त कुण्ठा, निराशा, बेबसी, घुटन, विषमता आदि के गीत गाते हैं, वहाँ नूतन सौन्दर्य-बोध को भी उन्होंने अभिव्यक्ति प्रदान की है। वह परम्परावादी नहीं है। वह नवीनता के पुजारी है। इसी कारण सौन्दर्य-चित्रण की प्राचीन पद्धति, पुरातन शैली, परम्परागत प्रणाली आदि अच्छी नहीं लगती। पुराने उपमान मैले दिखाई देते हैं पुराने प्रतीक निर्जीव जान पड़ते है और पुरानी पद्धति व्यर्थ एवं निस्सार प्रतीत होती है। वह जब अपनी प्रेयसी के रूप-सौन्दर्य की झांकी अंकित करना चाहते है, तब वह कह उठते है-

अगर मैं तुमको
लजाती सांझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार-न्हाई कुई
टटकी कली चम्पे की

वगैरह, तो
नहीं, कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सुना है
या कि मेरा प्यार मैला है
बल्कि केवल यही
ये उपमान मैले हो गये हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गये है कूच।

इसीलिए कवि जब सौन्दर्य का चित्र अंकित करना चाहता है, तब वह प्राचीन उपमानों पुराने प्रतीको एवं पुरानी पद्धति का प्रयोग नहीं करता अपितु, एकदम नवीन पद्धति को अपनाता हुआ सौन्दर्य-चित्र इस प्रकार अंकित करता है-

तुम्हारे नैन
पहले भोर की दो ओस-बूंदे हैं
अछूती, ज्योतिमय
भीतर द्रवित
(मानो विधाता के हृदय में
जग गई हो भाप करूणा की अपरिमित)
तुम्हारे ओठ
पर उस दहकते दाड़िम-पुहुप को
मूक तकता रह सकूं मैं-
(सह सकूं मैं ताप ऊष्मा का, मुझे जो लील लेती है)

अज्ञेय ने जहाँ मानव-जीवन के बारे में चिन्तन-मनन करते हुए आधुनिक जीवन में व्याप्त विषमता, कुण्ठा, निराशा, क्षोभ, जिजीविषा आदि का चित्रण किया है। वहाँ आत्मा एवं परमात्मा के बारे में चिन्तन-मनन करते हुए आत्मा को परिणीता वधू एवं परमात्मा को महाशून्य के रूप में स्वीकार किया है। महाशून्य को महामौन, अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय एवं शब्दहीन माना है, मगर फिर भी वह सब कुछ गाने वाला है। अंधकार में ज्योति जगाने वाला है, करूणा-धाम होने के कारण सभी प्राणियों पर करूणा करता है। वह अरूप होकर भी संसार के सभी रूपों में खिलता है। अगोचर होकर भी संसार के पदार्थो में गोचर होता है, अनुभव में अतीन्द्रिय है और पुरूषों के हर वैभव में ओझल अपौरूषेय है-

रूपों में एक अरूप सदा खिलता है
गोचर में एक अगोचर, अप्रमेय
अनुभव में एक अतीन्द्रिय
पुरूषों के हर वैभव में ओझल
अपौरूषेय मिलता है।

कवि अज्ञेय को प्रकृति-सुन्दरी से अगाध प्रेम एवं अनन्य आस्था है। उन्हें प्रकृति के अन्तर्गत एक चेतना का आभास मिला है जिसके कारण उसे कभी सागर मतियाता जान पड़ता है। पवन तरंग की पंख युक्त वीणा पर उमग से गाती हुई जान पड़ती है तथा सागर का किनारा झूमता हुआ एवं डगमगाता जान पड़ता है। कवि ने प्रकृति के साथ तादात्म्य भी किया है। वह सोते के साथ बहना पसंद करता है। पक्षियों के साथ गाना पसंद करता है। वृक्षों और कोपलों के साथ थरथराना पसंद करता है। कवि प्रकृति के साथ गलकर नया जीवन और नये प्राण पाता है-

मैं सोते के साथ बहता हूँ
पक्षी के साथ गाता हूँ
वृक्षों के, कोपलों के साथ थरथराता हूँ
झरे पत्तों के साथ गलता और जीर्ण होता रहता हूँ
नये प्राण पाता हूँ

अतः अज्ञेय की भावानुभूति का अनुशीलन करने से स्पष्ट होता है कि वे प्रणयानुभूति से लेकर स्वदेशानुराग तक विविध आयामों से गुजरे हैं, परन्तु उनकी भावानुभूति मुख्यतः आत्मोन्मुख है। जन-जीवन से उन्हें विशेष प्यार है, किन्तु आत्मान्वेषण एवं आत्मानुभूति की ओर उनका विशेष झुकाव है। वे आन्तरिक एकान्त से निकल कर प्रकृति के विराट क्षेत्र में विचरण करते नजर आते हैं तथा सर्वव्यापी चिरन्तन, सम्पूर्ण रूपों में व्याप्त अरूप, अनाम, अगोचर एवं महाशून्य रूपी सत्ता की ओर उन्मुख है-बौद्ध धर्म से प्रभावित होने के कारण उनमें करूणा, मैत्री, मानवता प्रेम आदि के साथ-साथ समर्पण की भावना का आधिक्य होता चला गया है।

अज्ञेय ने प्रकृति के अनिंद्य सौन्दर्य की रमणीय झांकियाँ भी अंकित की है। प्रकृति से प्रेरणा ली है और उसे सचेत एवं सावधान करने वाली दैवी शक्ति के रूप में भी देखा है-

जागो, जागो
जागो, सखि, वसन्त आ गया, जागो
पीपल की सूखी खाल स्निग्ध हो चली
सिरिस ने रेशम से बेणी बांध ली
नीम के भी बौर में मिठास देख
हँस उठी कचनार की कली
टेसुओं की आरती सजा के
बन गई वधू वनस्थली

अज्ञेय का हृदय अपने देश के कण-कण में रमा हुआ है। उसे यहाँ की डगर-डगर से प्यार है। गांव-गांव में उसकी भावना रम रही है। शहर-शहर में उसके विचार मंडरा रहे हैं और झोपड़ी से लेकर हवेली तक वह अपने देश से परिचित है। वह जानते हैं कि यहाँ किस तरह छप्पर के नीचे दुबले-पतले लोग सिकुड़कर अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं और वह यह भी जानते हैं कि किस तरह विषैली वासना के सांप का जहर मोटे-मोटे पूंजीपतियों की रग-रग में फैल रहा है जिसके फलस्वरूप वे हवेली में नहीं समाते और इधर-उधर टांग फैलाते हैं। कवि इसी स्वदेशानुराग से प्रेरित हो कटु व्यंग्य करता है-

इन्हीं तृण-फूस छप्पर से
टंके ढुलमुल गंवारू
झोपड़ों में ही हमारा देश बसता है
इन्हीं के ढोल-मादल बांसुरी के
उमगते सुर से
हमारी साधना का रस सरसता है।
इन्हीं के मर्म को अनजान
शहरों की ढंकी लोलुप
विषैली वासना का सांप डसता है,
इन्हीं में लहरती अल्हड़
अयानी संस्कृति की दुर्दशा पर
सभ्यता का भूत हंसता है।

अतः अज्ञेय की भावानुभूति का अनुशीलन करने से स्पष्ट होता है कि वे प्रणयानुभूति से लेकर स्वदेशानुराग तक विविध आयामों से गुजरे हैं, परन्तु उनकी भावानुभूति मुख्यतः आत्मोन्मुख है। जन-जीवन से उन्हें विशेष प्यार है, किन्तु आत्मान्वेषण एवं आत्मानुभूति की ओर उनका विशेष झुकाव है। वे आन्तरिक एकान्त से निकल कर प्रकृति के विराट क्षेत्र में विचरण करते नजर आते हैं तथा सर्वव्यापी चिरन्तन, सम्पूर्ण रूपों में व्याप्त अरूप, अनाम, अगोचर एवं महाशून्य रूपी सत्ता की ओर उन्मुख है-बौद्ध धर्म से प्रभावित होने के कारण उनमें करूणा, मैत्री, मानवता प्रेम आदि के साथ-साथ समर्पण की भावना का आधिक्य होता चला गया है।

डॉ. राजेन्द्र परदेसी, 44—शिवविहार, फरीदीनगर, लखनऊ—226015
मो. : 09415045584, ई—मेल : rajendrapradesi66@gmail.com

✧ ✧ ✧

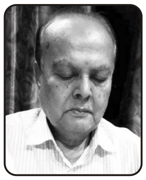

आलेख

महाकवि गोवर्द्धन प्रसाद सदय की साहित्य-साधना

डॉ. रामसिंहासन सिंह

महाकवि गोवर्द्धन प्रसाद सदय का जन्म 11 अक्टूबर 1925 को गया धाम में हुआ था। गया की धरती पर पं० जानकी वल्लभ शास्त्री, हंस कुमार तिवारी, पं० मोहनलाल महतो वियोगी और कविवर गोवर्द्धन प्रसाद सदय का जन्म हुआ। ऐसा कहा जा सकता है कि गया की धरती साहित्यिक उर्वरा से परिपूर्ण रही है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर, आचार्य शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, राजाराधिका रमण प्रसाद सिंह, कलक्टर सिंह केसरी पं० रामदयाल पाण्डेय के सन्निध्य में रहनेवाले कविवर गोवर्द्धधन प्रसाद सदय आज भी उन लोगों का संस्मरण सुनाते नहीं अघाते थे।

महाकवि गोवर्द्धन प्रसाद सदय आधुनिक युग के महान साहित्यकार कवि और सम्पादक थे। जीवन के दोनों पक्षों-परूष और कोमल के गायक, कलम के धनी सदय जी एकमात्र कवि ही नहीं तेजस्वी विचारक, श्रेष्ठ वक्ता भी थे। इनकी वाग्धारा में श्रोताओं को प्रभावित कर उन्हें अपनी मनोवांछित दिशा में बहा ले जाने की क्षमता थी। इनकी वाणी में अदम्य तेज, सशक्त पौरूष का ओज था और था सुस्पष्टता और स्वस्थ चिन्तन का रस। ये हिन्दी कविता के पराक्रमी कवि थे। ये क्रान्त द्रष्टा, नवस्रष्टा दोनों थे। ये युग कवि थे, समकालीन जनजीवन के कवि, धूल और धरती के कवि। जगत में इनकी कविताएँ मानो यौवन के माधुर्य और ओज की विवृत्ति के लिए ही अवतरित हुए हैं। वीर, श्रृंगार और करूण तीनों रसों में इनकी प्रतिभा समान रही है। इनकी दृष्टि जीवन की अतल गहराई का दर्शन करती है। कवि-कर्म की कठोरता और उत्तरदायित्व के निर्वाह में ये सजग, सतर्क और सक्षम रहे हैं। ये परम्परा के साथ-साथ युगीन परिस्थितियों, चतुर्दिक विस्तीर्ण समस्याओं, युग प्रश्नों से भी प्रभावित हुए हैं। भारतीय सभ्यता संस्कृति, उसके अतीत इतिहास के प्रति इनके हृदय में गहरी आस्था और श्रद्धा है।

श्री सदय जी विराट गायक, उदार से ऐसी काव्य शक्ति की याचना करते है, जिससे उन्हें युग गायक बनने, इस तमस्त्रि युग को ज्योति की रागिनी सुना सकने की क्षमता प्राप्त हो सके/जिससे तीनों काल उसके स्वर में ध्वनित हो उठे। भवन की सप्त चेतना उदबुद्ध हो जाय। सदय जी सृष्टि और स्रष्टा, युग की

प्रेरणा और प्रेरक दोनों है। इन्होंने समय की गतिविधि जनता की चिन्त-वृत्ति तथा युग की चेतना को भली भाँति पहचाना है। ये अपने समय के सबसे अधिक जागरूक, विकासशील और सारग्राहिणी प्रवृति के कवि है। जितनी सचेष्ट सामाजिक चेतना इनके काव्य में अभिव्यक्त हुई है और उसे काव्यात्मक स्वरूप देने का जैसा कविकर्म इन्होंने किया है, वह इन्हें जन जीवन का कवि ही नहीं बनाती वरन् हिन्दी में इनके विशिष्ट स्थान का प्रमाण भी देती है। सदय जी आधुनिक काव्य-धारा में उस श्रेणी के कवि है, जिसके संस्कारों में भारतीयता और आध्यत्मिकता की भावना व्याप्त है।

महाकवि गोवर्द्धन प्रसाद सदय का जन्म 11 अक्टूबर 1925 को गया धाम में हुआ था। गया की धरती पर पं० जानकी वल्लभ शास्त्री, हंस कुमार तिवारी, पं० मोहनलाल महतो वियोगी और कविवर गोवर्द्धन प्रसाद सदय का जन्म हुआ। ऐसा कहा जा सकता है कि गया की धरती साहित्यिक उर्वरा से परिपूर्ण रही है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर, आचार्य शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, राजाराधिका रमण प्रसाद सिंह, कलक्टर सिंह केसरी पं० रामदयाल पाण्डेय के सन्निध्य में रहनेवाले कविवर गोवर्द्धन प्रसाद सदय आज भी उन लोगों का संस्मरण सुनाते नहीं अघाते थे। सच्ची बात तो यह है कि नब्बे बसंत देखने वाले महाकवि सदय की वाणी में जहाँ एक ओर ओज है, तो दूसरी ओर कोमलता भी है, मानवता की गंध है, तो प्रकृति प्रेम की उदान्त भावना भी। एक ही साथ सदय जी महाकवि कथाकार, नाटककार, सफल गद्यकार और मानवता के प्रेमी है। गया की धरती पर जहाँ कहीं साहित्यिक गोष्ठी, सांस्कृतिक कार्यक्रम, सामाजिक मिलन हो वहाँ आप सदय जी को अवश्य पायेंगे।

इनकी प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा गया में ही हुई। 1950 में इन्होंने पटना विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम० ए० किया। इन्होंने एक सम्पादक के रूप में अपना जीवन प्रारंभ किया। 1950 से 53 तक इन्होंने 'जनता' दैनिक में श्री रामवृक्ष बेनीपुरी के साथ वरीय उप-सम्पादक के रूप में कार्य किया। तत्पश्चात डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु के साथ 'अवन्तिका' मासिक में उप संपादक रहे। साथ ही वर्षो तक 'चुन्नू-मुन्नू' मासिक बाल पत्रिका का सम्पादन किया। 1957 से 62 तक बिहार सरकार की पत्रिका 'बिहार समाचार' तथा 1962 से 65 तक पंचायती राज पत्रिका के सम्पादक रहे। 1965 से 1977 तक बिहार सरकार के जनसम्पर्क विभाग में सहायक निदेशक तथा 1977 से 85 तक उप-निदेशक पद पर कार्य किया। अक्टूबर 1985 से सेवा निवृत्त होकर शुद्ध साहित्यिक कार्य में दतचित रहकर अंतिम समय तक साहित्य साधना करते रहे।

इनकी प्रकाशित पुस्तकें हैं-संसाधन (कविता संग्रह), मनुहार (गीत संग्रह), कोठरी की आत्मा (कविता संग्रह), फुलवारी (बाल कविता), फूलों की क्यारी (बाल कहानियाँ), प्रणति (भक्ति काव्य संग्रह), लोक कृषि (खण्ड काव्य), अपनी बगिया अपने फूल (किशोरोपयोगी मगध परिचय), वायुनन्दन (भक्ति गीत), राम व्याख्यान (बाल्मिकीय रामायण पर आधारित महाकाव्य), भगवान बुद्ध (किशोरोपयोगी जीवनी), संकल्प (कविता संग्रह), बाल रामायण, भगवान बुद्ध, तीन तीर्थ, तीन रहन, कालयुग आदि प्रमुख है।

महाकवि सदय पुरानी पीढ़ी के एक सुख्यात, प्रतिष्ठि, सशक्त प्रौढ़ साहित्यकार थे, जिनकी कविताओं में छन्द अलंकार के प्रवाह है। इनके द्वारा सम्पादित दर्जनों पत्र-पत्रिकाएँ तथा पुस्तकें है। इन्हें बिहार सरकार द्वारा राष्ट्रभाषा परिषद् की ओर से 1993 में 'साहित्य सेवा सम्मान' प्रदान किया गया है। इनके अतिरिक्ति महाकवि प्रभात सम्मान तथा भाषा साहित्य परिषद् द्वारा भी

पुरस्कृत किये गए है। वर्तमान में ये अनवरत विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखन कार्य तथा 'आकाशवाणी' और 'दूरदर्शन' से कविता, कहानी, वार्त्ता आदि प्रसारण में कार्यरत है। गया जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष गया नागरी प्रचारिणी सभा के उपाध्यक्ष तथा विभिन्न संस्थाओं के संस्थापक है। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि श्री सदय जी एक व्यक्ति नहीं संस्था थे। सादा जीवन उच्च विचार इनके व्यक्त्वि में चार चाँद लगाता रहा। सादगी और सरलता के ये प्रतिमूर्ति थे आज के साहित्यकारों और युवाओं के ये प्रेरणा-स्रोत भी थे। मगध विश्वविद्यालय के अनेकों छात्र इनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर शोध कार्य में संलग्न है।

आचार्य शिवपूजन सहाय, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, पं० मोहन लाल महतो वियोगी, लक्ष्मी नारायण सुधांशु, छविनाथ पाण्डेय, नलिन विलोचना शर्मा, रास बिहारी लाल, आई० ए० एस० सत्यव्रत शर्मा सुजन स्वनाम धन्य साहित्यकारों की सम्मतियाँ इनकी साहित्य साधना की धरोहर है। इनकी यही कामना है:-

ऐसी विभा यहाँ फैलाओ, अनाचार मिट जाए,
गूँजे मंगल नाद चतुर्दिक दानव बल थर्राए,
यज्ञ-वेदिक रहे प्रज्वलित, फहराओ ध्वज नूतन,
सौहार्द प्रेम की नयी लहर से आध्याचित हो जन-जन,
तम का दुर्गम गढ़ ढह जाए, नयी रोशनी लाओ!
मानवता के इस मंदिर को फिर आदर्श बनाओ!!

कवि का आदर्श मानवता है। उनकी कविताओं में मानवता की गंध मिलती है। यह सर्वविदित है कि श्री सदय ने एकनिष्ठ और एकान्त भाव से वर्षो तक जो अनवरत साधना की है- कठिन परिस्थितियों से निरन्तर संघर्ष करते हुए जो जीवन जिया है, कटु यथार्य की तेज आँच में तपकर जो कुछ अर्जित किया है- उसकी निर्मल छटा कविताओं में दिखाई पड़ती है। प्रारम्भ से हीं उनकी रचना प्रक्रिया नवगीतकारों से बिल्कुल अलग रही है। इसी प्रकार, उनकी अपनी निजी शब्द सम्पदा है, अपनी भाव-व्यंजन और अपना काव्य शिल्प है। श्री सदय जी जो भी रचते हैं, लगता है सहज भाव से रचते है। फिर अपनी ही कसौटी पर कसते हैं। पूरी तरह निखर आने के बाद ही उसे प्रकाश में लाते हैं।

मुझे तो ऐसा लगता है मानों उन्होंने कविता की ही न हो, बल्कि अनुभूतियों एवं परिवेश-गत बेकली के दबाव में बिना किसी यांत्रिक प्रयास उनसे भाव एक झरने-सी झरने लगे हो। ऐसा उनके लिए कठिन नहीं कहा जा सकता क्योंकि अनुभूति के क्षणों की वह एकलय समाधिस्थता उनमें है, जो रचनाकार को तन्मयता प्रदान करती है। कविता उसी क्षण उनकी सहचारिणी बन जाती है। इस रससिक्तता को वे गीतिक्षण कहते है। इस कथ्य को रेखांकित करते हुए श्री सदय जी कहते हैं-

वह जीवन की निर्झरणी जो पत्थर की छाती तोड़ रही,
जो चूर्ण बना चट्टानों को बाधाओं को झकझोर रही
जो उतर शिखर से कूलों की बाहों में खोई रहती है,
जो मरू के सूखे प्राणों में अन्त: सलिला बन बहती है।

जो मूक व्यथा की धड़कन है, संघर्ष ब्रती की जयवाणी।
ऐसी ही घारा लहती है, लहरों में मेरी अगवानी!

प्रत्येक कवि की अपनी एक स्वतंत्र भावुकता होती है। कवि अपनी अन्तरात्मा को अपनी कविता में प्रतिबिम्बित देखना चाहता है। अपनी कविताओं में अपनी भावनाओं की मूर्तिवती प्रतिमा का अवलोकन कर विश्व को उसके द्वारा तन्मयता का दिव्य संदेश पहुँचाना चाहता है। विभिन्न कवियों ने परिस्थितियों और भावनाओं के अनुरूप विभिन्न कविताएँ की हैं।

'राम अख्यान' इनका महाकाव्य है। राम काव्य की परम्परा में 'राम अख्यान' का विशिष्ट महत्व है। इस महाकाव्य की भूमिका में डॉ० राम निरंजन परिमलेन्दु की लेखनी से स्वत: फूट पड़ी है। 'राम आख्यान' जैसी कृति की रचना कभी-कभी ही होती है। जब साधना अपना कीर्तिमान स्वयं स्थापित कर लेती है। निष्काम शाश्वत रामभक्ति जब अपनी उँचाई और गहराई का निर्माण स्वयं कर लेता है, तब कृतिकार 'राम आख्यान' को पुर्नप्रतिष्ठापित करता है। यह सत्य है। यह सत्य किसी भी प्रौढ़ रचनाकार के लिए गौरव का विषय हो सकता है। सदय जी के इस महाकाव्य की प्रासंगिकता युग-युग तक सदैव का विषय हो सकता है। सदय जी के इस महाकाव्य की प्रासंगिकता युग-युग तक सदैव सुरक्षित रहेगी। जबतक भारत है, हिमालय है, गंगा में जल है, तब तक श्री राम की कथा है, जबतक मानव जाति है तब तक यह ''राम आख्यान'' सदा जीवित रहेगी, चाहे जो दिन आए, क्योंकि राम ज्योति है, जीवन ज्योति है। अंत: मंगल कारी है। इसमें काल धर्मी ग्रहणशीलता है। इस रामगंगा में भारत का सांस्कृतिक संदेश निहित है।

महाकाव्य की कसौटी पर 'राम आख्यान' एक सफल रचना है। मुझे तो 'साकेत' से भी ज्यादा साहित्यिक भावनाएँ 'राम आख्यान' में दृष्टिगोचर होते हैं। यह पुस्तक बिल्कुल बाल्मिकी रामायण पर आधारित है। प्रथम सर्ग में हीं इसकी पुष्टि मिलती है-

बाल्मिकी मुनि का यह आश्रम पावन शुभ्र प्रदेश-
यहीं हुआ है मंजुल-मंगल लव-कुश का उन्मेष,
पहले पहल यही गूँजा है रामायण का गान-
राजमहल की वैदेही है पर्ण-कुटी का प्राण।

आज सदय जी हमारे बीच नहीं हैं किन्तु उनकी रचनाएँ उनकी स्मृति उनका आदर्श हमारे साथ है। मुझे तो उनमें और उनकी रचनाओं में द्वापर युग का वादन, कभी जीव-जन्तुओं का आर्तनाद सुनायी देता है तो कभी तरूलताओं का मूक-क्रन्दन और त्रेता युग का स्वर भी।

आधुनिक युग बोध के प्रहरी थे। अन्तत: महाकवि गोवर्द्धन प्रसाद सदय की रचनाओं के परिपेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि वे हिन्दी भाषा साहित्य के मूर्धन्य महाकवियों में परिगण्य हैं। ऐसे कालजयी महाकवि को कोटिश: नमन।

डॉ. रामसिंहासन सिंह, पूर्व प्रधानाचार्य, चम्बा कुंज, दुर्गानगरी, निकट-सुधाटॉकीज, मानपुर, गया
मो. : 9631332910

✧ ✧ ✧

प्रवासी कथा साहित्य और स्त्री

डॉ. अनिता कपूर

अमरीका में 30 वर्षों से प्रवासी होते हुए भी सुषमा बेदी जी भारतीय समाज की संस्कृति और रीति-रिवाजों को भुला नहीं पायी, जहाँ आज भी स्त्री हर रस्मों-रिवाज को निभाने में पूरा सहयोग करती है। चूँकि इस कहानी में स्त्री विदेशी मूल की है, तो उसका एक अलग ही रूप दर्शाया गया है जो भारतीय स्त्री से कहीं भी मेल नहीं खाता, और उसकी पीड़ा नायक सहता है। सुषम बेदी जी की कहानी 'अवसान' में नायक शंकर अपने दोस्त दिवाकर का अंतिम संस्कार हिंदू रीति से करना चाहता है, परंतु उसकी अमेरिकी पत्नी हेलन चर्च में ही सारी औपचारिकताएँ पूरी करना चाहती है। यहाँ नारी का दूसरा रूप दर्शाया है जो 'पार्किंग' कहानी की नायिका के बिलकुल विपरीत है, जबकि दोनों नायिकाएँ अमरीकी मूल की हैं।

ऐसा माना जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है फिर चाहे वो भारतीय समाज हो या अपनाये हुए देश का समाज हो। प्रवासी भारतीयों की सोच भारत में हो रही गतिविधियों से भी संचालित होती है, और यह संचालित सोच प्रवासी लेखन में बखूबी दिखाई भी देती हैं, फिर चाहे वह कोई भी विधा हो। प्रवासी कथा साहित्य का रंग-रूप भारत के पाठकों के लिए एक नयेपन का बोध देता है, कारण है, प्रवासी कथा साहित्य में अपने अपनाए हुए देश के परिवेश, संघर्ष, विशिष्टताओं, रिश्तों और उपलब्धियों पर जाने-माने प्रवासी कथाकारों ने अपने लेखन के द्वारा एक भिन्न समाज से परिचय करवाया है। विषय समाज की ठोस समस्याओं से जुड़े होते हैं और नारी चरित्रों एवं परिवेश के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों और अन्याय का अनावरण भी किया जाता है। प्रवासी के लिए यह आसान नहीं होता कि वह अपने अपनाए हुए देश की संस्कृति, सभ्यता और रीति-रिवाज से पूरी तरह जुड़ पाए। उनकी जड़ें अपनी मातृभूमि, संस्कारों एवं भाषा से जुड़ी होती हैं। और जहां तक स्त्री की बात आती है तो सभी धर्मों और देशों में नारी का रुतबा हमेशा से दोयम दर्जे का रहा है जो प्रवासी रचनाकारों की कथाओं में भी झलकता है।

प्रवासी कथा-साहित्यकारों में ऐसे बहुत से नाम है, जिनकी रचनाओं को पढ़कर आप बखूबी अनुमान लगा लेंगे कि आज भी विदेशों में रहते हुए भी, वे दुनिया को भारतीय चश्में से देखते हैं, इसीलिए उनका लेखन

नयेपन के बावजूद भी पाठक के दिल के करीब होता है और मन को छू जाता है। अमरीका में विगत 25 वर्षों से रह रही जानी मानी कथाकार सुधा ओम ढींगरा जी के कहानी संग्रह, 'कौन सी जमीन अपनी', की कहानी 'क्षितिज से परे', पाठक को वाकई सोचने पर मजबूर कर देती है कि, औरत ही हमेशा त्याग की मूरत बनी रहे, पुरुष चाहे भारत की जमीं पर रहता हो या विदेशी जमीं पर। कहानी की नायिका, सारंगी जो सिर्फ सत्रह साल की उम्र में अपने पति सुलभ के साथ कैनेडी एयरपोर्ट पर डरी-सहमी-सी उतरी थी और अमेरिका में पहले ही दिन उसके पी.एच.डी. उम्मीदवार पति ने उसे 'बेवकूफ' कह कर पुकारा था और चार पढ़े-लिखे और अच्छे कैरियर वाले बच्चों की माँ होने के बावजूद चालीस साल तक उसका पति उसे बेवकूफ कह कर पुकारता रहा, सारंगी त्याग और सहिष्णुता की देवी बनी सारे कर्तव्य चुपचाप निभाती रही। अंत में वह फैसला करती है कि उसे अपने पति को तलाक देना होगा, उसका पति अभी भी चालीस साल पहले की मानसिकता में जी रहा है। दसवीं पास सारंगी, जिसने हर रोज पराये देश में संघर्ष किया, सोच और समझ दोनों में बहुत आगे निकल गई है। वह अब और अपने पति से जुड़ी नहीं रह सकती। उसकी प्राथमिकताएँ बदल गई है। सारी जिम्मेदारी का निर्वाह करने के बाद आज वह आखिरकार हिम्मत जुटा पायी है...कि अपने आसमान की तलाश उसे करनी ही होगी, जहाँ वह उम्र के पड़ाव को भी पछाड़ सकती है। चूंकि कोई भी कहानी रिश्तों और समस्याओं की तर्कसम्मत प्रस्तुति होती है इसी कारण कहानी में समस्याओं का हल प्रस्तुत करने के लिए लेखिका ने विदेशों में रह रहे भारतीयों, खास कर महिलाओं के बारे में एक गलतफ़हमी को दूर करने का सफल प्रयास किया है। अमरीका कि प्रसिद्ध लेखिका रचना श्रीवास्तव जी को विदेश जाकर जो माहौल दिखा, उसमे वह कहती है कि, हम स्त्रियों की दशा थोड़ी कष्टप्रद होती है। भारतीय संस्कार और यहाँ के वातावरण में तालमेल बैठाना कठिन होता है, बहुत समय लगता है अपने आपको इस माहौल में ढालने के लिए। कभी किसी महिला का दर्द शब्दों में ढल कर कविता या कहानी का रूप ले लेता है। भारतीय समाज और विदेशी समाज की धारणाएँ अलग होते हुए भी .....यहाँ भी पुरुष सिर्फ अपने लिए ही जीता है.....इसकी मिसाल उनकी एक कहानी 'पार्किंग' है ...जिसमे नारी पात्रों के जरिये रचना जी ने विदेशी समाज और भारतीय समाज की नारी के रिश्तों के प्रति सोच और त्याग को एक जैसा ही दर्शाया है, और पुरुष की स्वार्थी मानसिकता को भी। नायिका जूलिया का रूखा व्यवहार स्नेह को तब समझ आता है जब जूलिया उसे अपनी आपबीती सुनाती है कि, किस तरह वह पति के हाथों छली गयी है और बेटे के एक्सिडेंट ने उसे और भी तोड़ दिया है पर वह फिर भी जीती है बेटे की खातिर.....परिवेश कोई भी हो आज भी नारी ही चुपचाप सहती है परिवार और बच्चों की खातिर।

अमरीका में 30 वर्षों से प्रवासी होते हुए भी सुषम बेदी जी भारतीय समाज की संस्कृति और रीति-रिवाजों को भुला नहीं पायी, जहाँ आज भी स्त्री हर रस्मों-रिवाज को निभाने में पूरा सहयोग करती है। चूँकि इस कहानी में स्त्री विदेशी मूल की है, तो उसका एक अलग ही रूप दर्शाया गया है जो भारतीय स्त्री से कहीं भी मेल नहीं खाता, और उसकी पीड़ा नायक सहता है। सुषम बेदी जी की कहानी 'अवसान' में नायक शंकर अपने दोस्त दिवाकर का अंतिम संस्कार हिंदू रीति से करना चाहता है, परंतु उसकी अमेरिकी पत्नी हेलन चर्च में ही सारी औपचारिकताएँ पूरी करना चाहती है। यहाँ नारी का दूसरा रूप दर्शाया है जो 'पार्किंग' कहानी की नायिका के बिलकुल विपरीत है, जबकि दोनों नायिकाएँ अमरीकी मूल की हैं। हेलन शंकर का साथ न देकर जिद पर

अड़ी हैं, जिसके चलते शंकर, पादरी की क्रिया खत्म होते ही गीता के श्लोकोच्चारण से अपने मित्र के अंतिम संस्कार की क्रिया को पूर्ण करता है और फिर वह कैसे बहुत संयत तथा हल्का महसूस करता है।

ब्रिटेन की शैल अगरवाल जी की कहानी 'वापसी' मे परंपरा तथा आधुनिकता के अन्तर्द्वन्द्व में फंसी नायिका पम्मी अपने घर-परिवार की मान-मर्यादा के लिए अपनी खुशियों तथा आकांक्षाओं का गला घोंट देती है। नारी को फिर त्याग की मूर्ति दिखाया है उसके हिसाब से हित के लिए लिया गया निर्णय सौदा नहीं, त्याग होता है और वह कहती है कि मैं ही क्या हमारे यहाँ तो हजारों पम्मियाँ सदियों से ही करती आ रही हैं। नारी-हित की बातें करने वाले इस देश में बस यही होता आया है। पहले राधा-कृष्ण अलग किए जाते हैं या फिर उनके मंदिर बना दिए जाते हैं। आदत डाल लो तो समुंदर में तैरती मछली भी खुशी-खुशी काँच के बॉल में तैरने लग जाती है।' (पृ. 42) परंपरा तथा आधुनिकता के अन्तर्द्वन्द्व में फँसी पम्मी अंततः हेमंत के साथ जाने को तैयार हो जाती है और खास बात तो यह कि उसकी दादी भी उसकी वापसी के लिए अपनी सहर्ष सहमति देती है। कहानी के अंत को पढ़कर पुरानी पीढ़ी की नारी (दादी) को नये परिवेश में ढलते दिखाना कहीं न कहीं बदलते समाज का रूप है ...चाहे धीरे धीरे ही सही। नारी का एक विश्व प्रसिद्ध रूप कर्मठता का भी है, चाहे देशी धरती या विदेशी। महिला चाहे तो अपनी मेहनत और लगन से कुछ भी हासिल कर सकती है और यह लंदन की उषा राजे सक्सेना जी कहानी, 'बीमा बीस्माट' एक बिल्कुल नये कथानक से पाठकों को परिचित कराती है। कहानी एक शिक्षिका द्वारा एक अर्धविक्षिप्त बालक बीमा बीस्माट को एक जिम्मेदार ब्रिटिश नागरिक बनाने की कडी मेहनत, लगन और समर्पण को प्रस्तुत करती है। गौतम सचदेव की कहानी 'आकाश की बेटी' साधना नाम की स्त्री के त्यागपूर्ण तथा संघर्षमय जीवन की कथा है। घर-परिवार के सारे रिश्तों को तोड़कर तमाम सुख-सुविधाओं को छोड़कर जिस देविंदर के प्यार के लिए साधना झूठ बोलकर इंग्लैंड चली जाती है, वहाँ जाने पर देविंदर द्वारा छली जाती है। देविंदर का रुखा व्यवहार तथा एक अन्य ब्रिटिश मेम शाइला से प्यार उसे तलाक के लिए मजबूर कर देता है। दूसरी शादी में भी उसे इसी प्रकार की समस्याओं से दो-चार होना पड़ता है। वह अपनी बेटी बबली को भी गँवा देती है। अपने घर के दालान में कबूतरों को दाना चुगाती साधना के जीवन में आई एक नई कबूतरी, जिसकी शरारतें कुछ-कुछ बबली से मिलती-जुलती हैं। अब साधना उसी के इंतजार में रहती है और उसी को जीने का सहारा मानकर खुश रहती है।

कुल मिला कर प्रवासी-साहित्य में कथाकारों ने अपनी पारखी नजरों और पैनी कलम से स्त्री के संघर्ष, त्याग, साहस और बुद्धिमता का ऐसा खाका खीचने का प्रयास किया है, जिसमे देशी और विदेशी धरातल पर पाठकों को लाकर एक सवालिया निशान बना, उन्हे समाज में बदलाव लाने का न्योता देने का काम कर रहे हैं। देशी मिट्टी में देशी संस्कारों की सौंधी महक से सराबोर इन कहानियों से गुजरते हुए अपने देश, अपनी मिट्टी और अपनी संस्कृति के प्रति आस्था और विश्वास में बढ़ोतरी होती है।

डॉ. अनिता कपूर, 'ग्लोबल हिन्दी ज्योति' की संस्थापिका, +1-510-894-9570 (USA number)
मो. : +91 7303694727, ई-मेल : anitakapoor.us@gmail.com

✧ ✧ ✧

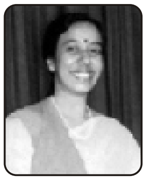

महिला सशक्तिकरण एवं महिला शिक्षा

डॉ. काकोली गोराई

नारी, तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास-रजत नग-पगतल में,
पीयूष-स्रोत-सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।

भारतीय समाज में नारी शक्ति का बहुत महत्व है। शास्त्रों में नारी को कामधेनु कहा गया है जो एक मां, बहन, बेटी, पत्नी आदि के विभिन्न रुपों में समाज में अपने सभी दायित्वों को सम्पूर्णता से निभाती है। यदि महिलाओं की स्थिति को भारतीय संदर्भ में देखा जाये तो हम कह सकते हैं कि प्राचीनकाल में उनकी स्थिति काफी अच्छी और प्रतिष्ठापूर्ण रही है। वैदिक समाज में महिलाओं को पर्याप्त स्वतन्त्रता थी और मनु महाराज ने मनु स्मृति में नारी का विवेचन करते हुए स्पष्ट लिखा है कि-''यत्र नार्यस्तु पुज्यंते रमन्ते तत्र देवता'' अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं।

जयशंकर प्रसाद जी ने 'कामायनी' में नारी महिमा का वर्णन किया है। नारी को 'श्रद्धा' का स्थान दिया है, पुरुषों को सुखी बनाने में उसके जीवन की सार्थकता को स्वीकार किया है। सच में नारी श्रद्धा स्वरूपा तथा जीवन और जगत के लिए नई शक्ति, प्रेरणा और जागृति की, अमर स्रोत है। नारी सृष्टि की वह महत्वपूर्ण रेखा है जिसके अभाव में सृष्टि का चित्रण असम्भव है।

सृष्टि के आरम्भिक काल से ही समाज के विकास में पुरुष के समान ही महिलाओं का भी विशेष महत्व रहा है। महिला सृजन और निर्माण शक्ति की विभूति है। वह समाज और संस्कृति की जन्मदात्री तथा पोषणकर्तृ है। राष्ट्र के विकास में महिलाओं का उतना ही महत्व है, जितना कि पुरूषों का। महिलाओं के विकास के बिना राष्ट्र के विकास की बात करना एक कोरी कल्पना प्रतीत होती है। किसी भी राष्ट्र या समाज के जनसंख्या का आधा हिस्सा महिलाओं का होता है अर्थात सामाजिक संरचना में महिलाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। परंतु भारतीय समाज में अधिकतर परम्पराएँ, रीति-रिवाज, मान्यताएँ, मूल्य एवं नियम, लिंग-भेद पर आधारित हैं। समाज में पुरूष एवं स्त्री दोनों के लिए अलग-अलग मानदण्ड है। पुरूष इच्छानुसार कार्य करने, शिक्षा प्राप्त करने, व्यवसाय चुनने, जीवन साथी चुनने के लिए स्वतंत्र है परन्तु अधिकतर महिलाएँ इन अधिकारों का इच्छानुसार चयन नहीं कर सकती। वर्तमान समय में महिलाओं की मनोवृत्ति में परिवर्तन देखने को मिलता है। आज की स्त्री की स्थिति परम्परागत नारी की

स्थिति से भिन्न है। वह अपनी सीमा व सामर्थ्य को पहचान कर अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संघर्षरत है। आज महिलाएँ घर की चारदीवारी से निकलकर हर क्षेत्र में पुरूषों का वर्चस्व तोड़ रही है। अतः बदलते वक्त में महिलाएँ आर्थिक, शैक्षिक और सामाजिक रूप से सशक्त हुई है और उनकी हैसियत एवं सम्मान में वृद्धि हुई है। अतः इस शोध-पत्र में महिला सशक्तीकरण के परिप्रेक्ष्य में, प्राचीन वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक महिलाओं की स्थिति को रेखाकिंत किया गया है।

भारतीय समाज में नारी शक्ति का बहुत महत्व है। शास्त्रों में नारी को कामधेनु कहा गया है जो एक माँ, बहन, बेटी, पत्नी आदि के विभिन्न रुपों में समाज में अपने सभी दायित्वों को सम्पूर्णता से निभाती हैं। यदि महिलाओं की स्थिति को भारतीय संदर्भ में देखा जाये तो हम कह सकते हैं कि प्राचीनकाल में उनकी स्थिति काफी अच्छी और प्रतिष्ठापूर्ण रही है। वैदिक समाज में महिलाओं को पर्याप्त स्वतन्त्रता थी और मनु महाराज ने मनु स्मृति में नारी का विवेचन करते हुए स्पष्ट लिखा है कि-''यत्र नार्यस्तु पुज्यंते रमन्ते तत्र देवता'' अर्थात जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं। प्राचीनकाल में भारत के ऋषि-मुनियों ने नारी के महत्व को भली-भांति समझा था। इस संसार में यदि नारी न होती तो सभ्यता और संस्कृति भी न होती। किसी समाज के सांस्कृतिक विकास का मानदण्ड नारी की मर्यादा है। महिलाएं हमारे देश की जनसंख्या का लगभग आधा भाग हैं तथा विकास कार्यो में उनकी भागीदारी बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती है। आर्थिक तथा सामाजिक विकास की योजनाएं बिना महिलाओं के योगदान के सम्पूर्ण नहीं हो सकती। इसमें कोई सन्देह नहीं कि नारी ही निर्माता शक्ति है। नारी विधाता की अनुपम एवं सर्वोत्कृष्ट रचना मानी जाती है। इसमें कल्याण, ममता, स्नेह आदि गुण स्वाभाविक रूप में ही विद्यमान रहते हैं। नर तथा नारी जीवन रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। प्रत्येक मनुष्य की सफलता के पीछे किसी न किसी नारी का हाथ अवश्य होता है इसमें कोई संदेह नहीं हैं। तुलसी को तुलसीदास बनाने का श्रेय उनकी पत्नी रत्नावली को है। भारत का अतीत इस प्रकार के असंख्य उदाहरणों से भरा पड़ा है। भारत में सैद्धान्तिक रूप से हमेशा से ही नारी की मर्यादा रही है अर्थात् अर्द्धनारीश्वर की कल्पना स्त्री और पुरुष के समान अधिकारों तथा उनके संतुलित संबंधों का परिचायक है। इसी कारण हमारा देश सोने की चिड़िया माना जाता था जहां हर समृद्धि थी, सुखी समाज और सुखी परिवार था। नारी की जीवन-यात्रा संगीतमय, रागमय और खुशियों भरी होती थी। वह सपनों से वंचित नहीं थी। सपनों में आकाश के नए-नए इन्द्रधनुष, चाँद-सूरज होते थे। उन दिनों परिवार मातृ-सत्तात्मक था। वेदों में अनेक स्थलों पर रोमाला, घोषाल, सूर्या, अपाला, विलोमी, सावित्री, यमी, श्रद्धा, कामयनी, विश्वम्भरा, देवयानी आदि विदुषियों के नाम प्राप्त होते हैं। उत्तर वैदिक काल में भी स्त्रियों की प्रतिष्ठा बनी रही। गार्गी, मैं त्रेयी, उद्दालिका, विदग्धा आदि विदुषियाँ दार्शनिक एवं आध्यात्मिक चर्चाओं तक में सफलता के साथ भाग लेती थी। इसके अलावा शासन, सेना, राज्य-व्यवस्था में स्त्रियों के योगदान के प्रमाण मिलते हैं।

रामायण-महाभारत काल में नारी के अधिकार पहले जैसे नहीं रहे। वर्ण-व्यवस्था में भी कठोरता आई तथा नारी घर-गृहस्थी तक सीमित रहने लगी। बहुपत्नी व्यवस्था और अनुलोम विवाह के कारण नारी उपभोग की वस्तु बनने लगी। तप, त्याग, नम्रता, धैर्य, आदि पतिव्रत धर्म का

पालन करना उनके प्रमुख लक्ष्य माने गये। पतिव्रत धर्म सर्वोच्च बन जाने के कारण विधवा का जीवन नरक हो गया, परिणामस्वरुप सती-प्रथा का जन्म हुआ। किशोरियों और युवतियाँ मंदिरों में बलपूर्वक देवदासियाँ बना दी गई और धर्म के नाम पर वेश्यावृत्ति पनपी। इस काल में नारी को पिता, पति और पुत्र के अधीन रखने का विधान प्रस्तुत किया गया। इससे नारी पुरुष की सहभागिनी न होकर मात्र अनुगामिनी भोग्य पदार्थ बनकर रह गई और उसे सम्पत्ति में भी कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे। महाभारत में पांडवों द्वारा द्रौपदी को जुए के दांव में लगाना, भरी सभा में कौरवों द्वारा उसे चीर हरण किया जाना, रामचरितमानस में पुरुषोत्तम राम द्वारा सीता के यौन शुचिता की परीक्षा लेना नारी के नारकीय स्थिति को बयां करती है।

समय के परिवर्तन के साथ-साथ स्त्रियों की स्थिति में भी परिवर्तन होता गया। मध्यकाल में जब भारत पर मुसलमानों के आक्रमण और मुगलों के राज्य के बाद, नारियों को जबरदस्ती उठा कर उनकी इच्छा के विरूद्ध तत्कालीन सत्ताधारियों ने उनका धर्मपरिवर्तन किया तथा नारी को कुदृष्टि से देखा जाने लगा तब से समाज में नारी की स्थिति का अत्यधिक पतन प्रारंभ हो गया फलतः भारतीय नारी दयनीय स्थिति में पहुँच गई। ब्राह्मणों ने कुल के रक्त की शुद्धता, नारी के सतीत्व की रक्षा और हिन्दु धर्म की रक्षा के नाम पर नारी को ऐसे-ऐसे सामाजिक-धार्मिक बंधनों में जकड़ दिया कि वह पुरुष की छायामात्र होकर रह गई और उसका स्वतंत्र अस्तित्व लुप्त हो गया। इस काल में स्त्री शिक्षा समाप्त हो गई और पर्दा-प्रथा और सती-प्रथा यहाँ तक कि मादा-शिशु की हत्या बढ़ गई। समाज में घृणित विचारधारा ने उसका क्षेत्र केवल घर की चारदीवारी तक ही सीमित कर दिया और धीरे-धीरे सभी समाजों में सामाजिक व्यवस्था मातृ-सत्तात्मक से पितृ-सत्तात्मक होती गई। समाज में महिलाओं की भूमिका परिवार का पालन-पोषण, परिवार की वृद्धि या घरेलू काम-काज तक सीमित मानी जाती रही है। यह कुल जनसंख्या का लगभग आधा भाग होती हैं फिर भी इस पितृ-सत्तात्मक समाज में उसे हीन दृष्टि से देखा जाता हैं। पुत्र जन्म पर हर्ष तथा पुत्री जन्म पर संवेदना व्यक्त की जाती हैं। भारतीय समाज में आज भी पुत्रों को पुत्रियों से अधिक महत्व दिया जाता हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने नारी की इस स्थिति का चित्रण इन शब्दों में किया -

'कत बिधि सृजी नारी जग माही।
पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं।'

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने नारी की इस सोचनीय दशा का वर्णन अपनी कविता की पंक्तियों में किया -

'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।'

मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् इस देश पर भी अंग्रेजों का शासन हो गया। 18वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षो से लेकर स्वातंत्रता से पूर्व का समय ब्रिटिश काल कहलाता है। ब्रिटिश सरकार ने भारतीय समाज में परिवर्तन लाने के लिए अनेक प्रयत्न किए, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण था आधुनिक शिक्षा नीति का प्रसार एवं प्रचार। इसी के परिणाम स्वरुप राजा राम मोहन राय और ईश्वरचन्द्र विधासागर जैसे महान् समाज सुधारक का जन्म हुआ, जिन्होने सती प्रथा को समाप्त

करने का प्रयास किया। उनके प्रयासों के परिणामस्वरुप ब्रिटिश सरकार द्वारा इसे निषिद्ध किया गया। उनके प्रयासों से बाल विवाह का विरोध तथा विधवाओं के पुनर्विवाह एवं स्त्री शिक्षा पर काफी जोर दिया। स्वामी विवेकान्द ने भी नारी के पुनरुद्धार पर जोर देते हुए कहा- 'जिस देश या राष्ट्र में नारी पूजा नहीं होती, वह देश या राष्ट्र कभी महान् या उन्नत नहीं हो सकता। नारी रुपी शक्ति का अवमान करने से ही आज अध:पतन हुआ है।' डा. भीमराव अम्बेडकर ने लिखा है-'' भारतीय समाज में व्याप्त स्त्रियों के प्रति क्रूरता, अन्याय, अभद्रता, विषमता और उनके जन्म-जन्मान्तर के शोषण होने के पीछे मनु द्वारा बनाये गये नियमों और समाज के सुपरमैन ब्राह्मण द्वारा उनका अनुमोदन तथा उसके प्रचलन स्थायी रूप से मूल-दोष है।'' इसी प्रकार सीमोन द बोउवार ने लिखा है- ''विधायकों, पुरोहितों, दार्शनिकों, लेखकों और वैज्ञानिकों ने अब तक यह दिखाने की चेष्टा की, औरत की अधीनस्थ स्थिति स्वर्ग में ही बनाई गई है।'' अत: नारी पुनर्जागरण के लिये ब्रिटिश काल मे कई उपाय किये गये, तथापि उनमें जागृति की गति बहुत धीमी थी किन्तु फिर भी रानी लक्ष्मीबाई व सरोजिनी नायडू जैसी महिलाओं ने अपने हौसलों से न केवल आजादी में योगदान दिया बल्कि विश्व में नारी शक्ति को एक नई पहचान भी दिलाई।

महिलाएं सदैव से ही पारिवारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्थाओं का आधार रही हैं। समाज में महिलाओं की स्थिति जितनी सशक्त, प्रभावशाली और सुदृढ़ होती है, समाज उतना अधिक उन्नत, सभ्य और प्रगतिशील होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नारियों में स्वचेतना जाग्रत करने के लिये कई उपाय किये गये। सर्वप्रथम उन्हें संविधान में समान दर्जा दिया गया। अनुच्छेद 14 एवं 15 में पुरुषों एवं स्त्रियों में कोई अंतर न करते हुये समानता का प्रावधान है। वैवाहिक जीवन की समरसता के लिये हिन्दू विवाह अधिनियम 1952 तथा विवाह अधिनियम 1956 का गठन किया गया। हिन्दू अल्प वयस्कता तथा अभिभावकता अधिनियम, 1956 में भी नारियों के सामाजिक उन्नयन हेतु कई कानूनों का समावेश किया गया। दहेज निवारक अधिनियम 1961 तथा बाल विवाह (संशोधन) अधिनियम 1983 के साथ-साथ महिला का अश्लील प्रस्तुतीकरण विरोधी कानून 1986 ने नारियों को कई प्रकार के कानूनी संरक्षण प्रदान किये हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय दण्ड संहिता (1860) तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता (1973) में भी नारियों के प्रति किये गये अपराधों हेतु दण्ड की व्यवस्था हैं। भारतीय दण्ड संहिता में धारा-312 के तहत किसी गर्भवती स्त्री का गर्भपात स्वेच्छा से कराने वाले को तीन वर्ष की सजा अथवा जुर्माना दोनों से दण्डित किया जाता है। इसी प्रकार दण्ड संहिता की धारा-354 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति स्त्री की लज्जा भंग करता है तो उसे दो वर्ष की सजा अथवा जुर्माना अथवा दोनों से दण्डित किये जाने का प्रावधान है। धारा-375 के तहत बलात्कार को परिभाषित किया गया है, यदि कोई पुरूष स्त्री की सहमति के विरूद्ध उसके साथ शारीरिक संबंध बनाता है तो ऐसे व्यक्ति को दस वर्ष की कठोर कारावास तथा जुर्माना दोनो से दण्डित किया जायेगा। धारा 292 से 294-के अनुसार विशिष्टता एवं सदाचार को प्रभावित करने वाले मामलो पर रोक लगायी गयी है। इसके अनुसार अगर कोई स्त्रियों की नंगी तस्वीरें प्रदर्शित करता है अथवा क्रय-विक्रय करता है तो ऐसे अपराध के लिए दो वर्ष की सजा एवं जुर्माना अथवा दोनों दण्ड दिये जा सकेंगे। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा-47 (2) तथा धारा-51 (2) तथा धारा-53 (2) के अन्तर्गत महिलाओं की सुविधा को ध्यान में रखा गया है।

यदि कोई अपराध में पुलिस तलाशी लेती है तो महिला के लिए महिला पुलिस ही तलाशी लेंगी। इसी कारण धारा 304 के तहत अभियुक्त को न्यायालय ही वकील उपलब्ध करेगा तथा राज्य इसका व्यय करेगा। इस प्रकार इन सब अधिनियमों के प्रावधानों से समाज में स्त्री सुरक्षा को बढ़ावा मिला है तथा वे काफी हद तक सुरक्षित होकर सशक्त हो रही है।

वास्तव में सशक्तिकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है और जीवन के सभी क्षेत्रों (सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक) में अपने जीवन को आकार प्रदान करने के लिए, पसंद और कार्यवाही की स्वतंत्रता के विस्तार की ओर संकेत करता है। महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य व्यक्तिगत स्तर पर (स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार) तथा सामूहिक स्तर पर अपनी समस्याओं के समाधान की कार्यवाही करने के लिए, संगठन बनाने और लोगों को जुटाने की योग्यता प्राप्त करना है। महिलाओं का सामाजिक, राजनैतिक और सार्वजनिक जीवन में प्रतिनिधित्व, सत्ता व निर्णय प्रक्रिया में साझेदारी शिक्षा व जागरूकता में वृद्धि, प्रगति, विकास और आत्मशक्ति को सुनिश्चित करना महिला सशक्तीकरण है। महिलाओं के विकास और सशक्तीकरण के लिए केन्द्र व राज्यों की सरकारों ने अनेक नीतियों, योजनाओं और कार्यक्रमों को लागू किया। महिला सशक्तीकरण हेतु प्रयासों का सिलसिला प्रथम पंचवर्षीयं योजना (1951-56) से प्रारंभ हो गया था। दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956-61) से लेकर पांचवी पंचवर्षीय योजना (1974-79) में महिलाओं के प्रति कल्याणकारी दृष्टिकोण अपनाया गया एवं वर्ष 1976 में समाज कल्याण मंत्रालय के अंतर्गत एक महिला कल्याण एवं विकास ब्यूरो की स्थापना की गग्र। छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) में महिलाओं के रोजगार (डेयरी, पोल्ट्री, लघु व कुटीर उद्योगों, पशुपालन आदि) पर बल दिया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) में महिला एवं बाल विकास विभाग (1985) की स्थापना की गई। आठवी पंचवर्षीय योजना (1990-95) में राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना की गई और इसी वर्ष (1992) से ही देश में अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया जाने लगा, एवं संविधान का 73वां एवं 74वां संशोधन, जिसके द्वारा महिलाओं को पंचायत व नगर निकायों के चुनाव में सभी श्रेणियों में, सभी स्तरों पर एक तिहाई आरक्षण का प्रावधान किया गया। नवीं पंचवर्षीय योजना (1995-2000) के अंतर्गत किसी भी कार्यक्रम या योजना का कम से कम 30 प्रतिशत हिस्सा महिलाओं से संबंधित क्षेत्रों तक पहुंचाने व समुचित मॉनिटरिंग करने संबंधी निर्देश दिए गए। महिला सशक्तीकरण अर्थात महिलाओं को सशक्त बनाना। इसी दिशा में कदम आगे बढाते हुए भारत सरकार द्वारा वर्ष 2001 को महिला सशक्तीकरण वर्ष के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया। 'महिला सशक्तीकरण वर्ष' में केन्द्र सरकार द्वारा देश में पहली बार राष्ट्रीय महिला उत्थान नीति बनाई गई, ताकि देश में महिलाओं का विभिन्न क्षेत्रों में उत्थान, समुचित विकास और समानता के लिए आधारभूत व्यवस्थाएं निर्धारित किया जाना संभव हो सके। दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007) मे महिला सशक्तीकरण, बाल विकास एवं दुर्बल वर्गों की पोशण स्थिति में सुधार में प्रयास किया गया। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012) में महिला साक्षरता को 85 प्रतिशत करने का लक्ष्य रखा गया है, इसमें महिलाओं के समावेशी विकास, स्त्री के सामाजिक व राजनैतिक सशक्तीकरण के साथ स्त्री के लिए समान न्याय को प्रमुखता दी गयी। अर्थात् महिला सशक्तीकरण हेतु सरकार द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में अनेकों कदम उठाए गए है, जिनमें से कुछ प्रयासों

के सार्थक परिणाम दिखाई देने लगे हैं। समय के साथ महिलाओं ने भी स्वंय को काफी बदला है, और आज महिलाएं हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ बराबरी कर, अपनी अन्तर्निहित क्षमता के बल पर, आत्मविश्वास और साहस के साथ पुरुष प्रधान समाज में, अपने वर्चस्व का अहसास कराने का सफल प्रयास कर रहीं हैं। आज उसकी सोच, उसके विचारों में इतना गहरा परिवर्तन आया है कि वह भी घर की दीवारों को तोड़ कर एवं उसकी चुनौती को सहजता से स्वीकार करके आगे बढ़ती जा रही है। पहले उसके असमंजस के कारण बहुत थे, पर आज की नारी के पास नए मूल्य, नई नैतिकता, शिक्षा, जागृति, अपने स्व की पहचान और स्वतंत्र कमाई है। आज नारी स्वयं अपने निर्णय लेती है और अपनी आत्म-समीक्षा भी करती है।

आज हिन्दू महिलाओं का सामाजिक जीवन स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले के समय से बिल्कुल भिन्न है। जिन परिवारों में कुछ वर्ष पहले तक महिलाओं के लिये पर्दे में रहना अनिवार्य था, उन्हीं परिवारों की महिलाऐं आज खुली हवा में सांस ले रही हैं। मुस्लिम महिलाऐं इक्कीसवीं सदी में पदार्पण करने के बावजूद भी धार्मिक कानूनों, रुढियों एवं परम्पराओं के बंधनों में जकड़ी हुई हैं। भारत में हिन्दू और मुस्लिम स्त्रियों की अपेक्षा ईसाई स्त्रियों की स्थिति अच्छी है। धार्मिक दृष्टि से भी ईसाई धर्म में स्त्रियों को पुरुषों के समान माना जाता है। ईसाईयों का समूचा सामाजिक वातावरण स्त्रियों के अनुकूल है। भारतीय शिक्षित महिलाओं में ईसाई महिलाओं का प्रतिशत अधिक है। ईसाई समाज में विवाह की परम्पराऐं एवं प्रक्रिया महिलाओं के व्यक्तित्व का पूरा सम्मान करती हैं। ईसाई समाज में कम उम्र में शादिया नहीं होती, इसलिये बाल-विवाह के अभिशाप से बच जाती है, विवाह के समय लड़कियों की सहमति माँगी जाती है और यदि लड़की सहमत नहीं हो तो प्रायप्रतिशत विवाह नहीं किया जाता। चर्च द्वारा भी महिलाओं को सहायता एवं समर्थन प्रदान किया जाता है। शिक्षा तथा मेडिकल व्यवसायों में ईसाई स्त्रियां बहुतायत में पाई जाती है।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन (1995) ने लिखा है ''महिला सशक्तीकरण से न केवल महिलाओं के जीवन में निश्चित रूप से सकारात्मक असर पड़ेगा बल्कि पुरूषों और बच्चों को भी इसका लाभ मिलेगा।'' अब एक साधारण सा सवाल यह उठता है कि किसी भी महिला के लिए विकास अधिक महत्वपूर्ण है या सशक्तीकरण ज्यादा जरूरी है। जवाब है कि दोनो ही जरूरी हैं और दोनो ही एक दूसरे के पूरक हैं। भारत ही नहीं समूची दुनिया में महिला सशक्तीकरण का दौर चल रहा है। आज के युग की महिला निर्बलता के परिवेश से निकलकर सशक्त महिला के रूप में प्रतिबिंबित होती है व होने की कामना करती है। जब देश की अधिकांश महिलाएं स्वयं को सशक्त महसूस करेंगी तभी वह देश निर्माण में अपना योगदान दे पायेगी। महिला सशक्तीकरण में पुरुषवादी मानसिकता को सबसे अहम बाधक माना जाता है और यह काफी हद तक वास्तविक सच्चाई भी है। ''द सेकेंड सेक्स'' की लेखिका सिमोन द बोउआर ने कहा है कि- 'स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि उसे बना दिया जाता है।'' महिलाओं की स्थिति में सुधार तभी आ सकता है, जब पुरूष अपनी मानसिकता में बदलाव लाएं। इस उद्देश्य के लिए महिलाओं में शिक्षा के प्रसार की बहुत आवश्यकता है। हमारे देश में विभिन्न क्षेत्रों में पुरुषों को महिलाओं से ज्यादा प्राथमिकता व अवसर प्राप्त होते हैं, इसी दोयम दर्जे के कारण ही आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में

उनकी सहभागिता, तथा अन्य क्षेत्रों में भी उनकी भागीदारी बढ़ानें के लिए किए गए प्रयासों को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता।

किसी भी समाज का विकास वहाँ की नारी की स्थिति पर निर्भर करता हैं। यदि समाज में नारी की स्थिति सुदृढ एवं सम्मानजनक है, तो निस्संदेह वह समाज मजबूत होगा और देश भी समृद्ध होगा। नारी सशक्तीकरण तभी संभव हो सकता है जब महिलाओं को सम्मान देते हुए उन्हें शैक्षिक, बौद्धिक, मानसिक, आर्थिक और वैचारिक संपन्नता देने की पहल करें, सहयोग दें और नागरिकता के सभी अधिकार उन्हें वास्तव में मिलें, जो पुरुष को प्राप्त है। किसी भी समाज के विकास का सबसे पहला पायदान बेहतर शिक्षा स्तर को माना जाता है। शिक्षा के बिना न तो विकास संभव है और न ही सशक्तीकरण। महिला सशक्तीकरण की दिशा में सबसे बढा रोडा महिलाओं में शिक्षा और जागरूकता की कमी है। यदि महिलाओं को शिक्षित बना दिया जाएं तो वे अपने सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों के प्रति जागरूक हो जाएँगी, और फिर जागरूक महिलाओं को दबाना संभव नही होगा। शहरी महिलाएँ शिक्षा के प्रति संवेदनशील हुई है और वे रोजगार एवं आर्थिक स्वावलंबन की ओर उन्मुख है। ग्रामीण महिलाएँ इस दिशा में पिछडी हुई है। लेकिन सरकारी प्रयासों और संवैधानिक अधिकारों के द्वारा उन्हें विकास की मुख्य धारा में शामिल करने का काम किया जा रहा है। सरकार द्वारा बनाई गई विकास योजनाओं की भाँति यदि नारी सशक्तीकरण के सभी कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में सफल हो जाएं तो देश की अधिकांश महिलाएं स्वयं सशक्त होकर आगे बढने में समर्थ हो जाएँगी। नेपोलियन बोनापार्ट ने नारी की महत्ता को बताते हुए कहा था कि- 'मुझे एक योग्य माता दे दो, मैं तुमको एक योग्य राष्ट्र दूँगां'। जार्ज हर्बर्ट के मतानुसार - 'एक अच्छी माता सौ शिक्षकों के बराबर होती है, इसलिए उसका हर हालत में सम्मान करना चाहिए।' राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का कथन है- ''पारिवारिक गाड़ी के सुसंचालन में स्त्री-पुरुष दो पहिए के स्वरूप हैं। अत: पारस्परिक समझ पैदा करने और उत्तरदायित्व निभाने की दृष्टि से स्त्री-पुरुष दोनों को शिक्षित होना आवश्यक है। एक पहिया के विपरीत स्थिति में रहने के कारण दाम्पत्य रूपी गाड़ी का सुसंचालन, सुविधाजनक और शांतिपूर्ण ढंग से नहीं हो सकेगा।'' पं. जवाहरलाल नेहरू का मत है कि ''यदि जनता में जागृति पैदा करनी है तो पहले महिलाओं को जागृत करो। एक बार वो आगे बढ़ती है तो एक परिवार आगे बढ़ता है, देश आगे बढ़ता है।''

आज भारतीय भाषाओं में ही नहीं बल्कि विश्व साहित्य में भी महिला सशक्तीकरण पर विचार को रेखांकित किया जा रहा हैं, क्योंकि नारी अपने अस्तित्व की पहचान के लिए निरन्तर संघर्ष करती चली आ रही है। आज भी सामाजिक दृष्टि से नारी अपने अधिकारों से अपरिचित है। प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक वह किसी न किसी रूप में अपने ऊपर होने वाले अत्याचार और अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाती हुई, अपने अस्तित्व की रक्षा में लगी हुई है। आधुनिक नारी में यह संघर्षशील प्रवृत्ति या अपने व्यक्तित्व के प्रति सचेत होने की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक है। इस दिशा में विचार-क्रान्ति के कारण महिला जागृति-आंदोलन की भूमिका में साहित्य का योगदान महत्त्वपूर्ण है। नारी लेखन ने आज नई सोच दी है। आज ऐसी सामाजिक संरचना की परिकल्पना की जा रही है जहां नारी और पुरूष का महत्त्व समान हो, सब को एक जैसी सुविधाएं मिलें। आज संभावनाएं बड़ी स्पष्ट हैं और साहित्य लगातार अपना योगदान दे रहा है,

खुला और स्पष्ट विश्लेषण कर रहा है। इस संदर्भ में आंकड़े भी मुखर हैं जो बताते हैं कि नारी आज सारे विश्व में, हर क्षेत्र में आगे बड़ी है, लगातार बढ़ रही है। सुमित्रानंदन पंत ने, नारी के प्रति पुरुष की संकीर्ण दृष्टि की अपनी अनेक कविताओं में कड़ी निंदा की है। पंत नारी स्वतंत्रता का नारा अपनी कविता से बुलंद करते दिखाई दे रहे हैं –

'मुक्त करो नारी को मानव चिर बंदिनी नारी को,
युग युग की निर्मल कारा में जननि सखी प्यारी को'

महादेवी जी ने अपने काव्य में भारतीय नारी के मन में जो संकीर्णताओं की दीवार थी उसे तोड़ा है। कवयित्री ने भारतीय सामंती-संस्कारों और मूल्यों के प्रति खुला विद्रोह किया है। महादेवी जी स्वयं एक नारी होने के कारण नारी समस्या, संवेदना से रू-ब-रू होती है, इसलिए अपने काव्य में वह नारी को शक्ति सामर्थ्य प्रदान करती है। सिमोन द बोउआर ने अपनी पुस्तक ''द सेकेंड सेक्स'' में पूरी दुनिया की स्त्री को एक मंच पर आने का आह्वान किया-''स्त्री अमीर हो या गरीब, श्वेत हो या काली, अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी। यह दुनिया पुरुषों ने बनाई, पर स्त्री से पूछकर उससे सहारा लेता है, और पुन: उसे घर लौट जाने को कहता है। वह सदियों से ठगी गयी है। यदि उसने कुछ स्वतंत्रता हासिल की भी है, तो उतनी ही, जितनी कि पुरुष ने अपनी सुविधा के लिए देना चाहा।'' अर्थात जिस स्त्री के बिना पुरुष इस संसार में अपने अस्तित्व को प्राप्त नहीं कर सकता, वहीं पुरुष नियम बनाकर उसी स्त्री को शोषित, प्रताड़ित और बंधित करता है। अपनी जरूरत के लिए उसको उपयोग में लाता है, और फिर आवश्यकता न पड़ने पर उसे फेंक दिया जाता है। वर्तमानकाल के लगभग सभी साहित्यकारों की रचनाओं में समाज द्वारा स्त्री के निरन्तर हो रहे शोषण एवं उत्पीड़न पर गहरी चिंता व्यक्त हुई है। अस्सी के दशक में यह आवाज हर तरफ उठने लगी और ग्लोबलाइजेशन के कारण इसकी अनुगूँज दूर-दूर तक सुनाई भी दी। अनेक पारंपरिक प्रथाएं मान्यताएं टूटीं, तथा इस दशक में नारी ने अपने क्षेत्रिए स्तर से उठ कर वैश्विक स्तर पर सुदृढ़ता से कदम रखा। आज परिवर्तन की झलक धीरे-धीरे दिखाई देती है, महिलाओं को पुरुषों के जीवन में महत्त्वपूर्ण, प्रभावशाली और अर्थपूर्ण सहयोगी माना जाने लगा है।

आज के युग में समाज पहले की अपेक्षा अधिक आधुनिक होने का दावा कर रहा है, पहले की अपेक्षा अधिक जन चेतना एवं जागरण का प्रचार, प्रसार पत्र पत्रिकाओं एवं मीडिया के द्वारा हो रहा है। फिर भी यह कटु सत्य है कि तथाकथित मानव समाज में अनपढ़ समाज की तुलना में नारी का शोषण अधिक हो रहा है, क्यों? इसका मूल कारण महिला विरोधी मानसिकता, और इसी मानसिकता के कारण स्त्रियाँ युगों-युगों से शोषित होती चली आ रही है। भूमंडलीकरण के दौर में आज भी पुरूष पुरानी परम्परागत मान्यताओं के गुलाम हैं और स्त्री इन गुलामों की गुलाम है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने स्त्री के अस्तित्व को एक द्वन्द्वात्मक आयाम प्रदान किया है। एक ओर जहाँ औद्योगिक विकास के लिए स्त्री को सस्ते श्रम के रूप में उपयोग किया गया है, वहीं दूसरी ओर कारपोरेट जगत में विज्ञापन के माध्यम से स्त्री को उत्पाद बेचने के लिए उसका भोगपरक और परंपरावादी दृष्टिकोण बाजार ने अपनाया है, जिसके फलस्वरूप बाजारीकरण के प्रभाव में स्त्री को

ऐसी स्वतंत्रता भेंट की गयी जिसकी कीमत उसे चुकानी पड़ी और प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से शोषण, भोगवादी छवि तथा अस्वैच्छिक कार्यो का निष्पादन करना पड़ा। भूमंडलीकरण की इस नीति में स्त्रियों का शोषण प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में हो रहा है। विख्यात दार्शनिक डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने इस विडम्बना पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि- 'मनुष्य ने आकाश में उड़ना सीख लिया है, वह समुद्र की गहराई में तैरने भी लगा है, लेकिन अभी धरती पर ठीक से चलना नहीं सीख पाया है।' स्त्री को कैद से मुक्ति दिलाने के लिए सिर्फ सहानुभूति से काम चलने वाला नहीं है। इसके लिए व्यवहारिक और अकादमिक दोनों ही स्तरों पर जंग लड़ी जानी चाहिए। स्त्री की मुक्ति के लिए पढ़ाई और लड़ाई का एक साथ चलना बेहद ज़रूरी है। स्त्री की जंग जब तक वैचारिक स्तर पर नहीं जीती जाती, तब तक स्त्री-मुक्ति का सपना साकार नहीं होगा। जिस प्रकार बाहर के अंधेरे को दूर करने के लिए रोशनी की ज़रूरत होती है उसी प्रकार स्त्रियों के जीवन को प्रकाशमय बनाने के लिए शिक्षित होने की ज़रूरत है। शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जो स्त्रियों के जीवन को प्रकाशित कर सकता है। महिलाओं की निम्नतर स्थिति का मूल कारण साक्षरता का अभाव है, पुरुषों की साक्षरता दर 64.13 प्रतिशत की तुलना में महिलाओं की साक्षरता दर केवल 39.29 प्रतिशत है। जवाहरलाल नेहरू के मतानुसार- ''शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के मन को मुक्त करना है, न कि उसे बाँधे हुए चौखटों में बन्द करना है। उसके शारीरिक और बौद्धिक श्रम में सन्तुलन बनाना है, ताकि उसका जीवन सर्वांगीण विकास कर सके।'' सरकार ने मई 2009 में शैक्षणिक अवसरों को समान रूप से प्रदान करने एवं महिला सशक्तीकरण हेतु कुंजी कार्यक्रम घोषित की। सरकार ने स्कूली शिक्षा, स्वास्थ्य, पौष्टिक आहार, कौशल विकास और महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए, महिला शिक्षा पर जोर दिया। एक नारी को शिक्षित करने का अर्थ है एक परिवार को शिक्षित करना। नारी संतान को जन्म देती है, उनका पालन-पोषण कर बड़ा करती है। माता के रूप में नारी प्रथम गुरू होती है। नारी के सम्मानजनक स्थान से ही समाज प्रगतिशील और विकसित होता है। परिवार और समाज के निर्माण में नारी का स्थान महत्वपूर्ण होता है। जब समाज सशक्त और विकसित होता है, तब राष्ट्र भी मजबूत होता है। इस तरह राष्ट्र निर्माण में भी नारी केन्द्रीय भूमिका निभाती है। महिलाओं में जैसे शिक्षा बढ़ेगी, उर्वरता, जनसंख्या, विकास, शिशु मृत्युदर में गिरावट और परिवार के स्वास्थ्य में सुधार होगा। शिक्षित महिला ज्यादा राजनैतिक तत्पर और अपने संवैधानिक हक के बारे में सजग रहती है और उसको पाने हेतु प्रयासरत भी रहती है। स्त्री को पहले खुद अपनी समस्याओं को समझने की जरूरत है, फिर आत्मबल, संकल्प और शिक्षा के सहारे उसे दूर करने का प्रयत्न करना है।

वर्तमान समय में शिक्षा के कारण नारी जीवन सर्वाधिक प्रभावित हुआ है। आधुनिक नारी में स्वतंत्रता की भावना देखी जा सकती है। वह अपनी क्षमता के अनुसार प्रत्येक क्षेत्र में पर्दापण कर रही है। कालानुसार नई-नई समस्याएँ (अपहरण, बलात्कार, सैक्स-स्केण्डल आदि) आज के नारी के सामने है। आज भी यह समाज के चिंता एवं चिंतन का विषय बन गया है। महिलाओं की सुरक्षा चिंता सम्पूर्ण मानव समाज के लिए सर्वोपरि होनी चाहिए। इस विषय पर देश ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसकी चर्चा सर्वोपरि होनी चाहिए ताकि एक समतामूलक एवं स्वच्छ समाज की स्थापना हो सके।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में नारी पुरातन मूल्यों का त्याग कर नवीन मूल्यों को अपनाती हुई दिखाई देती है। वर्तमान में नारी को कानूनी अधिकार तो प्राप्त हुए, किंतु समाज में उसे मानव का स्थान नहीं मिल सका है। यह सत्य है कि केवल कानूनों के निर्माण से महिलाओं को घर में सुरक्षा एवं शांति प्राप्त नहीं होगी, अपितु स्त्रियों के सन्दर्भ में पुरुषों को अपनी मानसिकता बदलनी होगी तथा स्त्रियों के प्रति सम्मान व आदर का भाव जागृत करना होगा, तभी हम एक प्रगतिशील व नैतिक-मूल्यों से ओत-प्रोत समृद्धशाली देश के निर्माण की कल्पना कर सकते हैं। महिलाओं को भी अपनी स्थिति में सुधार करने के लिए कदम उठाने होगें, जैसे कि वह अपनी क्षमता का बोध करें, स्वाभिमान को जागृत करें, युगीन समस्याओं को समझे, समस्याओं को समाज के समक्ष रखें, उन्हें दूर करने के लिए सामूहिक आवाज उठाएं और आगे बढ़ने के लिए स्वयं अपना रास्ता बनाएं। अर्थात कह सकते हैं कि महिला सशक्तीकरण का लक्ष्य पुरुष को परास्त करना नहीं है, बल्कि पुरुष तन्त्र का स्वस्थ विकल्प खोजना है। यह तभी संभव है जब दूसरों से उनकी और अपनी संगति में अस्मिता पर आधारित संवाद और सहयोग स्थापित हो। यह कहना गलत न होगा कि महिला सशक्तीकरण, महिला एवं समाज की मुक्ति की सामूहिक चेष्टा का नाम है। अत: महिला अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करें, पुरुष को दबाकर नहीं, अस्मिता की रक्षा करें, नारीत्व को दांव पर लगाकर नहीं।

संदर्भ पुस्तक सूची -

1. भारतीय समाज और नारी, सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा-486001, 2019।
2. हिन्दी उपन्यासों में नारी संघर्ष, डॉ. (श्रीमती) काकोली गोराई, अरूण पब्लिशिंग हाऊस प्राइवेट लिमिटेड, चण्डीगढ, 2009।
3. स्त्री विमर्श बनाम नारी अस्मिता, डॉ. अशोक सभ्रवाल, अरूण पब्लिशिंग हाऊस प्राइवेट लिमिटेड, चण्डीगढ़, 2013।
4. शोध प्रबन्ध, भूमण्डलीकरण के दौर में महिला सशक्तिकरण, डॉ. नरेश कुमार, हिंदी जर्नल- 'IJARD' (खंड-2, अंक-3, मई 2017, ISSN 2455 - 4030)।
5. शोध प्रबन्ध, भारतीय नारी, शीला य. भंडारी, हिंदी जर्नल- 'साहित्य की समीक्षा' (खंड-1, अंक-9, अप्रैल 2014, ISSN 2347 - 2723)।
6. शोध प्रबन्ध, सशक्त महिला : सशक्त राष्ट्र का आधार, सुदेश, डॉ. सत्यवान दलाल, हिंदी जर्नल- 'IERJ' (खंड-3, अंक-5, मई 2017, E & ISSN 2454 - 9916)।
7. सप्तसिन्धु (पत्रिका), हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला-134113।
8. वागर्थ (पत्रिका), भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता-700017 ।
9. हरिगंधा (पत्रिका), हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला-134113 ।

डॉ. (श्रीमती) काकोली गोराई, सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जामताड़ा कॉलेज, जामताड़ा, झारखंड–815351, मो. : 9872842256

✧ ✧ ✧

आलेख

स्त्री विमर्श बनाम दलित विमर्श

डॉ. रत्नेश्वर सिंह

मानवाधिकार के अन्तर्गत हमारे भारतीय समाज में मजदूरों और किसानों की की एक ज्वलंत समस्या बनी हुई है। कार्ल मार्क्स ने जिस तरह मजदूरों को एक होने का नारा दिया तथा एक शोषणमुक्त वर्गविहिन समाज की स्थापना पर बल दिया उस तरह हमारे समाज में कोई भी विचारक या समाज सुधारक मजदूरों की दयनीय अवस्था का जिक्र नहीं किया है। यद्यपि गांधी जी ने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' एवं 'सत्य के साथ प्रयोग' में भारत की उपेक्षित एवं वंचित समस्या की ओर ध्यान अवश्य खींचा था। उनके अनुसार समाज के अंतिम व्यक्ति के पास तक विकास की धारा प्रवाहित होनी चाहिए।

आधुनिक युग के अन्तर्गत इक्कीसवीं सदी महिलाओं और दलितों की सदी होगी यह घोषणा निरंतर हमारे समाजशास्त्री और विचारक कर रहे हैं। इक्कीसवीं सदी अपने पूर्वार्द्ध में विरोधाभाषों की सदी के रूप में अपनी छवि बना रही है, या कहें कि मूल्यों के गहरे टकराव, सांस्कृतियों के बीच संघर्ष की स्थिति यह इस समय पैदा हो रही है। भारतीय समाज में नवजागरण की चेतना ने जो वातावरण सृजित किया उसके आलोक में समाज सुधार आन्दोलनों ने अंधेरे में डुबी औरत की दुनियां में दीपक जलाने का कार्य किया। उन्नीसवीं सदी नवजागरण काल में तेजी से होने वाले परिवर्तनों की सदी है। एक ओर अंग्रेजी पढ़ा लिखा उदारवादी वर्ग पैदा हो रहा था। डोराजियो और उसके साथियों का यंग बंगाल मूवमेन्ट जहां ज्ञान विज्ञान में लैस बंगाली नौजवानों का समूह था तो दूसरी ओर राजा राम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र, विद्यासागर, केश्वचन्द्र सेन तथा उनका ब्रह्म समाज आन्दोलन था जो स्त्री शिक्षा पर जोर दिया था, बाल-विवाह का विरोध कर रहा था और विधवाओं की दयनीय दशा के मद्देनजर विधवा पुर्नविवाह के लिए वातावरण निर्मित कर रहा था।

समस्या समाज के मानस को बदलने की है, पाखंडों, रूढ़ियों और कुप्रथाओं के विरूद्ध चेतना जागृत करने की है। दहजे, बलात्कार और स्त्री को मनमाने ढ़ंग से हांकने की प्रवृतियों पर रोक लगाने की है। एक ओर

गरीब औरत है जिसके पास कहने को भी अपना कुछ नहीं है, जिसके लिए अधिकार और चेतना आकाश के तारों के रहस्य की तरह है। दूसरी ओर मध्यवर्ग की पढ़ी-लिखी स्त्रीयां हैं जो पुरूष मानसिकता की शिकार भी हैं, घरेलू हिंसा उनकी नियति बन चुकी है। तीसरी ओर उच्च वर्ग की स्त्रीयां है जो तमाम तरह की पाबन्दियों के बावजूद भी इनके लिए चेतना और समाज बदलने की बात ही फालतू है। जहां तक चेतना जगाने का सवाल है कितनी ऐसी महिलाएं हैं जो दहेज प्रथा का विरोध कर रही हैं जबकि इसके विरूद्ध कानून 'एन्टी डॉवरी एक्ट' बनाया गया है। जो स्त्री बलात्कार या गैंग रेप की शिकार होती हैं क्या वे कानून का सहारा लेती हैं? स्त्री को पैतृक सम्पति में अधिकार है क्या? क्या समाज इसको स्वीकार करता है? और अगर कुछ प्रगतिशील नारी संगठनों के द्वारा कानून का सहारा लेती भी हैं तो उन्हें न्याय मिलता है? सिर्फ कानून बना देने से समस्याएं नहीं सुलझ सकती उसके लिए जरूरत है पूरे भारतीय समाज में जागृति लाने की।

मानवाधिकार के अन्तर्गत हमारे भारतीय समाज में मजदूरों और किसानों की एक ज्वलंत समस्या बनी हुई है। कार्ल मार्क्स ने जिस तरह मजदूरों को एक होने का नारा दिया तथा एक शोषणमुक्त वर्गविहिन समाज की स्थापना पर बल दिया उस तरह हमारे समाज में कोई भी विचारक या समाज सुधारक मजदूरों की दयनीय अवस्था का जिक्र नहीं किया है। यद्यपि गांधी जी ने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' एवं 'सत्य के साथ प्रयोग' में भारत की उपेक्षित एवं वंचित समस्या की ओर ध्यान अवश्य खींचा था। उनके अनुसार समाज के अंतिम व्यक्ति के पास तक विकास की धारा प्रवाहित होनी चाहिए। यह अंतिम व्यक्ति कोन है? यह अंतिम व्यक्ति ही पिछड़ा अति पिछड़ा और दलित, महादलित है जो सबेरे यदि काम पर न जाय तो रात की रोटी उसे नसीब नहीं होगी। लेकिन हमारे सम्पूर्ण समाज को गांधी जी की बातों को तो कहा जाता है लेकिन उसे चेतनशील बनाने की दिशा में कोई सार्थक पहल नहीं की जाती। मैं यहां मार्क्स का जिक्र इसलिए करना चाहता हूँ कि उनके द्वारा दास कैपिटल से लेकर कम्यूनिस्ट मैनीफीस्टों के केन्द्र में मजदूरवर्ग की अन्तर्राष्ट्रीयता रही है। उन्होंने जब यह नारा दिया था कि तुम्हरे पास खोने के लिए बेड़िया और पाने के लिए पुरी दुनियां है। अपने वर्ग संघर्ष में उन्होंने लिखा कि बुजुर्वा के खिलाफ सर्वहारा की लड़ाई वाद-प्रतिवाद है तथा इससे उत्पन्न होने वाली साम्यवादी व्यवस्था दोनों के बीच सामन्जस्य रूप पैदा करनेवाली अवस्था होगी। यानि थिसीस, एन्टी थिसीस और सोन्थेसिस की परिकल्पना ने इतिहास के एक वृहत्तर कालखण्ड यानि 1917 से लेकर 1990 तक जादू का असर दिखाया तथा अपने अधिकारों के प्रति मजदूर वर्ग को सचेत किया, मनोविज्ञान का विद्यार्थी होने के नाते मेरी मान्यता है कि जो समाज या व्यक्ति चौदह वर्ष पहले बच्चों से मजदेरी करवाता है वह बाल अपराध को बढ़ावा देता है। हमारे यहां बाल मजदूरों का पलायन एक आम बात है। ईंट भट्ठों पर काम करने वाले बच्चों या महिलाओं को देखा जा सकता है। यहां तक कि उच्च एवं उच्च मध्यवर्ग के लोग अपने यहां छोटे बच्चे को नौकर के रूप में रखना प्रतिष्ठा का विषय मानते हैं।

किसानों के द्वारा जो अनाज पैदा किया जाता है इस पूंजीवादी व्यवस्था में उसका मूल्य निर्धारण वह स्वयं नहीं कर पाता। गांधी जी ने कहा था कि भारत की आत्मा गांवों में वास करती है गांवों में निवास करने वाले किसान मजदूर से भी दीन हीन बनें हुए हैं। उनके घर जब अनाज से भरे होते हैं तब अपनी मजबुरी के कारण उसे अनाज व्यापारी के यहां बेचना पड़ता है, बाद में दुनी कीमत पर उसी अनाज को खरीदने के लिए उसे वाध्य होना पड़ता है। जब तक मूल्य निर्धारण का अधिकार किसानों को नहीं मिलता उसकी दयनीय अवस्था को सुधारा नहीं जा सकता।

आज कल एक अवधारणा पर सरकार की ओर से बार-बार ध्यान दिलाया जाता है 'दलित' और 'महादलित' में जहां तक समझता हूँ यहां यह प्रयास किया जा रहा है उनका वोट बैंक कैसे हमारे पक्ष में हो नहीं तो सरकार के पास यदि इच्छा शक्ति हो तो उनकी दशा और दिशा दोनों बदल सकती है। किन्तु ऐसा नहीं हो पा रहा है। उदाहरण के लिए महिलाओं के आरक्षण अर्थात् 33 प्रतिशत आरक्षण के सवाल पर संसद में कभी भी ईमानदार प्रयास नहीं किया गया।

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषण के बावजूद मानवाधिकार का हनन बराबर होता रहा है। चाहे वह महिलाओं के शोषण का सवाल हो या मजदूरों, गरीबों का, निम्न मध्यवर्ग का हो या दास प्रथा के अन्त का - 1 उदाहरणार्थ स्त्री शोषण को लेकर कई प्रश्न है जो हमारे समाज से ही निकले हैं। जब यह माना जाता है कि किसी भी समय के लेखन में उस समय का ताप होना जरूरी है तब हमारे समय के लेखन में स्त्री-समाज का चिरन्तन दर्द और अकेलेपन की पीड़ा क्यों नही है? मजदूरों का पलायन क्यों नहीं रूक रहा है? बाल श्रमिकों एवं किसानों की दीन-हीन अवस्था क्यों है? ऐसा नहीं है कि इसके लिए कानून नहीं बना है, लेकिन कानूनों से समाज नहीं चलता आवश्यकात है उन कानूनों के प्रति चेतना जागृत करने की जिससे आम भारतीय समाज को नई दिशा और दशा मिल सके।

संदर्भ :-

1. डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन 'भारत और विश्व'
2. सरला महेश्वरी 'भारतीय समाज एवं विलम्बित अधूरी क्रान्तियों में भारतीय नारी की पीड़ा' कार्ल मार्क्स मृत्यु शताब्दी विशेषांक
3. महात्मा गांधी 'हिन्द स्वराज'

डॉ. रत्नेश्वर सिंह, एसोसियेट प्रोफेसर (अ. प्रा.)
बी. एन. एम. यू.

✧ ✧ ✧

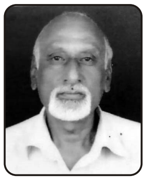

उग्र की अश्लीलता के लिये बदनाम कहानी ''चाकलेट''

राजेन्द्र सिंह गहलौत

यद्यपि वर्तमान साहित्य की कई रचनाओं में इस तरह के बाल एवं किशोर यौन शोषण के दृश्य चित्रित हैं, लेकिन स्वतंत्र रुप से कोई महत्वपूर्ण चर्चित रचना जो पूरी तरह से बाल एवं किशोर यौन शोषण को केन्द्र में रखकर लिखी गई हो, उसकी तरफ हमारा ध्यान नहीं जाता। कुछ लिखी भी गई है तो वे चर्चा में नहीं आ सकी। मसलन डॉ. तारिक असलम तस्नीम के कहानी संग्रह 'एक और चेहरा' में संग्रहित 'ओवरकोट' कहानी। ऐसी स्थिति में पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की चर्चित विवादित तथा अश्लीलता के लिए बदनाम कहानी 'चाकलेट' हमारा ध्यान आकर्षित करती है जो कि सन् 1927 में प्रकाशित हुई थी।

कुछ समय पूर्व सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक फैसले में भारतीय दंड़ संहिता की धारा 377 समाप्त कर समलैंगिक यौन संबंधों को अपराध मुक्त कर दिया है। यद्यपि ऐसे समलैंगिक संबंधों को अपराध मुक्त किया गया है जो कि दो वयस्क व्यक्तियों के मध्य परस्पर सहमति से बनाये जाते है। लेकिन समलैंगिकता की यौन विकृति से ग्रस्त व्यक्ति सिर्फ दूसरे वयस्क समलैंगिक व्यक्ति की सहमति से ही यौन संबंध नहीं बनाते बल्कि कमसिन किशोर एवं बालकों को भी अपनी हवस का शिकार बना कर उन्हें समलैंगिकता की तरफ प्रवृत्त करते है। भारतीय परिवेश में यदि गौर किया जाये तो समलैंगिक सबंध दो स्वरुपों में व्याप्त दिखाई पड़ता हैं। पहला वह समलैंगिक संबंध जो दो वयस्क व्यक्तियों के मध्य परस्पर सहमति से कायम होते हैं उसमें भी अमूमन एक पक्ष स्त्रैण स्वभाव वाला या हिजड़ा व्यक्ति होता है जबकि दूसरे तरह के समलैंगिक संबंधों में विकृत अप्राकृतिक यौन सबंधों के आदी हर उम्र के व्यक्तियों द्वारा बालकों तथा कमसिन किशोरों का यौन शोषण किया जाता है। ऐसे अप्राकृतिक यौन संबंध 'लौडेबाजी' के नाम से जाने जाते हैं तथा 'लौड़ा' शब्द उत्तर भारत में बालकों या किशोरों के लिये प्रयुक्त किया जाता है। भारतीय परिवेश में लंबे समय से अधिकांशत: यह दूसरी तरह का समलैंगिक संबंध ही एक गंभीर व्याधि की तरह व्याप्त है, जिसकी ओर सर्वोच्च न्यायालय ने समलैंगिकता को अपराध मुक्त करते हुए न गौर

किया और न ही वर्तमान साहित्य में 'समलैंगिकता' के समर्थन के परचम लहराने वाले लेखन ने ही ध्यान देना उचित समझा। जबकि बाल एवं किशोर यौनशोषण के शिकार अधिकांश बालक एवं किशोर, कुछ यौनजिज्ञासा की वजह से इस ओर प्रवृत होते हुये डर, शर्म तथा समलैंगिक संबंध बनाने वाले व्यक्ति द्वारा प्रलोभित किये जाने के फलस्वरूप किसी से कुछ कह नहीं पाते तथा आदी होने पर स्वयं को अप्राकृतिक यौन संबंधों के एक 'सेक्स आब्जेक्ट' के बतौर प्रयुक्त करने लगते हैं।

यद्यपि वर्तमान साहित्य की कई रचनाओं में इस तरह के बाल एवं किशोर यौन शोषण के दृश्य चित्रित हैं, लेकिन स्वतंत्र रुप से कोई महत्वपूर्ण चर्चित रचना जो पूरी तरह से बाल एवं किशोर यौन शौषण को केन्द्र में रखकर लिखी गई हो, उसकी तरफ हमारा ध्यान नहीं जाता। कुछ लिखी भी गई है तो वे चर्चा में नहीं आ सकी मसलन डॉ. तारिक असलम तस्नीम के कहानी संग्रह 'एक और चेहरा' में संग्रहित 'ओवरकोट' कहानी। ऐसी स्थिति में पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की चर्चित विवादित तथा अश्लीलता के लिए बदनाम कहानी 'चाकलेट' हमारा ध्यान आकर्षित करती है जो कि सन् 1927 में प्रकाशित हुई थी। प्रकाशित होने के कुछ समय बाद ही उसके कथ्य कथानक पर कम ध्यान दिया गया उसे अश्लीलता के लिए बदनाम करने की तरफ अधिक। पूरे प्रायोजित ढंग से उसके खिलाफ 'घासलेटी आंदोलन', 'विशाल भारत' के संपादक बनारसीदास चतुर्वेदी ने सन् 1928 में छेड़ा था इस आंदोलन में 'मतवाला', 'हिन्दी पंच' तथा 'नवयुग' ने सक्रिय भाग लिया। इन सब के चलते 'चाकलेट' कहानी अश्लीलता के लिये बदनाम एक कहानी के रुप में साहित्य के पन्नों में दर्ज हो गई। इतना ही नहीं चतुर्वेदी जी ने 'हिन्दी नागरी प्रचारणी सभा' एवं 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' से भी कहानी संग्रह 'चाकलेट' पुस्तक जिसमें चाकलेट सहित 7 कहानियां संग्रहित थी के खिलाफ प्रस्ताव पास करा कर 'विशाल भारत' में छापा तथा कहानी संग्रह की पुस्तक माहत्मा गांधी को भेज कर उनकी राय मांगी। महात्मा गांधी ने पुस्तक को बिन पढ़े ही इसके खिलाफ छेड़े गये 'घासलेटी आंदोलन' को समर्थन दे दिया। यद्यपि पुस्तक पढ़ने के बाद उनने इसका हेतु शुद्ध माना था ।

बनारसीदास चतुर्वेदी ने सिर्फ 'चाकलेट' पुस्तक ही नहीं बल्कि सन् 1927 में चांद कार्यालय से प्रकाशित पुस्तक 'अबलाओं का इंसाफ', जो कि रामगोपाल मेहता जी ने स्फुरना देवी के छद्म नाम से लिखी थी, को भी अश्लील ठहराते हुए उनके खिलाफ 'घासलेटी आंदोलन' छेड़ा था। लेकिन उस आंदोलन में 'घासलेट' शब्द संभवत: उग्र जी के 'चाकलेट' कहानी संग्रह का मजाक उड़ाते हुये रखा गया था। 'अबलाओं का इंसाफ' पुस्तक में उच्च वर्ग की ऐसी स्त्रियों के आत्म कथात्मक बयान दर्ज है जो कि बाल, वयस्क या वृद्ध उम्र में विधवा होने के बाद पुनर्विवाह न किये जाने से पतित की गई। पुस्तक में विधवा पुनर्विवाह तथा मनुस्मृति में वर्णित नियोग प्रथा जिसके तहत संतान प्राप्ति हेतु विशेष परिस्थितियों में अन्य पुरुष से देहसबंध बनाये जाने का प्रावधान रखा गया था को विधवाओं हेतु स्थापित करने की क्रांतिकारी मांग की गई थी। जबकि वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य फैसले में धारा 497 समाप्त कर विवाहेत्तर यौन संबंधों को स्वीकारने से 'अबलाओं का इंसाफ' में नियोग प्रथा को स्थापित करने की मांग विस्तृत दायरे और विभिन्न संदर्भो में पूरी होती प्रतीत हो रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'अबलाओं का इंसाफ'

पुस्तक में विधवाओं के लिये नियोग प्रथा स्थापित करने की मांग से ही संभवत: प्रेरित होकर प्रतिष्ठित कहानीकार शिवमूर्ति ने चर्चित तथा विवादित कहानी 'कुच्ची का कानून' लिखी है जिसमे विधवा स्त्री द्वारा कोख के अधिकार के तहत अन्य पुरुष से देहसबंध बनाया जाता है। इस पर विस्तृत चर्चा संभवत: विषयांतर होगा अत: मूल मुद्दे 'चाकलेट' कहानी की ओर लौटते हैं।

'चाकलेट' कहानी के खिलाफ छेड़े गये 'घासलेटी आंदोलन' के चलते अश्लीलता एवं श्लीलता के मुद्दे पर उस कहानी को आधार बना कर पक्ष विपक्ष में उस समय से लेकर वर्तमान समय तक लगातार विद्वानों के अभिमत आते रहे लेकिन यह विडंबना ही है कि तब से अब तक बतौर कहानी उस पर कम ही चर्चा की गई। आखिर उस कहानी का कथानक क्या है? कथ्य क्या है? तथा उस कथ्य का प्रस्तुतीकरण किस तरह से किया गया है? कहानी में उठाये गये मुद्दे का औचित्य उसके लेखन से अब तक क्या है आदि पर चर्चा करने की जहमत किसी ने नहीं उठाई। यहां तक कि बहुत सारे विद्वानों ने उस कहानी को बिन पढ़े 'घासलेटी आंदोलन' के आधार पर ही उस कहानी के पक्ष विपक्ष में अपनी बात कह दी। यहां तक कि 'चाकलेट' कहानी के समर्थन में, पं. बालकृष्ण भट्ट के सुपुत्र पं. जनार्दन भट्‌ट द्वारा लिखा आलेख जो कि 'चांद' में सन् 1928 में प्रकाशित हुआ था, वह उन्होने 'चाकलेट' कहानी संग्रह को बिन पढे ही लिख दिया था। इस बात को उन्होने अपने आलेख में स्वीकारा भी था- 'मैने इस पुस्तक को पढा नहीं है पर जहां तक चतुर्वेदी जी की आलोचना से पता चलता है, यह पुस्तक संदर्भप्राय पूर्ण उद्देश्य से लिखी गई है न कि जनता को अश्लीलता की ओर ले जाने के उद्देश्य से।' 'चाकलेट' कहानी न पढने के बावजूद उस कहानी में प्रस्तुत किशोर यौन शौषण के गंभीर एवं चिंताजनक मुद्दे को भली भांति समझ कर तथा उसकी समाज में व्यापकता पर चर्चा करते हुए, अपने उक्त आलेख में उन्होने लिखा - 'कोई फिर्का ऐसा नहीं, कोई समाज ऐसा नहीं, जो इन नर पिशाचों से खाली हो। अध्यापकों में ये पाये जाते है, वकीलान मे ये देखे जाते हैं, डॉक्टरी पेशा इनसे खाली नहीं, संपादकों में भी कई इस फन के उस्ताद मिलते हैं। कहाँ तक कहें, कोई समुदाय ऐसा नहीं जहां इन नर पिशाचों का जाल न बिछा हों।' पं. जनार्दन भट्‌ट ने अपने उक्त आलेख में बाल यौन शोषण की व्यापकता की जिस स्थिति की ओर ध्यानाकर्षण किया है वह वर्तमान में यथावत ही नहीं बल्कि और भी अधिक भीषण रुप में नये-नये कलेवर में वर्तमान समाज में व्याप्त है। इंटरनेट के चलते सोशल मीडिया में ढेर सारी साइट्स 'चाइल्ड पोर्नोग्राफी' की उपलब्ध है। अरब कंट्रीज में मनोरंजन के लिये ऊंट दौड़ में उनके पेट से छोटे बच्चों को बांध कर दौड़ाया जाता है जिसके लिये भारत से भी गैरकानूनी ढंग से बच्चे भेजें जाते हैं इतना ही नहीं एक संस्मरण में पढ़ने में आया था कि अरब देशों के कुछ अमीर शेख शाह अपने वी आई पी डिनर में विशाल डायनिंग टेबल के नीचे बालकों एवं किशोरों को छिपा कर बैठाते थे जो कि डिनर के दौरान विशेष मेहमानों के यौनांगो से मुख मैथुन करते थे ।

भारत में मुगल शासन काल मे बादशाह नबाबों के हरमों से लेकर वर्तमान के ग्रामों, कस्बों, नगरों महानगरों तक में बाल एवं किशोर यौन शोषण की कहानियां कही सुनी जाती है, विभिन्न आश्रमों, स्कूल कॉलेजों के हास्टलों से भी ऐसी कहानियां यदा-कदा उभरती रही है। काफी अरसे पहले इलाहाबाद विश्वविद्यालय के एक प्राध्यापक जो कि गोरखपुर के थे तथा

प्रतिष्ठित साहित्यकार थे के किशोरों से यौन संबंधों की कहानियां अभी भी यदा-कदा विश्वविद्यालय कैम्पस में रस ले ले कर कही सुनी जाती है। गौरतलब है कि किशोरों से यौन संबंध बनाने की यह यौन विकृति समलैंगिकता नहीं है। समलैंगिकता में दोनों पक्ष समलैंगिक संबंधों के आदी एवं उस विकृति के मानसिकता वाले होते है जबकि इस यौन विकृति की मानसिकता वाले व्यक्तियों द्वारा जिन बालकों एवं किशोरों का यौनशोषण जबरन या प्रलोभित कर किया जाता है वे समलैंगिक नहीं होते हैं तथा वयस्क होने पर सामान्य जीवन जीते हुए भी बचपन में भोगे इस कटु यौन विकृत संबंधों को भूल नहीं पाते जबकि कुछ किशोर ऐसे संबंधों के आदी होने पर समलैंगिक बन जाते हैं इससे भी इंकार नहीं किया जा सकता। लेकिन इन सब के बावजूद सिर्फ अश्लीलता के भय से न समाज में और ना ही साहित्य में इसके खिलाफ कोई आवाज उठती दिख रही है। पं. जनार्दन भट्ट ने अपने आलेख में उग्र की कहानी 'चाकलेट' का समर्थन करते हुए लिखा था- 'जहां तक मुझे ज्ञात है लेखक का उद्देश्य समाज का ध्यान एक महा घ्रणित और अस्वाभाविक पाप की ओर खींचने का है जो समाज में महा भयंकर पाप के रुप में फैला हुआ है और जिसका पर्दाफाश करने की हिम्मत, झूठी शर्म या अश्लीलता के डर से बड़े अगुआ, उपदेशक की नही पड़ती पर यह ऐसा व्यभिचार है जो समाज को घुन की तरह खोखला बना रहा है। न जाने कितने सुकुमार, सुंदर और कोमल बालक जो आगे चल कर देश की भावी आशाओं को सफल बना सकते थे, विषयी, लम्पट तथा अस्वाभाविक पापाचार में रत नर पिशाचों की घृणित कामतृष्णा के शिकार बन कर प्रतिदिन शारीरिक, मानसिक और नैतिक पतन के गढ्ढे में गिर रहे हैं और समाज अपने आसन से जरा भी नही डिगता।'

वर्तमान साहित्य में न जाने कितने विमर्शों के परचम लहराये जा रहे हैं, समलैंगिकता एवं थर्ड जेंडर पर साहित्यिक पत्रिकाओं के विशेषांक एवं आलेख संकलन प्रकाशित हो रहे हैं पर किसी का भी ध्यान इस यौन विकृति के शिकार कुम्हलाते देश के भविष्य बालकों एवं किशोरों की तरफ नही गया। कोई भी महत्वपूर्ण एवं चर्चित कृति यौन विकृति के इस पहलू पर पूरी तरह से केन्द्रित नहीं दिखलाई पड़ती। भुक्तभोगी या देखा गया कोई भी साहसपूर्ण संस्मरण, यौन विकृति के इस पहलू को रेखांकित करता हुआ संभवत: आज तक किसी साहित्यिक पत्रिका में प्रकाशित नहीं हुआ। शायद कोई ऐसे संस्मरण लिखने का साहस ही न कर सका जबकि हालात यह है कि यदि कोई शोध या सर्वेक्षण किया जाये तो लगभग हर व्यक्ति के किशोरावस्था की स्मृतियों के तहखाने में भोगी न सही तो कम से कम देखी और सुनी, इस यौन विकृतियों की यादें दफन अवश्य ही मिल जायेगी तो फिर क्यों न उनका प्रतिबिंबन साहित्य के आइने में भी पूरी संवेदनशीलता के साथ उद्देश्यपरक ढंग से किया जाये। लेकिन विडंबना यह है कि वर्तमान साहित्य में इस यौन विकृति के दृश्य चित्रित है भी तो उपहासित करते हुये मसलन दूधनाथ सिंह की कहानी 'नमो अंधकारं' में साहित्य गुरु का जो खाका खींचा गया है उस पर गौर कीजिये 'पतले और कामुक होंठ..... नितंब थोड़ा भारी और चकमक-चकमक थिरकते हुये बीच वाली ऊंगली टेढ़ी कर के चिनचिनाना....बालापन में चलित्तर कहार ने गुरू को जबरन 'राग जौनपुरी' की दीक्षा दी। लेकिन 'राग जौनपुरी' गुरू को सध गया।'

आइये उग्र की सन 1927 में लिखी, अश्लीलता के लिये बदनाम उस कहानी 'चाकलेट' की चर्चा करते है जिस पर बनारसी दास चतुर्वेदी ने अश्लीलता का आरोप लगाते हुये ऐसा 'घासलेटी आंदोलन' छेड़ा था जो न कभी पहले और न फिर कभी बाद में साहित्य जगत में किसी कृति के खिलाफ अश्लीलता के संदर्भ में छेड़ा गया। जिस कहानी की वजह से 'चंद हसीनों के खुतूत', 'दिल्ली के दलाल', 'बुधुआ की बेटी' जैसी कई लोकप्रिय कहानियां लिखने वाले प्रतिष्ठित कहानीकार की ख्याति एवं साहित्यिक प्रतिष्ठा को मटियामेट करने का प्रयास किया गया। जिस कहानी पर आज भी चर्चा करने से प्रतिष्ठित साहित्यकार कतराते नजर आते हैं या फिर नाक भौ सिकोड़ते है। मुझे याद नहीं आता कि नारी यौन स्वातंत्र्य, लिव इन रिलेशन तथा समलैंगिकता का समर्थन करते हुए उन से संबंधित भीषण अश्लील कहानियां प्रकाशित करने वाली किसी साहित्यिक पत्रिका ने उग्र की इस 'चाकलेट' कहानी को पुर्नप्रकाशित कर उस पर चर्चा, विचार विमर्श आयोजित किया हो या इस कहानी के कथ्य कथानक के अनुरुप अन्य कोई चर्चित कहानी किसी साहित्यिक पत्रिका मे प्रकाशित हुई हो। क्या वर्तमान समाज में बाल एवं किशोर यौन शोषण अब नहीं है?

इस वार्त्तालाप एवं पत्र के बाद कहानी में एक दृश्य चित्रित है जिसमें कथा नायक गोपाल के घर में सुबह 10 बजे दिनकर बाबू अपने उस बाल मित्र 'चाकलेट' रमेश को साथ लेकर आते हैं। जब गोपाल उनके लिये चाय नाश्ता लेने अंदर जाता है तो दिनकर बाबू अपने उस चाकलेट से प्यार मुहब्बत का इजहार करते हैं, उसे आलिंगन में लेने का प्रयास करते हैं। चाकलेट रमेश दूसरे का घर होने की वजह से आपत्ति करता है, अपने बचाव के लिये स्याही की बोतल उठा लेता है।

'चाकलेट' कहानी उन कमसिन किशोरों की कहानी है जो विकृत यौन संबंधों के प्रेमी व्यक्तियों की कामतृष्णा की पूर्त्ति हेतु चटपटी खट्टी-मीठी 'चाकलेट' बन कर प्रस्तुत होते हैं। इनके चाकलेट के अलावा भी कई नाम है मसलन 'पाकेट बुक', 'पटाखा', 'चिकना' आदि। यौन शोषण के शिकार किशोर जब इस भांति के अप्राकृतिक यौन संबंधों के आदी हो जाते है तो वे विकृत यौन संबंधों के प्रेमी जन हेतु बतौर 'चाकलेट' उपलब्ध हो जाते हैं। 'चाकलेट' कहानी में रोचक ढ़ंग से लेकिन इस यौनविकृति को नकारते दुत्कारते हुये कथानक का ताना बाना बुना गया है। कहानी का प्रारंभ बाबू दिनकर प्रसाद की शेर-ओ-शायरी से होता है। शेर-ओ-शायरी के दौरान दिनकर बाबू को तेरह चौदह साल का कमसिन किशोर लड़का पुकारता है और वे तुरंत उठ कर चल देते है। कथानायक गोपाल जब अपने दूसरे मित्र मनोहर से इस लड़के के बारे में पूछते है तो वह बतलाता है कि यह लड़का दिनकर बाबू का 'चाकलेट' है। गोपाल जब 'चाकलेट' शब्द के बारे में अपनी जिज्ञासा प्रकट करता है तो मनोहर बतलाता है- 'इन चाकलेटों की स्टडी बहुत डिफिकल्ट है। चाकलेट रोग दिन पर दिन हमारे देश में प्लेग और हैजा से अधिक बढ़ गया है।

समाज देखता हुआ अंधा बना हुआ है। वह वेश्यागमन का विरोधी है, विधवा विवाह के नाम पर उसकी आंखें खूनी हो जाती है, पर इसकी चर्चा उसकी जुबान से नहीं होती क्यो? उसे शर्म मालूम पड़ती है। घर में आग लगी हुई है पर जेंटलमैन मारे शर्म के स्वयं बुझाने को तैयार नहीं।' अपनी बात को अधिक स्पष्ट करते हुये मनोहर कहता है – 'चाकलेट देश के उन भोले भाले कमसिन और सुंदर लड़के को कहते हैं, जिन्हें समाज के राक्षस अपनी वासना की तृप्ति के लिये सर्वनाश के मुख में धकेलते है। ये बच्चे समाज के अच्छे अच्छो तक से नष्ट किये जाते है और दुश्चरित्र बनाये जाते हैं।' बाद में मनोहर गोपाल को लिखे एक पत्र द्वारा बतलाता है– 'इसके कारण समाज की भयंकर हानि हो रही है। देश के नवयुवक जनाने हुये जा रहे है। एक बालक जब यह देखता है कि उसके दूसरे साथी पर अधिक लोग आकर्षित है तब वह अपने साथी का अनुकरण करने की चेष्टा करने लगता है। 'बेनोलिया' के बाद 'व्हाइट रोज' और 'व्हाइट रोज' के बाद 'पियर्स सोप' की सहायता से 'चाकलेट' बनने की चेष्टा प्रारंभ होती है। 'मनोहर अपने पत्र मे इस यौन विकृति की व्यापकता पर चर्चा करते हुये लिखता है– 'स्कूलों के बोर्डिंग, ब्रम्हचर्याश्रम, कम्पनी बाग और मेलों तमाशों में लड़कों को पथभ्रष्ट करने की चेष्टा अधिकतर होती है। अनेक बार ऐसी घटनाएं सुनी गई है जिनमें शिक्षक ही बालकों के नाश के दायी होते थे। ऐसे कम ही स्कूल होंगे, जिनके हेडमास्टर के पास साल में इस तरह के दस पांच केस न आते हो। फिर भी सुधार की ओर लोग ध्यान नहीं देते। ऐसे कम विद्यार्थी होंगे जिनका कोई सुंदर मित्र न हो। विद्यार्थी अपने सुंदर मित्र को मित्रकहते हैं, रिश्तेदार बतलाते हैं। पर मित्र रिश्तेदार के प्रति उनका आचरण कैसा होता हैं, उसका वर्णन करना असंभव है। अस्तु गोपू! इस कुप्रथा का अंत होना चाहिये। अन्यथा हमारे देश की वर्तमान पीढ़ी, भावी पीढ़ियों को भी नष्ट कर डालेगी।' (उग्र की प्रतिनिधि कहानियां पृष्ठ 127– 128)

इस वार्त्तालाप एवं पत्र के बाद कहानी में एक दृश्य चित्रित है जिसमें कथा नायक गोपाल के घर में सुबह 10 बजे दिनकर बाबू अपने उस बाल मित्र 'चाकलेट' रमेश को साथ लेकर आते हैं। जब गोपाल उनके लिये चाय नाश्ता लेने अंदर जाता है तो दिनकर बाबू अपने उस चाकलेट से प्यार मुहब्बत का इजहार करते हैं, उसे आलिंगन में लेने का प्रयास करते हैं। चाकलेट रमेश दूसरे का घर होने की वजह से आपत्ति करता है, अपने बचाव के लिये स्याही की बोतल उठा लेता है। तभी स्याही की बोतल का ढक्कन खुल जाता है और दिनकर बाबू का मुंह स्याही से काला हो जाता है फिर भी वे चाकलेट रमेश को आलिंगन मे लेकर चुंबन लेना प्रारंभ कर देते हैं। गोपाल जो आड़ से सब देख रहा था कमरे में आता है तो दिनकर रमेश को छोड़ देता है तथा गोपाल रमेश को उसके घर छोड़ने चला जाता है। उसके बाद से दिनकर फिर गोपाल के घर नहीं आता।

वर्तमान समय में जिस भांति की देहवादी कहानियां लिखी जा रही है उनकी तुलना में 'चाकलेट' कहानी अश्लील तो नजर नहीं आती पर उसका वह दृश्य जिसमें दिनकर अपने बाल मित्र रमेश से गोपाल के घर में प्रणय याचना एवं आलिंगन चुम्बन करता है, अस्वाभाविक जरुर प्रतीत होता है। दरअसल ऐसे संबंध निरापद एकांत स्थल पर बनाये जाते है ना कि किसी मित्र के घर में। इस यौन विकृति के प्रेमी जन इस बात के लिये बेहद सतर्क रहते हैं कि उनका यह पापाचार सार्वजनिक न होने पाये। उनमें से बहुतेरे समाज के प्रतिष्ठित सम्मानित व्यक्ति भी होते हैं तथा वे

अपनी इस यौन विकृति के चलते समाज में अपमानित नहीं होना चाहते। चाकलेट कहानी में दिनकर जिस भांति शेर-ओ-शायरी करता है उससे वह कोई साहित्यकार कवि प्रतीत होता है तथा साहित्यकार कवि भी समाज में एक सम्मानजनक स्थान रखते हैं।

दरअसल उग्र जी ने 'चाकलेट' कहानी के कथानक में एक गंभीर विचारोत्तेजक समस्या को बहुत ही हल्के फुल्के ढंग से एक दृश्य चित्रण के माध्यम से रखा है जिससे कहानी का कथ्य प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत नहीं हो पाता है। यद्यपि इस यौन विकृति की समस्या की गंभीरता को कहानी में मनोहर के संवादों एवं पत्र के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है लेकिन यदि वह कहानी में एक सशक्त कथानक में उभर कर सामने आता तो अधिक प्रभावी एवं विचारोत्तेजक होता। संभवत: इसी वजह से 'चाकलेट' कहानी के प्रकाशित हो कर विवादित होने पर उसी वक्त 'सुधा' पत्रिका के संपादक दुलारे लाल भार्गव ने अपने संपादकीय में लिखा था- 'चाकलेट की कहानियां या अबलाओं का इंसाफ पुस्तकें ऐसे ढंग से लिखी गई है कि पढ़ने वाले के मन में घ्रृणा के बदले काम विकार पैदा होने की अधिक संभावना है। ...... चाकलेट की कहानियों में कला का अभाव नहीं है। उनकी भाषा में प्रौढता है। किन्तु यह साहित्य समाज के लिये घातक भी हो सकता है।'

सुधा पत्रिका के संपादक दुलारे लाल भार्गव के संपादकीय के मद्देनजर 'चाकलेट' कहानी पर गौर करें तो चाकलेट कहानी का प्रारंभ बाबू दिनकर प्रसाद के इस शेर के साथ होता है-

बेकरारी क्यों न हो ताजा शिकारे इश्क हूँ
चोट वह खाई है दिल पर जो कभी न खाई थी

जबाब में मनोहरचंन्द्र तीन बनारसी लोकगीत के अंश प्रस्तुत करता है कहानी लगभग डेढ़ पृष्ठ तक इन्हीं शेर और बनारसी लोकगीतों की चर्चा में बीतती है तथा दिनकर के बाल मित्र चाकलेट रमेश के आगमन के साथ ही उस पर केन्द्रित हो जाती है। कहानी में दिनकर एवं चाकलेट रमेश के मध्य होने वाले प्रणय संवादों में ऐसा कहीं से प्रतीत नहीं होता कि दिनकर चाकलेट रमेश का जबरन यौन शोषण कर रहा है बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि चाकलेट रमेश इस तरह के अप्राकृतिक यौन संबंधों का आदी हैं तथा स्वयं को बतौर एक सेक्स आब्जेक्ट प्रयुक्त करने लगा है, उनके मध्य किये गये संवादों पर गौर करिये -

'बोलो न कल कहां भूल गये थे? तुम जानते हो तुम्हारे बिन मुझे क्षण भर भी चौन नहीं पड़ती। रात को नींद नहीं आई बराबर यही सोचता रहा कि तुम नाराज तो नहीं हो! इधर आओ!'

इस बार जरा भयपूर्ण उपेक्षा से बालक ने कहा - 'क्या बकते हैं! कोई सुनेगा तो क्या समझेगा।'

'समझेगा क्या खाक? प्यार करने में भी किसी का इजारा है? मैं तुम्हें प्यार करता हूँ! इधर आओ-

'दर्द है जोर है बला का इश्क
शेख क्या जाने तू क्या है इश्क!'

- **इधर आओ रमेश!**
- **जो कहना है वहीं से कहिये! मैं आपके पास नहीं आऊंगा**
- **कान मे कहूँगा गुप्त बात है! आओ तुम्हें मेरी कसम है आओ!**
- **इस बार धीरे से गुनगुना कर दिवाकर बाबू ने कहा 'आओ रमेश'**
- **क्या बकते है? दूसरे का घर है! कहिये न क्या कहना है**
- **यहाँ सुनने वाला दूसरा कौन है**
- **नहीं आओगे? अच्छा तो मै तुम्हारे पास आता हूँ। मुहम्मद पहाड़ के पास नहीं जाते तो पहाड़ मुहम्मद के पास आयेगा**

(उग्र की प्रतिनिधि कहानियां पृष्ठ 129)

दिनकर बाबू एवं उनके चाकलेट रमेश के मध्य हुए इन संवादों से यह बात उभर कर सामने आती है कि रमेश का विरोध अप्राकृतिक यौन संबंधों से कम बल्कि दूसरे के घर में इस तरह के संबंध स्थापित होने पर किसी के देख लेने से होने वाली बदनामी का भय अधिक है जिसकी ओर वह अपने संवादों में इशारा करता है। यद्यपि नाबालिग किशोर की ऐसे संबंधों हेतु सहमति होने से भी दिनकर अपराध मुक्त नहीं होते। कहानी में प्रयुक्त इन संवादों को नैतिकतावादियों द्वारा अश्लील कहा जा सकता है लेकिन ये संवाद इस यौन विकृति के दोनों पक्षों (विकृत यौन संबंध करने वाले व्यक्ति तथा इस तरह के यौन संबंधो के आदी किशोर) की मानसिकता एवं स्थिति का परिचय पाठकों से कराते हैं।

'चाकलेट' कहानी में दिनकर द्वारा कहे 5 इश्किया शेर तथा मनोहर द्वारा कहे 2 बनारसी लोक गीत के अंश समाहित है तथा कहानी जिस तरह से प्रारंभ एवं गतिमान हो कर कुछ संवादों तथा दृश्य चित्रण के माध्यम से किशोरों से यौन सबंधों की चाकलेटबाजी की बात करती हुई समापन की ओर बढ़ती है उसमें से यदि मनोहर का चाकलेट और चाकलेटबाजी के बारे में कथन और पत्र का अंश निकाल दिया जाये तो पूरी कहानी चाकलेट और चाकलेटबाजी का रस ले लेकर लिखी गई प्रतीत होती है। संभवत: किसी सुंदर किशोर के चाकलेट बनने की स्थितियों तथा समाज में व्याप्त इस यौन विकृति की व्यापकता की गंभीरता के अनुरुप मूड बना कर उग्र जी उस कहानी को न लिख सके जिससे कहानी एक विचारोत्तेजक मुद्दे को प्रस्तुत करने वाली कहानी न बन सकी। फिर भी चाकलेट कहानी में ऐसी कोई अश्लीलता नजर नहीं आती है जिससे कि उसके खिलाफ घासलेटी आंदोलन जैसा कोई आंदोलन छेड़ा जाये ।

सुन्दर बालकों एवं किशोरों का यौन शोषण कर उन्हें इस यौन विकृति का अभ्यस्त बना कर 'चाकलेट' बनाने की प्रक्रिया उग्र जी के समय से अब तक लगातार जारी है, जिस पर कम ही निर्भीक कलमे लिख सकी है। जबकि बालिका यौन शोषण गंभीर मुद्दा बन कर उभरा है तथा साहित्य में उस पर काफी कुछ लगातार लिखा जा रहा है, प्रशासन एवं कानून ने भी उस ओर गंभीरता से ध्यान दिया है। लेकिन बालकों एवं किशोरों के यौन शोषण तथा ऐसे यौन शोषण के उनके अभ्यस्त बन जाने पर कम लिखा गया है। यह भी विडंबना है कि यौन शोषण की शिकार बालिका हेतु सभी का सहानुभूतिपूर्ण रवैया होता है लेकिन बालकों एवं किशोरों के यौन शोषण पर

उनके प्रति उपहासजनक एवं अपमानजनक रवैया रहता है जिससे वे अपने साथ हुए इस यौन शोषण की बात किसी से कह नहीं पाते। प्रशासन एवं कानून ने भी उनके यौन शोषण के प्रति कम ही गंभीर रुख अपनाया है। सन 2007 में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा भारत के 13 राज्यों पर किये गये अध्ययन मे 21 प्रतिशत लोगों ने बचपन में गंभीर यौन शोषण की बात स्वीकारी थी। वैसे बाल यौन शोषण करने वाले अपराधियों में केवल पुरुष ही नहीं बल्कि कम अनुपात के साथ महिलाएँ भी शामिल होती हैं।

लगभग एक सदी पहले साहस के साथ इस यौन विकृति पर लिखी कहानी 'चाकलेट' पर गौर करें तो पता चलता है कि दरअसल वह कहानी न तो समलैंगिकता की कहानी है और न ही सिर्फ किशोर यौन शोषण की कहानी है बल्कि किशोरों के यौन सामग्री बन कर प्रस्तुत हो जाने की कहानी है जो कि उग्र जी के समय से वर्तमान समय तक सिर्फ प्रासांगिक ही नहीं बल्कि नये नये रुपों में समाज के किशोर एवं युवा पीढ़ी द्वारा, सहज रुप से थोड़े बहुत पर्दे की आड़ में स्वीकारे जा रहे है। जब कि भा.दं.प्र. की धारा 377 की समाप्ति के बाद वयस्कों मे जहां गे एवं समलैंगिकता सहज रुप में स्वीकारे जा रहे है वहीं ताज्जुब नहीं कि उनका अनुकरण कर कतिपय बालक एवं किशोर समलैंगिकता को स्वीकारते हुये 'गे' के पाकेटबुक संस्करण 'चाकलेट' एवं 'मिनी जिंगालो (पुरुष वेश्या)' बन कर प्रस्तुत हो रहे हों। उस पर तुर्रा यह कि वर्तमान समाज के एक वर्ग में 'यूनीसेक्स संस्कृति' पनप ही नहीं रही बल्कि पूरी तरह से हावी हो रही जिसके चलते परिधान फैशन ही नहीं, जीवन शैली भी कतिपय किशोरों एवं युवाओं की लड़कियों की तरह हो रही है। ऐसी स्थिति में क्या यह जरुरी नहीं है कि सिर्फ छोटी बच्चियों की ही नहीं बल्कि बालकों एवं किशोरों की भी यौन जिज्ञासाओं तथा क्रियाकलापों पर उनके अभिभावकों द्वारा सूक्ष्म दृष्टि रखते हुये उनका मार्गदर्शन किया जाये तथा समाज में कमोवेश व्याप्त इस यौन विकृति का अध्ययन विश्लेषण समाजशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों तथा साहित्यकारों द्वारा गंभीरता से किया जावे।

उग्र जी ने अपने कहानी संग्रह 'चाकलेट' के खिलाफ छेड़े गये 'घासलेटी आंदोलन' का जबाब देते हुये ललकार कर कहा था– 'है कोई माई का लाल जो हमारे समाज को ऊपर से नीचे तक देखा कर, कलेजे में हाथ रख कर सत्य के तेज से मस्तक तान कर, इस अंकिंचन लेखक से यह कहने का दावा करे कि मैंने जो लिखा है वह गलत है। समाज में ऐसी घृणित, रोमांचकारी, काजलकारी तस्वीर नहीं है। अगर कोई हो तो सोत्साह मेरे सामने आये, मेरे कान उमेठे, छोटे मुंह पर थप्पड़ मारे, मेरे होश ठिकाने करें।' क्या उग्र जी की यह ललकार तथा उनकी कहानी 'चाकलेट' वर्तमान में भी प्रासांगिक नहीं है?

राजेन्द्र सिंह गहलौत, बस स्टैण्ड के सामने, बुढार–484110 (मध्य प्रदेश)
मो. : 93295621100

✧ ✧ ✧

मानस के निर्माण में नारी पात्रों की भूमिका

पद्मा मिश्रा

'शबरी का वास्तविक नाम श्रमणा बताया गया है, इन्होंने शबर जाति में जन्म लिया जिसके कारण इनका नाम शबरी पड़ गया, शबरी के पिता भीलों के राजा थे, और उनका तत्कालीन जनजातियों पर विशिष्ट प्रभाव था, शबरी जब विवाह योग्य हुई तो उनके पिता ने एक दूसरे भील राजकुमार से उनका विवाह सुनिश्चित कर दिया और उनके विवाह की तैयारियाँ होने लगीं, विवाह के दिन सैकड़ों बकरे-भैंसें बलिदान के लिए लाए गए जिन्हें देखकर शबरी ने अपने पिता से पूछा- 'ये सब जानवर यहाँ क्यों लाए गए हैं?' पिता ने कहा- 'तुम्हारे विवाह के उपलक्ष्य में इन सबकी बलि दी जाएगी।'

रामचरितमानस का हिंदी साहित्य में विशिष्ट योगदान है, समाज, धर्म, राजनीति, और नारी विमर्शों की बात हो या सामाजिक संबंधों की, एक अनूठी परिभाषा देने की बात हो, मानस ने जीवन के हर पहलू को छुआ है, जहां तक नारी विमर्श एवं पारिवारिक व सामाजिक जीवन में उनके अमूल्य योगदान की बात हो, गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस के नारी पात्रों के माध्यम से उन्हें सर्वोच्च सम्मान प्रदान किया है, मानस के नारी पात्रों की भूमिका मानस की मनोभूमि के निर्माण में सशक्त होकर उभरी है, सीता, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेई या उर्मिला, मंदोदरी, त्रिजटा, और तपस्विनी शबरी हो, सभी ने अपने पात्रों के साथ न्याय किया है, परंतु विशेष रूप से शबरी के चरित्र ने मुझे बहुत प्रभावित किया जिसका संवेदनशील चरित्र वर्तमान संदर्भों में भी अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रासंगिक जान पड़ता है, आज समाज में जहां धर्म एवं जातियों का चक्रव्यूह सामाजिक नैतिकता और मानवीय संवेदनाओं, मूल्यों को विनष्ट कर रहा है, नारी सम्मान एवं उनके सशक्तीकरण का ज्वलंत प्रश्न हाशिए पर हैं, वहां तुलसी दास जी की लेखनी ने तपस्विनी शबरी एवं राम के उदात्त चरित्र के माध्यम से पथभ्रष्ट समाज को एक नया मार्ग दिखाया है कि नारी किसी भी वर्ग या जाति की हो वह सदैव पूजनीय है, उसका ममत्व कभी दूषित नहीं हो सकता, यह कथा राम के प्रति शबरी की अनन्य भक्ति और निश्छल प्रेम का सुंदर उदाहरण है, जो मन को छू लेती है- लोकनायक राम का सभी वर्ग जातियों के प्रति

आदर व स्नेह उनका प्रजा वत्सल लोककल्याणकारी स्वरूप मन को मोह लेता है, यहाँ पर वे सचमुच पुरुषोत्तम हैं, आदरणीय हैं, वर्तमान संदर्भों में भी जहाँ छुआछूत, जातिप्रथा, जैसी बुराईयाँ संसार में फैली हैं और पूरे समाज को पतन के गर्त में डुबो रही हैं वहां यह कथा अत्यंत प्रासंगिक है- प्रेरणाप्रद है '' , विभिन्न विद्वानों ने अपने शोधपूर्ण आलेखों में उनके जीवन से जुड़ी अनेक कहानियों पर प्रकाश डाला है,

'शबरी का वास्तविक नाम श्रमणा बताया गया है, इन्होंने शबर जाति में जन्म लिया जिसके कारण इनका नाम शबरी पड़ गया, शबरी के पिता भीलों के राजा थे, और उनका तत्कालीन जनजातियों पर विशिष्ट प्रभाव था, शबरी जब विवाह योग्य हुई तो उनके पिता ने एक दूसरे भील राजकुमार से उनका विवाह सुनिश्चित कर दिया और उनके विवाह की तैयारियाँ होने लगीं, विवाह के दिन सैकड़ों बकरे-भैंसें बलिदान के लिए लाए गए जिन्हें देखकर शबरी ने अपने पिता से पूछा- 'ये सब जानवर यहाँ क्यों लाए गए हैं?' पिता ने कहा- 'तुम्हारे विवाह के उपलक्ष्य में इन सबकी बलि दी जाएगी।' यह सुनकर बालिका शबरी को अच्छा नहीं लगा और सोचने लगी यह किस प्रकार का विवाह है, जिसमें इतने निर्दोष प्राणियों का वध किया जाएगा। यह तो पाप कर्म है, इससे तो विवाह न करना ही अच्छा है। ऐसा सोचकर वह रात्रि में उठकर जंगल में भाग जाती है। और वन के निविड अंधकार में, विभिन्न कठिनाइयों के बीच जीवन यापन करते हुए मुनियों एवं ऋषियों के साथ रहकर जीवन व्यतीत करने का निर्णय लेती है, दंडकारण्य में वह देखती है कि हजारों ऋषि-मुनि तप कर रहे हैं। बालिका शबरी अशिक्षित होने के साथ ही निचली जाति से थी। वह समझ नहीं पा रही थीं कि किस तरह वह इन ऋषि-मुनियों के बीच यहां जंगल में रहें जबकि मुझे तो भजन, ध्यान आदि कुछ भी नहीं आता। लेकिन शबरी का हृदय पवित्र था और उसमें प्रभु के लिए सच्ची चाह थी, जिसके होने से सभी गुण स्वत: ही आ जाते हैं। वह रात्रि में जल्दी उठकर, जिधर से ऋषि निकलते, उस रास्ते को नदी तक साफ करती, कंकर-पत्थर हटाती ताकि ऋषियों के पैर सुरक्षित रहे। फिर वह जंगल की सूखी लकड़ियां बटोरती और उन्हें ऋषियों के यज्ञ स्थल पर रख देती। इस प्रकार वह गुप्त रूप से ऋषियों की सेवा करती थी। इन सब कार्यों को वह इतनी तत्परता से छिपकर करती कि कोई ऋषि देख न ले, यह कार्य वह कई वर्षों तक करती रही। अंत में मतंग ऋषि ने उस पर कृपा की। उसे व्यावहारिक जीवन की शिक्षा के साथ साथ आध्यात्मिक ज्ञान भी प्रदान किया, उसे राम की भक्ति का मार्ग दिखाया और उसे ही मुक्ति का साधन बताया,'' जब ऋषि मतंग मृत्यु शैया पर थे तब उनके वियोग से ही शबरी व्याकुल हो गई। महर्षि ने उसे निकट बुलाकर समझाया--''

- 'बेटी! धैर्य से कष्ट सहन करती हुई साधना में लगी रहना। प्रभु राम एक दिन तेरी कुटिया में अवश्य आएंगे। प्रभु की दृष्टि में कोई दीन-हीन और अस्पृश्य नहीं है। वे तो भाव के भूखे हैं और अंतर की प्रीति पर रीझते हैं।'',,

गुरु के वचनों को शबरी ने अपने जीवन का ध्येय मंत्र बना लिया था, महर्षि की मृत्यु के बाद शबरी अकेली ही अपनी कुटिया में रहती और प्रभु राम का स्मरण करती रहती थी। तुलसी ने अत्यंत भावुक अभिव्यक्ति और सम्मान दिया है भीलनी शबरी के पात्र की भूमिका को उर्जस्वित

और स्नेहसिक्त उदार हृदया बनाने में,--- ''भीलनी परम तपस्विनी शबरी जाको नाम, गुरु मतंग कह कर गए, तोहि मिलेंगे राम'' गुरु के आश्रम के पास एक सुंदर और भव्य झील थी जिसे पम्पासर कहा जाता है। शबरी जो अब बहुत बूढ़ी हो चुकी थी, पानी इकठ्ठा करने के लिए मिट्टी के बने अपने बर्तन के साथ झील पर गई। उसने झील के दिव्य जल को भरने वाली निम्न जाति की स्त्री को किसी ने देख लिया और तिरस्कृत किया कि ''निम्न जाति की स्त्री पानी को अशुद्ध कर रही है। ''उसने गुस्से में शबरी के ऊपर एक पत्थर फेंका, इससे उसके पैर में चोट लगी और रक्त निकल आया, रक्त की एक बूंद झील में गिर गई, कुछ ही क्षणों में झील का सारा पानी रक्त में बदल गया। दर्द से कराहती हुई शबरी अपने भरे हुए घड़े को लेकर अपने आश्रम चली गई। उस जल में गंगाजल और पवित्र नदियों का पानी डालकर भी देखा गया किंतु उसका रंग नहीं बदला सीता हरण के पश्चात राम और लक्ष्मण जब वन में पहुंचे तब ऋषियों में यह चर्चा होने लगी कि प्रभु राम आये है, यह सुनकर शबरी भी दौड़ी दौड़ी वहां पहुंची, पर सभी ने उसे राम से मिलने की अनुमति नहीं दी, वह रोती हुई जब वहां से चलने लगी तो उसके पैरों की धूल जल में गिरी और पानी पुनः निर्मल हो गया, जब राम को, पम्पासुर सरोवर के विषय में बताया गया और जल के पुनः निर्मल होने की कथा भी तो राम अभिभूत हो गये, कहा कि यह जरुर किसी पवित्र आत्मा और मन वाले व्यक्तित्व के लिए संभव है, मैं शबरी से मिलना चाहता हूं, ''संपूर्ण ऋषि समाज चमत्कृत रह गया, राम के साथ साथ सभी शबरी की कुटिया की ओर चले,'' आज शबरी का मन अत्यधिक बेचैन था, उल्लास, प्रसन्नता और उत्साह का आवेग संभाले नहीं सम्भल रहा था, सुबह से ही उठकर पूरी कुटिया की सफाई की, सूखे पत्तों को समेटा और रंग बिरंगे फूलों की रंगोली से सुंदर आसन बनाया था, वन प्रांतर से कुटिया तक आने वाले रास्ते को कई बार बुहार चुकी थी, ''आज मेरे प्रभु आएंगे!, राम आएंगे!, उसका मन बार बार शंकित भी हो रहा था लेकिन कहीं एक विश्वास भी था की राम जरूर आएंगे'' उसके निवास के समीपवर्ती साधु, भक्त, उपासक सभी उसके उतावलेपन और विश्वास को देख उपहास भी कर रहे थे, पर उनके मन में भी एक उत्सुकता थी, कि क्या प्रभु राम शबरी को सचमुच दर्शन देंगे? कहाँ उच्च कुल में जन्मे अयोध्या नरेश के प्रतापी पुत्र, प्रजा पालक, संसार के पालनहार भगवान विष्णु के अवतार एक शूद्रा के द्वार आएंगे? ''कोटि जन्म मुनि जतन कराहिं, अंत राम मुख आवत नाहीं'' 'वही राम इतनी सरलता से निम्न जाति -कुल की शूद्रा से मिलेंगे?'

लेकिन शबरी इन सब कटुक्तियों को अनसुना कर केवल अपने अंतर्मन में भगवान के युगल चरणों को स्नेह सिक्त आंसुओं से नहला रही थी, दौड़ कर वन-मार्ग को देखती फिर सुबह से संचित पके अधपके फलों को धो कर स्वच्छ करती, साँझ बीत रही थी, बिलम्ब हो रहा था, थक हार कर वहीं भूमि पर लेट कर, राम, राम, राम का जाप करने लगी, वृद्धा शबरी का शिथिल शरीर और उसका निर्मल हृदय राम के साथ एकाकार होने लगा, वात्सल्य की स्नेह धारा बढ़ती जा रही थी, तभी एक धीर गंभीर वाणी उसके कानो में गूंजी -''माता!'' कौन आया है आज हृदय द्वार पर? उसका मन सहसा विश्वास ही नहीं कर पा रहा था,--''उठो माँ ! मैं हूँ राम -तुम्हारा पुत्र!!'' अब वह विह्वलता से उठ बैठी --सामने ही तो खड़े थे प्रभु राम -उसके राम छोटे भाई लक्ष्मण के साथ 'आँखे छलक उठीं-गंगा-यमुना सी जल-धारा उमड़ती जा रही थी, आंसुओं से ही राम के

चरण पखार लिए शबरी ने, आँचल से चरणों को पोंछ उनके पास ही भूमि पर लोट उन्हें प्रणाम किया --''आप आ गए प्रभु ! आपके दर्शनों से आज मैं कृतार्थ हो गई -मेरे जनम जनम के पुण्यों का फल मुझे मिल गया -अब ये आँखें कुछ और नहीं देखना चाहती मेरे राम! मेरे समीप मेरे हृदय-आसन पर विराजें प्रभु !''

वह दौड़ कर कुटी के अंदर से कुछ फल लेकर आई और भगवान के सम्मुख उनके जलपान के लिए रखा वे फल कुछ पके और अधपके भी थे, कहीं भगवान कच्चे और खट्टे फल न खा लें यह सोच शबरी उन्हें स्वयं चख कर मीठे होने पर ही राम को देती जा रही थी, और वे सहर्ष खा रहे थे, शबरी के प्रेम पुलकित स्नेह के सम्मुख आज त्रिलोक के स्वामी राम प्रेम-विवश थे, परन्तु लक्ष्मण को यह उचित नहीं लग रहा था, उसके जूठे फल कैसे खा सकते थे? संकेत से भाई को भी मना किया पर राम ने ध्यान नहीं दिया, लक्ष्मण शबरी के दिए फलों को छिपकर सुदूर फेंकते जा रहे थे, लेकिन राम को उन फलों में अमृत तुल्य स्वाद की प्राप्ति हो रही थी, शीतल जल पीकर शबरी को आशीष दे उनसे जाने की आज्ञा मांगी -शबरी उनके चरणो में गिर गई और अपने मोक्ष की कामना की। कहते हैं कि लक्ष्मण द्वारा फेंके गए वे फल ही संजीवनी बूटी के रूप में फलित हुए और राम-रावण युद्ध में मेघनाद का शर लगने पर घायल लक्ष्मण की प्राण-रक्षा की थी।

ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी के आश्रम पगु धारा,

सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए, राम

जो अयोध्या के भावी राजा थे, परमब्रह्म पुरुषोत्तम थे, समाज में सम्मानित उच्च कुल में जन्मे थे, उनका भीलनी एवं शूद्रा शबरी के द्वार पर जाना उसके हाथों से फल ग्रहण करना तंत्कालीन समाज में बहुत बड़ी बात थी, आज भी निम्न जाति की स्त्री को धर्म और जाति के ठेकेदार उचित सम्मान नहीं देते हैं, राजनीति, समाज और ग्लैमर के संसार में एक नारी को केवल अपने हित साधने की सीढ़ियां बना कर प्रयोग करते हैं, हमने देखा है कि राजनीति में किसी निम्न जाति की महिला के पैर छूकर, उनके बनाए भोजन करके अपनी छवि को परिष्कृत करने की छद्म कोशिश की जाती है, वह सम्मान हृदय से कदापि नहीं होता, क्या हम मानस के नारी पात्रों एवं मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र से कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकते? राम ने कहा''

''सोई अतिशय भामिनि प्रिय मोरे, सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे'

प्रभु ने इस प्रेम एवं सेवा के प्रतिदान में शबरी को कुछ प्रदान करने की कामना की, परंतु शबरी ने मांगा भी तो केवल राम के चरणों की अनन्य भक्ति एवं मोक्ष। राम ने तत्क्षण उसकी कामना पूर्ति के लिए एवमतु कह दिया।

शबरी के पूर्व जन्म के संबंध में भी अनेक कहानियां प्रचलित हैं, शोधकर्ता अनिल दीक्षित कहते हैं कि शबरी पूर्व जन्म में किसी राजा की महारानी थी, एक बार कुंभ के अवसर पर वह प्रयाग गई सदल बल उसके आवास के समीप ही ऋषियों का भी आवास था, जो प्रतिदिन भगवान की उपासना करते, भजन और प्रवचन किया करते थे, महारानी उन सभी के दर्शन करना

और प्रवचन सुनना चाहती थी, राजा से अनुमति मांगी तो उन्होंने स्पष्ट रूप से मना कर दिया'' आप महारानी है, आप इस तरह सार्वजनिक रूप से बाहर नहीं जा सकती,, ''रानी अत्यंत भावुक और व्यथित हो गई, मैं ऋषियों के दर्शन भी नहीं कर सकती, इस महारानी पद पर बने रहने का कोई अर्थ नहीं मेरे लिए'' और त्रिवेणी में जाकर जल समाधि ले ली, उस समय भगवान से प्रार्थना की'' हे भगवान, अगले जन्म में मुझे महारानी मत बनाना, और सुंदर भी नहीं, एक सामान्य मनुष्य बनूं ताकि अपने प्रभु के दर्शन कर सकूं'' वही रानी शबरी के रूप में जन्मी, पंडित धनंजय शास्त्री भारद्वाज कहते हैं कि यही शबरी द्वापर में कुब्जा के रूप में जन्मी थी, कहानियां लोक निर्मित भी हो सकती है और लोक श्रुत भी, परंतु शबरी एक विलक्षण व्यक्तित्व की स्वामिनी थी, इसमें संदेह नहीं, शबरी दलित वर्ग की महिला जरुर थी, लेकिन ज्ञान भक्ति और प्रेम वात्सल्य से परिपूर्ण, जहां समस्त प्राणी मात्र के लिए दया और करुणा की अगाध गंगा प्रवाहित हो रही थी, वन की कठिन परिस्थितियों में जीवन यापन करती, सबकी उपेक्षाओं का सामना करती, किंतु अपने कर्त्तव्य से कभी विमुख नहीं हुई, चातक की भांति एकनिष्ठ भाव से अपने प्रभु राम की प्रतीक्षा में वर्ष पर वर्ष बीतते गए, लेकिन उसकी प्रतीक्षा का अंत नहीं हुआ, वह अडिग रह कर एकनिष्ठ भाव से प्रभु राम की भक्ति में लीन तप करती रही, स्नेह, करुणा और कर्त्तव्य की अग्नि में स्वयम् को तपाती रही, शबरी का राम के प्रति एकनिष्ठ प्रेम न केवल राम के अपितु उनके विराट व्यक्तित्व में अंतर्निहित प्रेम, सद्भावना, करुणा, सहिष्णुता, मर्यादा और प्राणिमात्र के प्रति दया भाव से भी था, वह कर्त्तव्यनिष्ठ, सेवाभावी, नारी भी थी और वात्सल्य, ममत्व, और दया करुणा की साक्षात प्रतिमूर्ति भी थी, जब उसने अपने विवाह के समय बलि होने वाले मूक पशुओं का वध किए जाने का विरोध किया था, वन में एकांत प्रिय तपस्वियों की सेवा करने का कर्त्तव्य हो या अपने पर्यावरण, परिवेश को सुखमय, सुरभित और हरितभूमि में बदल देने का दायित्व बोध हो, वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक सबल मानसिक रूप से सशक्त नारी के रूप में उभर कर सामने आती हैं, यह कथा हमे सिखाती है की जाति -पांति, वर्ग, भेद निम्न या उच्च कुल में जन्म लेने से कोई महान नहीं बन जाता - बल्कि उसके अच्छे या बुरे कर्म ही उसे अच्छा या बुरा बनाते हैं, ईश्वर की दृष्टि में सभी समान हैं, शबरी निम्न कुल की भले ही थी, उसके कर्म उसे संसार में सभी का आदरणीय बनाते हैं -- इसमें संदेह नहीं, यह थी शबरी के चरित्र की महानता! जो यह सिद्ध करती हैं कि --''प्रेमन जाने जाँत और पांत''।

पद्मा मिश्रा, कवयित्री कथाकार, जमशेदपुर झारखंड
शोध संदर्भ–चौपाई, दोहे–रामचरित मानस, शबरी की अंतर्गत कथा–गोस्वामी तुलसी दास कृत रामचरितमानस एवं रामायण, शोध ––श्री अनिल दीक्षित एवं कथा प्रसंग–पंडित धनंजय शास्त्री भारद्वाज, मोरारी बापू, रानी मिश्रा

✧ ✧ ✧

संवेदना का अनुकूलता और सौन्दर्य

डॉ. उर्मिला मिश्रा

स्थिति के अनुरूप भावों को, विचारों को, कार्यों को महसूस करना तदानुरूप कार्य करना ही भावों, विचारों और कार्यो की सात्विकता हो सकती है। केवल किसी के सामने चार आँसू गिरा देने से, गिरा कर दिखा देने से संवेदनशीलता सिद्ध नहीं हो सकती। अक्सर हम देखते हैं कि अत्याचार या गलत मुद्दों के खिलाफ जहाँ अकड़ना चाहिए, विरोध प्रदर्शित करना चाहिए वहाँ हम चमचागिरि करते हैं या खामोश रहते हैं या दबे-दबे मुस्कुराते हैं, कभी गिड़गिड़ाते हैं और जहाँ नम्रता बरतनी चाहिए, सयंम दिखाना चाहिए वहाँ रौब दिखाते हैं।

संवेदना का सौन्दर्य उसके सकारात्मक होने में है, सात्विक होने में है, उसके सृजनशील होने में है, अगर ऐसा नहीं होता तो कोरी भावुकता केवल आडम्बर है। जिससे न तो किसी का भला होने वाला है और न दिशा मिलने वाली है। सात्विक होने पर ही संवेदना कर्म में बदल कर मंगलमय हो सकती है.............।

प्राय पढ़ती आयी हूँ कि संवेदना की अनुकूलना ही सुख है और प्रतिकूलता दुख। शायद यही कारण है कि किसी व्यक्ति को तो छोटी से छोटी वस्तु भी सुख देती है और किसी किसी को बड़ी से बड़ी वस्तु भी आनन्द नहीं देती है। परन्तु यहीं यह समझ लेना जरूरी है कि संवेदना की अनुकूलता की दिशा सकरात्मक होनी चाहिए नकारात्मक नहीं। कुछ अस्वस्थ और विकृत मानसिकता वालों को दूसरों के साथ घटी नकारात्मक घटनाएं ही सुख पहुँचाती है उनकी संवेदना में अनुकूलता नकारात्मक स्थितियों में से ही जन्मती है। किसी की पराजय, किसी की असफलता, किसी की पीड़ा ही उनकी प्रसनन्ता का विषय होती है इसलिए मैं संवेदना की अनुकूलता से पूर्व सात्विक शब्द जोड़ना आवश्यक समझती हूँ। सही मायने में सच्चा संवेदन शील वही हो सकता है जो वक्त, परिस्थिति, घटनाओं के अनुपात में प्रतिक्रिया करे, जाहिर करे। जैसे जिन मुददों पर क्रोध आना चाहिए क्रोध करे, न कि कछुए की तरह गर्दन अपने खोल से घुसा के वहाँ से खिसक ले। जब किसी की पराजय की घड़ी हो, संकट की घड़ी हो, वहा सांत्वना

दे सहयोग दे, दुखी हो, न कि प्रसन्न। ऐसे में अक्सर लोग कहते देख जाते हैं कि अच्छा हुआ, टिक गया, बहुत उड़ रहा था। इसी प्रकार जहाँ लाचारगी हो, करूणा होनी चाहिए। जहाँ सहारे की जरूरत हो, लकड़ी थमानी चाहिए न कि लकड़ी छीने, प्राय लकड़ी भी छीनते हैं लोग, ताकि लाचार व्यकित पूरी तरह धूल में मिल जाये।

स्थिति के अनुरूप भावों को, विचारों को, कार्यों को महसूस करना तदनुरूप कार्य करना ही भावों, विचारों और कार्यो की सात्विकता हो सकती है। केवल किसी के सामने चार आँसू गिरा देने से, गिरा कर दिखा देने से संवेदनशीलता सिद्ध नहीं हो सकती। अक्सर हम देखते हैं कि अत्याचार या गलत मुद्दों के खिलाफ जहाँ अकड़ना चाहिए, विरोध प्रदर्शित करना चाहिए वहाँ हम चमचागिरि करते हैं या खामोश रहते हैं, या दबे-दबे मुस्कुराते हैं, कभी गिड़गिड़ाते हैं, और जहाँ नम्रता बरतनी चाहिए, सयंम दिखाना चाहिए वहाँ रौब दिखाते हैं। जैसे अपने नीचे काम करने वालों के साथ, श्रमिकों के साथ, मजदूरों के साथ अकड़ दिखाते हैं। जो हमें किसी गिनती में नहीं रखते उनकी एक झलक पाने को, उनके साथ फोटो खिंचवाने को तरसते हैं और अगर मौका मिला जाये तो इसे अपना बड़प्पन समझते हैं, शान समझते हैं, नहीं जानते शान को शान में से ही आना चाहिए और शान से ही आना चाहिए क्योंकि झूठी शान टिकती नहीं मौका मिला नहीं कि भाग जाती है। अगर हम टेढ़े, मेढ़े रास्तों से इज्जत को पकड़ कर लाते हैं तो उसमें स्थायित्व नहीं आता। सही मुददों और सत्य के अनुरूप अगर संवेदना जागे तो शील भी आये और शिव भी आये एवं सौन्दर्य भी विकति हो, जो सत्य नहीं, वह मगंलकारी भी नहीं। अत: सुन्दर भी नहीं, फलदायी भी नहीं। इसलिए हमारी सोच विभाजित हो जाती है चाहते कुछ और हैं, करते कुछ और है एवं कहते बिल्कुल ही कुछ और हैं शब्द एवं उनके अर्थ छिटक कर बिखर जाते हैं। यह विकृत क्रम न तो विश्वसनीयता पनपने देता, न प्रतिबद्धता। अत हमें सात्विक संवेदना ही विकसित करनी पड़ेगी। क्योंकि हमारा विकास, हमारे मन का विकास, विचारों का विकास, शैक्षिक, आर्थिक राजनैतिक एवं चारित्रिक विकास हवा में नहीं हो गया यह विकास हमारे इर्द गिर्द के वातावरण में, लोगों के सानिध्य में ही विकसित हुआ है हमारे निर्माण में हमारे चरित्र के निर्माण में न जाने कितनों की मेहनत, कितनों का प्रेम, कितनों की उदारता, प्रशंसित निगाहों और मुस्कुराहटों का योगदान है और हम उन सबके ऋणी हैं। उनके ऋण को उसी संवेदना से अगर नहीं चुकाते तो गलती करते हैं एहसानफरामोशी करते हैं आभार को घटातें है और साथियों जब आभार की मात्रा घट जाती है, धन्यवाद घट जाता है तो अहम बढ़ जाता है सब कुछ ठोस हो जाता है। भारी हो जाता है। द्रव बनता ही नहीं कुछ बहता ही नहीं। तरलता रहती ही नहीं। न प्रेम की, न सौहार्द की, न करूणा की। मन तथा विचारों में बाहर की कोई हवा पास ही नहीं होती, गुजरती ही नहीं, किसी का कहा कुछ सुनायी नहीं देता, किसी का कुछ भी दिखायी नहीं देता, न सहयोग, न प्रेम, न मुस्कुराहट, न मीठी नजर, न तरलता। हम पेड़ के ठोस तने हो जाते हैं। हम भूल जाते है उस बांस को, जो खोखला होता है खाली होता है, शून्य होता है, अत: सारी हवा उसके अन्दर से पूर्णत गुजरती है, अन्दर एवं बाहर की हवाओं के मिश्रण से ध्वनि निकलती है, राग निकलते हैं, संगीत निकलता है। गीत का सृजन होता है। ठोस में से तो संगीत नहीं 'धप्प' की ही आवाज निकलती है जिसमें कोई रमणीयता नहीं

होती। कोई दिशा देने वाला भाव नहीं जागता। यो तो भावों की संख्या साहित्य में 33 मानी गयी है परन्तु हमारे मन में स्थायी भावों की संख्या 11 मानी जाती है जैसे ईश्वर के प्रति रति, सन्तान के प्रति रति, नायक-नायिका की रति, दुख, उत्साह, हास, आश्चर्य, निर्वेद, क्रोध, जुगुप्सा, भय आदि। इनमें से पहले चार भाव प्रेम, दुख, उत्साह, हास आदि सकारात्मक माने जाते हैं एवं भय, क्रोध, जुगुप्सा आदि भाव नकारात्मक माने जाते है परन्तु सात्विक अवस्था में ये नकारात्मक भाव भी रसमय एवं सकारात्मक बन जाते हैं। यथा अनुचित मददों पर क्रोध आना चाहिए, बुरे कामों से डरना चाहिए। कमजोर के प्रति होते अत्याचार को देख कर मौन रह जाना किसी के आनन्द का कारण नहीं हो सकता। गलत जगह क्रोध दिखाना, बहादुरी दिखाना भी आनन्दायी नहीं हो सकता। एक घटना आपको सुनाती हूँ। हरियाणा के गुड़गाँव शहर में एक विख्यात हास्पिटल के मालिक के फार्म

सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि सत्य सदैव वस्तुनिष्ठता में से ही आयेगा। पूर्वाग्रहों के धर में से गुजर कर नहीं। अगर हम पूर्वाग्रहों से, स्वार्थ से, हठ से, जिद से मुक्त हो जायें तभी संवेदना की अनुकूलता सकारात्मक सुखदायी और सृजनात्मक होगी। प्रत्येक भाव की उपस्थिति रसमय होती है अगर वह सही समय पर उपस्थित हो। उदाहरण के लिए गलत कार्य करने से पूर्व भय आना ही चाहिए। अन्याय के खिलाफ क्रोध उत्पन्न होना ही चाहिए वहाँ मौन पाप है। जैसे भगवान राम को सीता की खोज हेतु जब लंका जाते समय समुद्र पार करना था तो वे समुद्र से नीचे उतरने की प्रार्थना तीन दिन तक करते रहे, जब वह नहीं माना तो उन्होंने क्रोध में भरकर अग्नि बाण छोड़ा। यह क्रोध सात्विक है क्योंकि नेक काम हेतु छोड़ा गया। आज हम संवेदनाशून्य हो गये हैं अपने उद्‌देश्यों के प्रति, परिवार के प्रति, अपने पेशे के प्रति। तभी चारों और व्यक्तित्व में छेद और दरारे बन गयी हैं।

हाउस पर उसके कुत्ते को शेर ने काट लिया, कुत्ता मर गया। मालिक को इतना क्रोध आया कि उसने गाँव वालों से मिलकर, उन्हें पैसा देकर, डराकर उस शेर को पकड़वाया पिजड़े में 15 दिन भूखा बन्द रखा और उसे तड़पा कर फिर इस घटना को उसने Internet पर डाला। अब यह घटना न तो उसका प्रेम कुत्ते के प्रति दर्शाती है और न उसकी संवेदनशीलता को। दर्शाती है केवल क्रूरता को, अहंकार को, साधन सम्पन्नता को और सबसे अधिक लोगों में भय पैदा करने की भावना को। और अपने इस लक्ष्य में वह थोड़ा बहुत सफल भी हो गया। उसके सारे कर्मचारियों में एवं सबॉडीनेटस में यह संदेश चला गया कि यह व्यक्ति नीचता की किस सीमा तक जा सकता है।

अत बन्धुओं मैं कहना चाहती हूँ कि संवेदना का सौन्दर्य उसके सात्विक होने में है, सकारात्मक होने में है, उसके सृजनशील होने में है और अगर ऐसा नहीं होता तो कोरी भावुकता

केवल आडम्बर है जिससे न तो किसी का भला होगा और न किसी का दिशा मिलेगी। कर्म में तो सात्विक संवेदना ही बदलेगी, वही सृजन की दिशा में ले जा सकती है। कोरी भावुकता तो केवल सम्बन्धित व्यक्ति का दिल ही दुखा सकती है ओर वह किसी को कमजोर की कर सकती है। शान्ति देने वाली ताकत तो सत्य में से ही जागेगी। और वह भी अनुभूत सत्य में से। यहाँ मैं एक महत्वपूर्ण तथ्य और स्पष्ट करना चाहती हूँ कि सत्य स्वानूभूत एवं वैयक्तिक ही होता है। वह कभी समूह में से नहीं आ सकता। क्योंकि सामूहिक सत्य सदा सामान्यीकरण की तरफ ले जाता है और सामान्य कभी विशेष नहीं हो सकता। कारण है इसका भी। प्रत्येक की स्थिति अलग है, समय अलग, अनुभव अलग, चिन्तन अलग, अनुभूति अलग। परिणामत सत्य अलग। बिल्कुल अनूठा, बिल्कुल भिन्न पूरे का पूरा विशेष। अब देखिए एक व्यक्ति को छोटे से पौधे में फूटता अंकुर भी आनन्द दे सकता है। और दूसरे को पूरा बगीचा भी खुशी नहीं दे सकता। यह सब निर्भर करता है सामने वाले की मनस्थिति पर। जब कोई भी घटना मनुष्य के संवेदनो में से होकर गुजरती है तो उस मनुष्य के पूरे मौसम को लेकर बाहर आती है। जैसे स्वाति नक्षत्र में बरसी बूँद केले के पत्ते पर गिरे तो कपूर बनती है। सीप के मुँह में गिरे तो मोती बनती है और सांप के मुख में गिरे तो विष बन जाती है।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि सत्य सदैव वस्तु निष्ठता में से ही आयेगा। पूर्वाग्रहों के धर में से गुजर कर नहीं। अगर हम पूर्वाग्रहों से, स्वार्थ से, हठ से, जिद से मुक्त हो जायें तभी संवेदना की अनुकूलता सकारात्मक सुखदायी और सृजनात्मक होगी। प्रत्येक भाव की उपस्थिति रसमय होती है अगर वह सही समय पर उपस्थित हो। उदाहरण के लिए गलत कार्य करने से पूर्व भय आना ही चाहिए। अन्याय के खिलाफ क्रोध उत्पन्न होना ही चाहिए वहाँ मौन पाप है। जैसे भगवान राम को सीता की खोज हेतु जब लंका जाते समय समुद्र पर करना था तो वे समुद्र से नीचे उतरने की प्रार्थना तीन दिन तक करते रहे, जब वह नहीं माना तो उन्होंने क्रोध में भरकर अग्नि बाण छोड़ा। यह क्रोध सात्विक है क्योंकि नेक काम हेतु छोड़ा गया। आज हम संवेदना शून्य हो गये हैं अपने उद्देश्यों के प्रति, परिवार के प्रति, अपने पेश के प्रति। तभी चारों और व्यक्तित्व में छेद और दरारे बन गयी हैं और उन्हीं छेद और दरारों में से संवेदना बह बह कर निकल गयी है। सही मायनों में अगर जिन्दा रहना है तो संवेदना की सात्विकता अनिवार्य है ताकि जीवन में शिवम और सौन्दर्य फलीभूत हो सके।

डॉ. उर्मिला मिश्रा, प्रवक्ता हिन्दी सेठ मंगल चन्द राजकीय कॉलेज,
आबूरोड, राज

✧ ✧ ✧

आलेख

ओमप्रकाश वाल्मीकि का रचना संसार

डॉ. कार्तिक चौधरी

चर्चित आत्मकथा जूठन (राधाकृष्ण प्रकाशन) भी 1997 में आया। दलित साहित्य को पहचान आत्मकथा से ही मिली है। 'जूठन' आत्मकथा दलित जीवन के यथार्थ और मार्मिकता को ही केंद्र में रखता है। विरोधी परस्थितियों में जिजीविषा की अदम्य चाहत ही जूठन आत्मकथा का सार है। अतः स्वयं भूमिका में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते है कि '....एक लम्बी जद्दोजहद के बाद, मैंने सिलसिलेवार लिखना शुरू किया। तमाम कष्टों, यातनाओं, उपेक्षाओं, प्रताड़नाओं को एक बार फिर जीना पड़ा। 'जूठन भारतीय समाज में बनी अमानवीय प्रथाओं में से एक है। जो मनुष्यता के अधिकार के लिए जीवन संघर्ष को हमारे समक्ष रखती है।

जूठन के लेखक के माध्यम से अपने पहचान बनाने वाले ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म 30 जून 1950 को मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश में हुआ था। ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर थे। जब भी हिंदी दलित साहित्य का इतिहास लिखा जाएगा ओमप्रकाश वाल्मीकि सबसे अग्रणी पंक्ति में होंगे। ओमप्रकाश वाल्मीकि की रचना संसार का समय लगभग 40 वर्षों का रहा, लेकिन उस कम समय में ही ओमप्रकाश वाल्मीकि कवि, कहानीकार, आत्मकथाकार, आलोचक और समाजशास्त्री के रूप में पहचाने जाएंगे।

जहाँ तक ओमप्रकाश वाल्मीकि की रचनाओं में खास बात यह है कि वह साहित्य जगत में एक नई दुनिया नही तलाशते बल्कि वर्षों से साहित्य के अंतर्गत जिस दुनिया को छुपाने का प्रयास किया गया उसी को उन्होंने शब्द देने का प्रयास किया है। अथार्त साहित्य की परंपरा गत स्वरूप को बदलने का प्रयास ही ओमप्रकाश वाल्मीकि की रचनाओं का मुख्य उद्देश्य है। उन्होंने दलित साहित्य को परिभाषित करते हुए 'दलित साहित्य को प्रेम, मित्रता और मानवता का साहित्य बताया। 'वे दलित शब्द के लिए स्पष्ट कहते है कि' दलित एक समूह वाचक शब्द है जिसके अंतर्गत वह जातियां आती है जो वर्षों से दबाई गयी है।

उनकी प्रारम्भिक रचना 'सदियों का संताप' काव्य संग्रह 1989 में फिलहाल प्रकाशन से आया। इस काव्य संग्रह को खुद अपने ही बेचने निकल पड़े। यह आश्चर्य नहीं

बल्कि समाज बदलने की भूमि को वह अपनी लेखनी के माध्यम से तैयार कर रहे थे। यह संग्रह 1974 से 1989 के दरमियां लिखी गयी उनके कविताओं का संग्रह है। वर्षों की असमानता की व्यवस्था ने दर्द और पीड़ा ही दीया तभी तो वह अपनी कविता में लिखते है ''दोस्तों! इस चीख को जगाकर पूछो कि अभी और कितने दिन इसी तरह गुमसुम रहकर सदियों का संताप सहना है।''

ओमप्रकाश वाल्मीकि का दूसरा काव्य संग्रह 'बस्स बहुत हो चुका' (वाणी प्रकाशन) से 1997 में आया। यह संग्रह दलित चेतना की स्वर है। भारतीय समाज में सामाजिक समानता के आवाज को ही पंक्ति देते हुए वह लिखते है कि ''झाड़ू थामे हाथों की सरसराहट साफ सुनाई पड़ती है भीड़ के बीच बियाबान जंगल में सनसनाती हवा की तरह गहरी पथरीली नदी में असंख्य मूक पीड़ाएँ कसमसा रही है मुखर होने के लिए रोष से भरी हुई।''

दलित साहित्य में चेतना आत्मसम्मान के करीब है। यही कारण है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित जीवन के संघर्ष, व्यथा, छटपटाहट, सामाजिक सरोकार का जीवंत दस्तावेज अपनी कविता में व्यक्त करते है।

चर्चित आत्मकथा जूठन (राधाकृष्ण प्रकाशन) भी 1997 में आया। दलित साहित्य को पहचान आत्मकथा से ही मिली है। जूठन आत्मकथा दलित जीवन के यथार्थ और मार्मिकता को ही केंद्र में रखता है। विरोधी परस्थितियों में जिजीविषा का अदम्य चाहत ही जूठन आत्मकथा का सार है। अतः स्वयं भूमिका में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते है कि '....एक लम्बी जद्दोजहद के बाद, मैंने सिलसिलेवार लिखना शुरू किया। तमाम कष्टों, यातनाओं, उपेक्षाओं, प्रताड़नाओं को एक बार फिर जीना पड़ा।' जूठन भारतीय समाज में बनी अमानवीय प्रथाओं में से एक है। जो मनुष्यता के अधिकार के लिए जीवन संघर्ष को हमारे समक्ष रखती है।

तीसरा काव्य संग्रह अब और नहीं...2009, कविता संग्रह दलित जीवन के आवाज को मुखर करता है। वह नजर से नजर मिलाकर अपने जीवन में हुए भेदभाव का जबाब चाहती है। यथा छद्मवेशी शब्दों का प्रताप जारी है सुन चुके अर्थहीन तर्क भी बहुत दिन जी चुके हताशा और नैराश्य के बीच/कलाबाजी और चतुराई भरे शब्दों का खेल हो चुका अब और नहीं। इस संदर्भ में बजरंग बिहारी तिवारी लिखते है कि 'यहां ओमप्रकाश वाल्मीकि की रियायत मांगने वाली रिरियाती भाषा कभी नहीं दिखी अधिकार चेतना उनके सम्पूर्ण लेखन और सृजन के बुनियाद में है।'

दलित साहित्य का लेखन संघर्ष का लेखन है। लेकिन कुछ तथाकथित लेखकों ने जब उस पर काल्पनिक होनेका आरोप लगाया तो ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने साहित्य और आलोचकीय विद्वता से उस पर लिखा भी। इसी का प्रतिफल है चतुर्थ काव्य संग्रह 'शब्द झूठ नहीं बोलते' जो 2012 में आई। 'मेरा विश्वास है तुम्हारी तमाम कोशिशों के बाद भी शब्द जिन्दा रहेंगे समय की सीढ़ियों पर अपने पाँव के निशान गोदने के लिए बदल देने के लिए हवाओं का रुख...... क्योंकि, शब्द कभी झूठ नहीं बोलते!'

चर्चित कहानी संग्रह 'सलाम ओमप्रकाश वाल्मीकि का पहला कहानी संग्रह हैं।' जो वर्ष 2000 में आई। सलाम कहानी भारतीय समाज में समानता के आंदोलन का प्रतीक है। ओमप्रकाश वाल्मीकि सामाजिक समानता में महत्वपूर्ण कड़ी मैत्री संबंध को मानते है। सचमुच दोस्ती ही वह कड़ी है जो असमानता की खाई को पाट सकती है। क्योंकि किसी भी देश के विकास में मैत्री ही प्रमुख कड़ी है।

'घुसपैठिये' कहानी संग्रह की मुख्यत: शैक्षणिक संस्थानों में दलित छात्रों की स्थिति को बयां करती है। दलित समाज की सबसे बड़ी सच्चाई है कि उन्हें वर्षों से शिक्षा का माध्यम नहीं मिला। अगर वह शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़े भी तो भिन्न तरह की मानसिकता का शिकार होना पड़ा।

छतरी 2013 में भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन से आया। छतरी कहानी समाज में सम्प्रदायिक सद्‌भाव को कायम करने की बात करती है। भारतीय भंगी समाज की ऐतिहासिक, संस्कृतिक, सामाजिक पृष्ठभूमि पर 'सफाई देवता' पुस्तक 2008 में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लिखा।

वैसे दलित आलोचना का आधार बिंदु हिंदी साहित्य को समृद्ध करना है, लेकिन हिंदी आलोचना के शास्त्रीयवाद से वह परहेज नहीं करते। उन्हें हिंदी आलोचना में आये शास्त्रीयवाद से आपत्ति है। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी आलोचना में स्पष्ट कहते हैं कि दलित साहित्य प्रेम का साहित्य है, और प्रेम विश्वास से ही अर्जित किया जाता है। उनका ऐसे कहने का मतलब ही है जिन आलोचकों ने दलित साहित्य पर आरोप लगाया कि दलित साहित्य घृणा और जातिवाद का पक्षधर है उसे वह सिरे से खारिज करते हैं। इसका सबसे सफल उदाहरण उनकी कहानी 'सलाम' है। यह कहानी भले ही कथासाहित्य का भाग हो लेकिन आलोचना के पाठ को भी नए संदर्भ में पाठक के समक्ष रखती है।

'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' और 'दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवम यथार्थ' ओमप्रकाश वाल्मीकि के प्रमुख आलोचना पुस्तक है। यह आलोचना पुस्तक दलित आलोचना के आधार बिंब है। अत:वे अपनी आलोचना पुस्तक के माध्यम से हिंदी साहित्य में दलित साहित्य के आलोचना को जोड़ने का काम ही करते है। अपनी आलोचनात्मक पुस्तक में वे दलित साहित्य की परिभाषा को परिपक्व करते हुए वह लिखते है कि 'दलित साहित्य जन साहित्य है, यानी मास लिटरेचर (mass literature) सिर्फ इतना ही नही, लिटरेचर आफ एक्शन (literature of action) भी है जो मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामंती मानसिकता के विरुद्ध आक्रोशजनित संघर्ष है। इसी संघर्ष और विद्रोह से उपजा है दलित साहित्य।'

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य को जन साहित्य मानते है। दलित साहित्य में दलित जीवन और उसके संघर्ष का दर्द प्रमुख है। अत: दलित साहित्य में दलित जातियों की पीड़ा का यथार्थ ही चेतना के रूप अपनी आवाज को प्रखर करता है। यह आवाज मनुष्यता के हक की आवाज है, मनुष्य को मनुष्य समझने की आवाज है, दलितों के एकजुट होने की आवाज है, दलितों के संवैधानिक अधिकार की आवाज है जिसकी रूप रेखा पूरी तरह संविधान प्रदत है। पुन: ओमप्रकाश वाल्मीकि में शब्दों में कहें तो ''दलित साहित्य नकार का साहित्य है जो संघर्षों से उपजा है तथा जिसमे समता, स्वतंत्रता और बंधुता का भाव है, और वर्ण व्यवस्था से उपजे जातिवाद का विरोध है।'' ओमप्रकाश वाल्मीकि जितनी ख्याति कथा साहित्य और कवि के माध्यम से मिली आलोचना के क्षेत्र में वह ख्याति उन्हें नही मिल पायी। लेकिन उनकी आलोचना दृष्टि समाज शास्त्रीय पद्धति के नजदीक है। उनके आलोचना दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र को गढ़ते है जो हवाई किला न होकर भारतीय सामाजिक यथार्थ को बयां करतें हैं।

वैसे दलित आलोचना का आधार बिंदु हिंदी साहित्य को समृद्ध करना है, लेकिन हिंदी आलोचना के शास्त्रीयवाद से वह परहेज नहीं करते। उन्हें हिंदी आलोचना में आये शास्त्रीयवाद से आपत्ति है। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी आलोचना में स्पष्ट कहते हैं कि दलित साहित्य प्रेम का साहित्य है, और प्रेम विश्वास से ही अर्जित किया जाता है। उनका ऐसा कहने का मतलब ही है जिन आलोचकों ने दलित साहित्य पर आरोप लगाया कि दलित साहित्य घृणा और जातिवाद का पक्षधर है उसे वह सिरे से खारिज करते हैं। इसका सबसे सफल उदाहरण उनकी कहानी 'सलाम' है। यह कहानी भले ही कथासाहित्य का भाग हो लेकिन आलोचना के पाठ को भी नए संदर्भ में पाठक के समक्ष रखती है। सूत्रण असमानता से सिर्फ दलित जातियों को ही दंश नहीं झेलना पड़ता बल्कि पूरे भारतीय समाज पर भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इसका प्रभाव पड़ा है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि उन तथाकथित आलोचकों को भी दिशा निर्देश देते है जो दलित कहानियों के टेक्स्ट को न पढ़ कर पहले से ही मनोग्रंथि किसी रचना और रचनाकार के लिए पाले रहते है। उनका मानना है कि जो आलोचक प्रेमचंद को दलित साहित्य के समक्ष खड़ा करते है वह कहाँ तक सही हैं? सीधी सी बात है दलित साहित्य का आगमन 90 का दशक है। और दलित रचनाकारों को खारिज का करने के लिए प्रेमचंद को खड़ा करना कहाँ तक सही है? इस मानसिकता के खिलाफ ओमप्रकाश वाल्मीकि की आलोचना है। तभी तो वह अपने आलोचना में प्रेमचंद के संदर्भ में कहते है कि 'प्रेमचंद को पढ़ कर मैंने भी कहानियां लेखन किया है। लेकिन दलित कहानियों को पढ़ने के बाद प्रेमचंद को पढ़िए ।'

ओमप्रकाश वाल्मीकि स्पष्टवादी आलोचक है यही कारण है कि वह साहस के साथ दलित आलोचना का आधार बाबा साहेब अम्बेडकर के समानता के दर्शन से जोड़ते है। उन्हें हिंदी आलोचना में गुरूवाद की परंपरा से परहेज है। तभी तो जो तथाकथित आलोचक दलित साहित्य पर ज्ञान बाँटते आये हैं उसपर असहमति व्यक्त करते हुए कहते हैं कि 'गुरु बनना बंद कीजिए वर्षों जिस प्रेम की साहित्य की अवधारणा बनी है वहाँ दलितों का स्थान कहाँ है।'

ओमप्रकाश वाल्मीकि का आलोचकीय विवेक वैज्ञानिकता का पक्षधर है। यही कारण है कि 'वह पाठक और रचना के संदर्भ में कहते है कि किसी भी रचना को पढ़ने के लिए पाठक की एक संस्कारगत मनोदशा भी काम करती है। यह मनोदशा उसके जीवन के अनुभव से ही आया है।' तभी तो बहुत से ऐसे शिक्षक है जो दलित साहित्य की आत्मकथा विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम में होने के बावजूद नाकभौं सिकुड़ा लेते है। उनका मानना होता है कि यह पहले कभी हुआ होगा। जबकि सच्चाई यह है असल भारत की तस्बीर दलित साहित्य भी है जिसे नकारा नहीं जा सकता है। मसलन नकारने के बावजूद दलित साहित्य का बढ़ता जाना ही दलित साहित्य की यथार्थ भूमि है।

साहित्य में भाषा महत्वपूर्ण है। दलित साहित्य में भाषा के संदर्भ पर भी आलोचकों ने टिप्पणी की है उन आलोचकों का मानना है कि दलित साहित्य में जो भाषा है वह गन्दी और अश्लील है। जिस पर ओमप्रकाश बाल्मीकि लिखते है कि "उन्हें लगता है साहित्य का पाठ पवित्र होना चाहिये। भले ही उसमे बनावटी भाषा, जो अभिजात्य संस्कारों से रची बसी हो, का प्रयोग करना पड़े। यह धारणा उचित नही है क्योंकि दलित साहित्य कल्पना में नहीं जीता। वह जीवन के कटु यथार्थ में जीता है।"

ओमप्रकाश वाल्मीकि के व्यक्तित्व का ठहराव सिर्फ रचनात्मक ही नहीं रहा वह प्रज्ञा साहित्य 1995 के अतिथि सम्पादक, तीसरा पक्ष पत्रिका के संपादकीय सलाहकार भी रहे। उन्होंने कांचा एलिया के पुस्तक का हिंदी अनुवाद भी किया।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के लेखन और दलित चितन को ध्यान में रखकर डॉक्टर अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार 1993, परिवेश सम्मान 1995, जयश्री सम्मान 1996, कथाक्रम सम्मान 2001, न्यू इंडिया बुक प्राइज 2004, मार्च 2012 आउटलुक पत्रिका में दलित सर्वे के माध्यम से लोकप्रिय कथाकार के रूप में व्यापक स्तर पर उनको ख्याति मिली।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आलोचकीय सोच प्रखर है। प्रखर होने के कारण उनकी रचनात्मक ख्याति विवादों के घेरे में भी रही। उन पर गैर दलित साहित्यकारों ने आरोप लगाया तो दलित साहित्यकारों ने भी नहीं छोड़ा। इसमे कमोवेश कुछ सच्चाई भी हो सकती है इसमें कोई दो राय नहीं। सम्भवत: ओमप्रकाश वाल्मीकि होते तो जरूर इसपर जवाब आता। लेकिन इन सबके बावजूद ओमप्रकाश वाल्मीकि का लेखन और साहित्यिक नजरिया हिंदी साहित्य में मील का पत्थर बन चुका है जिससे होकर ही वर्तमान और आने वाले समय में सभी साहित्यकारों को गुजरना पड़ेगा।

डॉ. कार्तिक चौधरी, सहायक प्रध्यापक, महाराजा श्रीशचंद्र कॉलेज
मो. : 8240796679, ई–मेल : cartik.chowdhary@gmail.com

✧ ✧ ✧

आलेख

'यह बेवकूफ, बहरा और अंधा बनाने का एक खटमिठ्ठा फल है'

गोविन्द गुंजन

प्रकृति ने पुरूष और स्त्री को समान रूप से मनुष्य बनाया है और इस नाते मनुष्य की गरिमा, उसकी स्वतंत्रता और उसके अधिकार भी समान है। धर्म, संप्रदाय और इतिहास की हर उस परंपरा का वह विरोध करती नजर आती है, जो स्त्री को पुरूष की तुलना में कमतर मनुष्य समझने की भूल करती है। वह अपनी मुठभेड़ के लिए अपनी लेखनी को हथियार बनाती हैं एक डॉक्टर होने के नाते वह हमारी परंपरा के उस ब्रेन ट्यूमर का आपरेशन करना चाहती हैं, जो हमारी चेतना में कैंसर की तरह सदियों से अन्चीन्हा पसरता रहा है और उसे छेड़ते ही हमारा समाज भड़क उठता है।

किसी का हृदय टटोलना हो तो उसे प्रेम के सबसे मजबूत पलों में कमजोर होते समय पकड़िए। किसी कवि का हृदय टटोलना हो तो उसकी कविताओं में उसे तलाश करना चाहिए। कवि ही क्या, हर कलाकार का हृदय उसकी कला के पर्दों या रंगों में दबा छिपा धड़कता हुआ मिलेगा। यदि वहां धोखा है, ढोंग है, आत्मवंचना है, तो वह भी वहाँ छिपा नहीं रह सकता और यदि प्रेम की तपन है, सच्चाई की रोशनी है, निर्दोष नग्नता है, तो वह भी निरभ्र आकाश की तरह उसकी कला की खिड़की से साफ-साफ नजर आएगा।

भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की बात माने तो आज भी हमारे देश की चालीस प्रतिशत महिलाएं घरेलु हिंसा और मारपीट की शिकार हैं। यह घोषित रूप से सरकारी आकड़े है, वास्तविकता इससे ज्यादा ही होगी, यह भारत जैसे राष्ट्र की स्थिति है तो मुस्लिम राष्ट्रों की हालत का अंदाजा लगाया जा सकता है, क्योंकि मुस्लिम महिलाएँ आज भी दूसरों के मुकाबले कुछ ज्यादा ही दमन की शिकार हैं। स्त्री पुरूष की समानता का दम भरने वाले अमरीका और यूरोप की सच्चाईयाँ भी कुछ कम भयावह नहीं हैं।

प्रेम आज भी स्त्री के लिए एक आकाश कुसुम की तरह है। वह सशर्त है। वह आज भी उसे दो मुठ्ठी धान की तरह दान में ही उपलब्ध है, उसे अधिकार की तरह पाना आज भी उसके लिए स्वप्न हैं। फोर्ब्स पत्रिका के सर्वे में हर साल दुनिया की शक्तिशाली दस

महिलाओं की घोषित उपस्थिति के बावजूद आज भी आम स्त्री की दशा में बहुत बदलाव नहीं आया है। तसलीमा नसरीन की कविताएं इस भयानक सच्चाई को हमारी दुनिया के कानों में ढिंढोरे की तरह पीटती नजर आती है। यह उसकी ताकत है कि वह नारी समानता के दिखावटी नगाड़ों की आवाज में तूती की आवाज की तरह दबाई नहीं जा सकी, बल्कि अपनी सच्चाई की तेजस्विता से वह एक पाखण्डी समाज को तिलमिलाने में भी कामयाब हुई है।

प्रकृति ने पुरूष और स्त्री को समान रूप से मनुष्य बनाया है और इस नाते मनुष्य की गरिमा, उसकी स्वतंत्रता और उसके अधिकार भी समान है। धर्म, संप्रदाय और इतिहास की हर उस परंपरा का वह विरोध करती नजर आती है, जो स्त्री को पुरूष की तुलना में कमतर मनुष्य समझने की भूल करती है। वह अपनी मुठभेड़ के लिए अपनी लेखनी को हथियार बनाती हैं एक डॉक्टर होने के नाते वह हमारी परंपरा के उस ब्रेन ट्यूमर का आपरेशन करना चाहती हैं, जो हमारी चेतना में कैंसर की तरह सदियों से अन्चीन्हा पसरता रहा है और उसे छेड़ते ही हमारा समाज भड़क उठता है। इस सभ्यता ने अपने माथे के गूमड़ को अपना श्रृंगार समझ रखा है उसके भीतर व्याप्त बीमारी से वह हमें आगाह करती हैं, पर हम उसकी करूणा से भरे क्रोध को विद्रोह की संज्ञा देकर उस पर हमले करते हैं, उस पर कभी अश्लील होने का आरोप जड़ते हैं तो कभी उसके विरूद्ध फतवे जारी करके उसकी जिंदगी ही छीन लेना चाहते हैं, जो हमारी पराधीनता को सहर्ष स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। वह आजाद स्त्री हमारी जड़ परंपरा को नहीं मानती, वह हमारी गुलाम नहीं रहना चाहती, तो भला उसे हमारी धरती पर जिंदा रहने का अधिकार हम दे भी कैसे सकते हैं, आखिर हमारे वर्चस्व की लंका में वह बारूद का पलीता लगाने की कोशिश जो कर रही हैं। हमारे कटघरे से आजाद होने के लिए जोर आजमाइश करती हुई एक औरत को हम कटघरे में खड़ा करने के अलावा और कर भी क्या सकते हैं?

स्त्री और पुरूष में आखिर फर्क ही क्या है? एक 'बायोलाजिकल कविता' (सीधी सादी बात) में तस्लीमा का तर्क है -

''एक्स नामक एक क्रोमोजोम चलते चलते/एक और 'एक्स' नामक क्रोमोजोम के शरीर से भी सट सकता था/एक्स और वाई के बीच कोई बुनियादी फर्क नहीं है/जैसे 'ए' और 'बी' में नहीं है या 'आर' और 'एस' में/ ... एक्स-एक्स से जन्म ले रहा है मनुष्य/जन्म ले रहा है- एक्स वाई से भी/ कॉट- छॉट होने की कोई वजह नहीं, फिर भी एक ने/ अपने हिस्से से रख ली गद्दीदार कुर्सी/बिस्तर का मोटा गद्दा जायजाद का अस्सी फीसदी हिस्सा और मछली का माथा/और दूसरे के हिस्से रह गयी जूठन और कांटा, रह गयी सस्ती आलता की शीशी और खुशबूदार केश तेल .. एक्स के कंधे पर चढ़कर बैठा है 'वाई ' वह खुशी से पॉव हिला रहा है, सीटी बजा रहा है, बगलें बजा रहाहै/ 'एक्स' के कंधे पर घाव, एक्स की जाँघो में दर्द, कमर में चोट/आंखों के सामने यह असमानता देख रहे हैं सभी/फिर भी कोई कुछ नही बोलता/ हमारी जबान कटी है, होंठ सिले हैं, हमारे हाथ बंधे हैं, पैरों में जंजीरे हैं/ हम सब क्या कोई कभी कुछ नहीं बोलेगें?'

जहिर है प्रकृति में 'एक्स' और 'वाई' दोनों क्रोमोजोम से जीवन का अवतरण होता है, दो भिन्न देह रचना, पर जीवन के तल पर कोई भेद नहीं, दोनों एक ही मनुष्य के दो रूप, एक ही

सिक्के के दो पहलू, पर एक हिस्सा खुद को हेड़ कहकर दूसरे को हिकारत से 'टेल' कहने की जुर्रत करे, दूसरे को कमतर समझे तो क्या हो? सिक्के का एक भी पहलू बिगड़ जाए तो क्या पूरा सिक्का 'खोटा' नहीं हो जाएगा? मनुष्यता के सिक्के का यदि एक पहलू पुरूष है, दूसरी तरफ स्त्री है, एक भी पहलू कमतर होते ही सिक्का खोटा हो जाएगा, इसलिए तसलीमा की कविताएं केवल स्त्री मुक्ति का सपना भर नहीं देखतीं, वह पूरी मुनष्यता की गरिमा के लिए संघर्ष करती है। यह समग्रता, यह 'टोटेलिटि' ही हमें उस खंडित मानसिकता से मुक्त कर सकती है जिसके बिना हम सच्ची मानवीयता के करूणाजनित प्रेम की परछाई भी नहीं छू सकते।

इस अफसोस को तसलीमा की एक कविता 'पिता को पत्र' में महसूस किया जा सकता है–

'क्या सारा देश डूबा रहेगा/इसी तरह भूतिया अँधेरे में/ लोग घुसे रहेंगे घरों के अंदर/गूँगे, बहरे, अंधे बनकर/बिना किसी सपने के जिंदा रहेंगे तमाम लम्बी उम्र/खाने और तस्बीह फेरने और लोभ मोह माया में फँसे?'

तसलीमाके मन का संकल्प उसे इस भूतिया अँधेरे में जो रोशनी देता है, वह उसे किसी गुलाब की तरह खिला भी देता है –

'धीरे–धीरे जब मैं बड़ी हो रही थी/मेर खून में खौल रहा था/ मनुष्य बनने के संकल्प वाला तुम्हारा वहीं मंत्र/कभी तो नींद से जग कर तुम देखोगे कि जिस तरह गुलाब खिल उठता है/ उसी तरह अँधेरे को चीरती हुई/खिल रही हूँ मैं/और दोनों मुठ्ठियों से भरपूर रोशनी उलीच रही हूँ/तुम्हारे लिए और अपने बारह करोड़ लोगों के लिए ' (पिता को पत्र)

धर्म के नाम पर मनुष्य की स्वाधीनता और उसके जीवन निहित स्वार्थों के लिए हनन करने वाले लोगों के प्रति वह आगाह करते हुए कहती हैं।

'इसी धर्मद्रोही' लड़की को फाँसी पर लटका देने की मांग का पोस्टर लगा है शहरों की दीवारों पर .../ क्या तुम्हें उस तोड़ फोड़ के बीच खड़े होकर/ऐसा नहीं लगा कि धर्म बेचकर खाते है ये लोग/इसका धर्म तो एक सीढ़ी है/ जो इन्हें गद्दी तक पहुँचाती है/ क्या तुम्हे नहीं लगा कि धर्म सिर्फ बेचने खाने के लिए बना है/ यह बेवकफू, बहरा और अंधा बनाने का एक खटमिट्ठा फल है/ अफीम है' (पिता को पत्र)

इस संसार में सबसे बड़ा दुख क्या है, इसका सबसे करूण जवाब तुलसीदास ने हमें पाँच सौ साल पहले दिया था – 'नहीं दरिद्र सम दुःख जग माही .../ परंतु पाँच सौ साल बाद इस दरिद्रता की इस कंगाली की पुनः पड़ताल करती हुई तसलीमा एक बहुत नुकीला और चुभता हुआ सवाल करती हैं–

'भला किस बात की कंगाली है हम लोगों को/कोई कहता है भात की, मछली की/लम्बी साँस छोड़ते हुए कोई कोई कहता है कपड़े की/कोई पाँच दस मिनट तक सोचते हुए कहता है – किल्लत है रहने की जगह की सबसे ज्यादा ... क्या खाने पहनने से ही मिट जाती है तंगी ..?/ सूअर इल्लत खाते हैं इल्लत खा खा कर ही इनका जीवन बीतेगा/इसलिए वह सिर्फ वही खाता है /और

कुछ भी स्वीकार नहीं उसे जीवन में/मनुष्य क्या सिर्फ चपड़ चपड़ खाएगा? पहनेगा? सोएगा? बस, इतना भर? और कोई कर्तव्य नहीं है उसका मनुष्य के प्रति? सबसे पहले करनी होगी दूर/सोच की गरीबी/वरना जानवरों से ज्यादा कीमती नहीं होता मनुष्य का जीवन ' (गरीब)

अपनी जमीन, अपने लोग और अपने देश से निर्वासन, रिश्तों की टूटन और प्यार के छलावे से उपभोग की वस्तु बनाए जाने की तल्ख तकलीफ में कभी कभी तसलीमा अपने ढाका शहर की यादों में खो जाती है। ढाका शहर अब कितना बदल गया है? ककराईल मस्जिद की याद, कभी इस जमीन पर रफीक, सलाम, जब्बार, शेख मुजीब और नूर हसन जैसी हस्तियाँ नंगे पाँव चली थी, अब उसे अयूब और याहया खाँ के नाती पोते अपनी जीपों से रौंदते गुजरते हैं। तड़प कर तसलीमा पूछती हैं–

'पता नहीं कौन हैं वे लोग जिन्होंने ढाका को बेवकूफी के तिरपाल से ढाँक दिया है/ढाका की आँखों में वे बांध रहे हैं पट्टी/क्या अंत तक ढाका अपनी शहीद मीनार, अपराजेय बांग्ला और खुद अपने हाथों हासिल की गयी आजादी की रक्षा कर पाएगा? क्या ढाका अचानक बुलडोजरों से ढहाई गई मीलों लम्बी बस्तियों के लोगों को/ दो वक्त का खाना दे पाएगा? (धूसर शहर)

तसलीमा के भीतर एक कवि ह्दय निरंतर धड़कता है, जो उसके स्त्रीत्व की करूणा को अक्सर विगलित कर देता है। आखिर किस अहंकार ने मनुष्य को इतना पथरीला बना दिया है? आखिर इस संसार में मनुष्य की हस्ती कितने दिनों तक टिकती है? विषाद और करूणा के ये क्षण किसी आध्यात्मिक अनुभूति से नहीं, वैज्ञानिक सोच से छलकते हैं। आदमी की उम्र ज्यादा से ज्यादा साठ सत्तर अस्सी नब्बे सौ साल से ज्यादा नहीं होती, परंतु एक कछुआ डेढ़ सौ साल तक जीता है, गिद्ध चार सौ साल, तो फिर आदमी कछुआ और गिद्ध जैसे तुच्छ जीवों के मुकाबले कितना अल्पजीवी है? तसलीमा पूछती है –

'क्यों इस दो दिन की दुनिया में/एक दूसरे के साथ हाथ मिलाकर/और ह्दय जोड़कर बात नहीं करते लोग? गले नहीं मिलते आपस में? क्यों दीवारें बांटती है खेतों को/क्यों आलीशान इमारतो के ठीक सामने/ रास्तों के कुत्ते जैसे बेघर लोग पड़े रहते है / इतना तुच्छ, इतना सस्ता है जिंदा रहना/ लेकिन तुम गाल फुलाकर/पुलक भाव से / छलक पड़ते हो, दमक उठते हो/ भला किस बात का है तुम्हे इतना अहंकार?' (इतना अहंकार भला क्यों?)

तसलीमा नसरीन की कविताओं में कई बार घनीभूत करूणा के दर्शन होते हैं, तो कभी 'पशुवत पुरूषत्व' के प्रति हिकारत भी। उसके लिए धिक्कार भी है, ललकार भी। वह प्रेम करना जानती है पर उसका प्रेम अंधा नहीं है, वह करूणा से भरा है, पर पत्थरों पर बरसने वाले बादल की तरह वह जड़ता से भरी नहीं है :-

''पास जितना आ सकी हूँ यह भी समझ लो/दूर उससे भी ज्यादा जा सकती हूँ मैं/ जितना प्यार किया है लपक कर/उससे भी ज्यादा निगल सकती हूँ हिकारत ... ।' औरत का जन्म और प्रतिभा का पाप लिये/हर रोज नियत चट्टान हटाकर चलती हूँ/ अथाह निषेधों में डूबती उतराती रहती हूँ/मेरा कौन है सिवा मुझ अकेले के ?''

'मान अभिमान' शीर्षक की इस छोटी कविता में जब तसलीमा कहती है कि जितना प्यार किया है लपककर, उसमें भी ज्यादा निगल सकती हूँ हिकारत ....तो मुझे ये पंक्ति बहुत चौंकाती है। वह किसी भी परिस्थिति में हिकारत को किसी पर उगलने वाली स्त्री नहीं है, मिली हुई 'हिकारत को वह निगल जाती है। निगल जाने की यह शक्ति उसे 'मीरा के विषपान' कर लेने के बाद भी बचे रहने की ताकत देती है। वह जानती है कि पुरूषों की दुनिया में औरत का जन्म लेकर प्रतिभा का पाप कितना दु:खदायी होता है। अथाह निषेधों में डूबती उतराती प्रतिभा को पाप की तरह डुबो देने को उद्यत समाज में स्त्री आखिर कितनी अकेली होकर रह जाती है, इसे उसके सिवा और कौन जान सकता है ...'घाइल की गति घाइल जाने, कि जिन घाइल होय।'

'औरत का जन्म और प्रतिभा का पाप' लिये जन्म लेने का अभिशाप उसे इसलिए भी अकेला करता है, क्योंकि उसे कहीं भी वह प्रेम नहीं मिलता जिसकी वह अधिकारिणी है।

'प्यार के जल में तैरने की बात पर/मैंने खुद कहा था आगे बढ़कर/तुमने कहा – 'सर्दी लगेगी, भीगने से क्या लाभ। इससे अच्छा है, दो मुझे अपनी कोमल देह का स्वाद/बरसों तक स्वाद और गंध को बाँटकर /धोखा खाती रही / प्यार के जल में तैरने का स्वाद गया डूब/पतवार थी नाव भी, और जल/पाल में हवा भी थी/लेकिन मैं अभागन किनारे पर बैठी जीवन ठेलती रही.... '' (जल में तैरना)

तसलीमा वह 'बैरन नहीं जो डूबन डरी' और किनारे बैठी रही। उसमें गहरे जल में उतरने का साहस है। प्रेम के जल में पाताल तक डूबने की शक्ति भी, परंतु नियति है स्त्री देह की गंध और स्वाद को बाँटते रहने की ... बदले में कुछ पाना नहीं ... । यह प्रेम विभीषिका है।

पुरूष स्त्री से पाना तो सब कुछ चाहता है पर बदले में देना कुछ नहीं चाहता। तसलीमा इसे समझकर ही शर्त रखती है –

'सिर्फ हृदय को लेकर बैठे रहना/यह मुझसे नहीं चलेगा/मैं तुम्हे निचोड़कर सारांश चाहती हूँ/तमाम स्वाद लेना चाहती हूँ/ चुका दे, जो कुछ जमा है/ देह की देनदारी दे जा' (शर्त)।

'इस कविता में सारांश' शब्द का जितना सुंदर प्रयोग हुआ है वह अभिभूत करने वाला है। आमतौर पर 'सारांश' को संक्षिप्त का पर्याय समझकर लोग वापरते रहते हैं, पर तसलीमा सार अंश वाला सारांश चाहती है। 'थोथा देई उड़ाय' के बाद बचा 'प्रेम का सारांश'। वह आत्मा या मन के 'इथर' में हाथ पैर नहीं मारती। ठोस देह की देनदारी चुकाने के साहस को जगाना चाहती है। वह साफ कहती है कि 'सिर्फ हृदय को लेकर बैठे रहना मुझसे नहीं होगा' क्योंकि हृदय के नाम पर 'भावनात्मक ब्लेकमेलिंग' का जो खेल प्यार के नाम पर चलता है उसके छलावे को वह अच्छी तरह से पहचानती हैं। वह जानती है कि –

पुरूष के लिए मनमर्जी इस्तेमाल की चीज है औरत/इच्छा को हाथ पाँव को, मन को रखो जंजीर में/ चाहो तो दे सकते हो तलाक/देना –कहना– तलाक/' (लड़की चाहिए?)

तसलीमा ने इस पुरूष वृत्ति पर एक कठोर टिप्पणी करती हुई कविता लिखी है 'घर संसार'। एक स्त्री को भोग चुकने के बाद दूसरी तरफ करवट फेरकर लेटे हुए पुरूष की आँख में तैरता हुआ एक सपना है, जिसे लक्ष्य करके वह कहती है –

'दूसरी किसी नीली आँखों वाली युवती के लिए/एक अदम्य प्यार लिए तुम्हारा स्वप्न/दूर कर मैदान पर सुनसान किसी निर्जन की तलाश करता फिरता है/ इस तरह खुद को फेंककर मैं भी/लगा सकती हूँ निर्वासन का चक्कर/क्योंकि मैं पूरम्पूर चाहती हूँ/भूख लगने पर सिर्फ दो मुठ्ठी नहीं/अगर एक थाली भात न खाऊँ तो मेरा पेट नहीं भरता।'

तसलीमा की इन कविताओं में उसके हृदय के धैर्य और उसके हाहाकार दोनों को शिद्दत के साथ महसूस किया जा सकता है। तसलीमा वह स्त्री है, जो अपनी शक्ति को जानती है, और जो अपनी शक्ति को नहीं जानती, उसकी करूण दशा की कथा को कौन समझ सकता है? महादेवी वर्मा ने अपने एक निबंध 'नारीत्व का अभिशाप' में लिखा था – 'नारी ने अपनी शक्ति को कभी जाना और कभी नहीं जाना। वर्तमान युग तो उसके न जानने की ही करूण कहानी है।' तसलीमा का पाप इतना भर है कि वह अपनी शक्ति को जानती है, इसलिए उसमें एक पूरे मनुष्य की तरह जीने की अदम्य कामना है। उसे स्त्री और पुरूष के बजाए 'मनुष्य' शब्द बहुत उद्वेलित करता है।

'कंचनजंघा के सूर्योदय से भी सुंदर लगते है लोग/कश्मीर के आसमानों को चूमते हुए शिखरों से भी सुंदर हैं लोग/ मैनहट्टन की ऊँची-ऊँची इमारतों से भी ऊँचे हैं इंसान/ नियाग्रा के जलप्रपात से भी अच्छे लगते हैं मनुष्य, जब उनके मन में प्रेम की धारा बहती है/मनुष्य- यह शब्द मुझे बहुत उद्वेलित करता है ..।

तसलीमा के भीतर का यह विश्वास और उसकी यह आस्था उसके हृदय की निर्मल प्रेमकांक्षिणी नारी के दर्शन कराती है। रिश्ते –नातों से कटी, बार बार छली गयी और निर्वासित होने के लिए अभिशप्त सात साल की उम्र में अपने मामा और चाचा के वहशी बलात्कार की शिकार वह लड़की यदि मनुष्य के प्रति अपनी आस्था नहीं खोती, कविता में कला प्रदर्शन की कलाबाजियाँ नहीं, सच्चाई का दिगदर्शन कराती है, तो उसकी विराट मानवीयता और उसके विश्वास को अपने फतवों और हमलों का शिकार बनाने वाले लोग कितने जाहिल अंधेरों में जी रहे होंगे, इसका अंदाज लगाना मुश्किल नहीं है। विडम्बना यह है कि तसलीमा उन अंधेरी खाई में कीड़े-मकोड़ों की तरह रेंगने वालों को भी अपनी गुलाब जैसी महकती और खिली हुई रोशनी बाँटने के लिए दर दर भटकती फिर रही है और उन्हें इसका अहसास तक नहीं है।

गोविन्द गुंजन, उत्तरायण 18, सौमित्र नगर, सुभाष स्कूल के पीछे, खंडवा (म.प्र.) 450001
मो. : 9425342665, ई–मेल : govindgunjan128@gmail.com

अज्ञेय के उपन्यासों का परिचयात्मक विश्लेषण

रज्जन प्रसाद शुक्ल

कहा जाता है कि यथार्थवादी साहित्य में किसी भी पात्र का जन्म अकस्मात् नहीं होता, या यों कहें वो मात्र कोरी कल्पना नहीं होता, पात्र सदैव रचनाकार के इर्द-गिर्द रहता है कभी-कभी तो स्वतः रचनाकार अपने-आप को नायक के रूप में पाता है। कार्य-कारण संबंधों के आधार पर ही किसी यथार्थवादी रचना में घटनाओं और पात्रों का जन्म और विकास होता है, 'शेखर' में व्यक्ति स्वातंत्र्य की अनुभूति और अभिव्यक्ति की जो छटपटाहट सम्पूर्ण उपन्यास में दिखाई पड़ती है वह दरअसल हिन्दी कथा-साहित्य में प्रथमतः प्रेमचंद की कालजयी महागाथा गोदान (1936) के पात्र 'गोबर' के चरित्र में परिलक्षित होती है।

हिन्दी कथा साहित्य परम्परा में प्रेमचन्द के पश्चात साहित्यिक परिदृश्य पर अज्ञेय वर्षों तक विराजमान रहे हैं। अज्ञेय का विशाल साहित्यिक जीवन करीब पाँच दशकों तक विस्तृत रहा, जिसमें उन्होने तीन सार्वकालिक उपन्यासों की रचना की- 'शेखर एक जीवनी' (दो भाग - 1941, 1944), 'नदी के द्वीप' (1951), और 'अपने-अपने अजनबी' (1961)। 'शेखर एक जीवनी' का तीसरा भाग भी प्रस्तावित था जो दुर्भाग्य से किसी कारणवश अप्रकाशित रहा, जिस पर अज्ञेय ने स्वयं गहरा अफसोस व्यक्त किया है। 'शेखर एक जीवनी' (भाग-1) के प्रकाशन के समय भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन अपने निर्णायक अवस्था पर पहुँच चुका था। स्वयं अज्ञेय ने हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी के प्रमुख सक्रिय सदस्य के रूप में इस आंदोलन में हिस्सा लिया था, गिरफ्तार हुए और जेल भी गए। चार वर्षो के अपने बंदी जीवन में अज्ञेय ने मानवीय स्वतंत्रता के महत्व को बहुत करीब से जाना और महसूस किया, जो आगे चलकर उनके साहित्य में परिलक्षित भी होता है।

शेखर : एक जीवनी :- एक कालजयी उपन्यास

'शेखर : एक जीवनी' अज्ञेय की कालजयी रचना है, जिसमें अज्ञेय स्वयं को नायक शेखर के रूप में प्रस्तुत करते है। 'शेखर : एक जीवनी' की भूमिका में अज्ञेय लिखते है

– 'वेदना में एक शक्ति है जो दृष्टि देती है। जो यातना मेन है, वह दृष्टा हो सकता है ।..... शेखर : एक जीवनी घनीभूत वेदना की केवल एक रात में देखे हुए विजन को शब्दबद्ध करने का प्रयत्न है।' (भूमिका, शेखर : एक जीवनी)। इस उपन्यास के संदर्भ में अज्ञेय स्पष्टीकरण देते हुए कहते हैं कि 'शेखर के जीवन की कुछ घटनाएँ और स्थान उनके जीवन से मिलते-जुलते हैं, लेकिन जैसे-जैसे शेखर का विकास होता गया है वैसे-वैसे शेखर का व्यक्तित्व और रचनेवाला रचनाकार एक-दूसरे से अलग होते गए है।' जिस घनीभूत वेदना को अज्ञेय एक रात में प्राप्त करते है, उसे वो 'विजन, मानते है। जिस वेदना अनुभूति की बात अज्ञेय अपने इस उपन्यास में उकेरते है, उसका एक अंश उनकी कविता में मिलता है।

''दुःख सबको माँजता है
और..... चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना चाहता है
जिनको माँजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त'' 1 (सदानीरा पृ. 238)

शेखर जन्मजात विद्रोही है, वो परिवार, समाजिक व्यवस्था, एवं तथाकथित मर्यादा सबके प्रति विद्रोह करता है। वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अनुरोधी है और व्यक्ति की स्वतंत्रता को विकास के लिए बेहद जरूरी मानता है। शेखर का विद्रोह किसी वस्तु या स्थिति के प्रति नहीं, बल्कि सम्पूर्ण वस्तुओं और स्थितियों, सृष्टि के प्रति है। क्योंकि वह अधूरी या अपूर्ण है। समाज के प्रति ही क्यों? प्रत्युत समस्त रीतियों के प्रति, जीवन मात्र के प्रति विद्रोह क्रांतिकारी की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। विद्रोह के पश्चात कुछ नहीं, क्योंकि निर्माण भी विद्रोह ही है, विद्रोह में ही नियम है।

कहा जाता है कि यथार्थवादी साहित्य में किसी भी पात्र का जन्म अकस्मात् नहीं होता, या यों कहें वो मात्र कोरी कल्पना नहीं होता, पात्र सदैव रचनाकर के इर्द-गिर्द रहता है कभी-कभी तो स्वत: रचनाकर अपने-आप को नायक के रूप में पाता है। कार्य-कारण संबंधों के आधार पर ही किसी यथार्थवादी रचना में घटनाओं और पात्रों का जन्म और विकास होता है, 'शेखर' में व्यक्ति स्वातंत्र्य की अनुभूति और अभिव्यक्ति की जो छटपटाहट सम्पूर्ण उपन्यास में दिखाई पड़ती है वह दरअसल हिन्दी कथा-साहित्य में प्रथमत: प्रेमचंद की कालजयी महागाथा 'गोदान' (1936) के पात्र 'गोबर' के चरित्र में परिलक्षित होती है। 'गोबर' की संवेदना का ही स्वाभाविक विकास है, अज्ञेय का 'शेखर' जो अपने अंतर्मन की आवाज सुनता है और वही करता है जिसकी अनुमति उसका आंतरिक विवेक देता है। वह स्कूल नहीं जाना चाहता क्योंकि वह मानता है कि स्कूलों मे टाइप रायटर बनते हैं जबकि शेखर व्यक्ति बनना चाहता है, एक ऐसा व्यक्ति जो पूरी ईमानदारी से अपने जीवन के व्यक्तिगत सुख-दुःख से गुजरना चाहता है, वह अपने पिता की सलाह को नजरअंदाज कर अंग्रेजी की बजाय हिंदी में लेखन करना चाहता है क्योंकि अंग्रेजी से उसे मानसिक दासता की अनुभूति होती है।

'शेखर' एक निहायत ईमानदार व्यक्ति है, जो अपनी अनुभूतियों और जिज्ञासाओं के प्रति बेहद सजग और ईमानदार है, जीवन की नई-नई परिस्थितियों में उसके मन में अनेकों सवाल उठते हैं और वह अनुभव करता चलता है, सीखता चलता है। अज्ञेय ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से 'शेखर' के माध्यम से एक व्यक्ति के विकास की कहानी बुनी है, जो अपनी स्वभावगत अच्छाइयों और बुराइयों के साथ देशकाल की समस्याओं पर विचार करता है। अपनी शिक्षा-दीक्षा, लेखन और आजादी की लड़ाई में अपनी भूमिका के क्रम में कई लोगों के संपर्क में आता है। लेकिन उसके जीवन में सबसे गहरा और स्थायी प्रभाव उपन्यास की प्रमुख स्त्री-पात्र शशि का पड़ता है, जो रिश्ते में उसकी बहन लगती है, लेकिन दोनों के रिश्ते भाई-बहन के संबंधों के बने-बनाए सामाजिक ढांचे से कहीं आगे निकलकर मानवीय संबंधों को एक नवीन परिभाषा देते हैं, जो मूलतः तथाकथित सभ्य समाज को स्वीकार्य नहीं हैं।

हिंदी साहित्य के लिए शशि-शेखर संबंध तत्कालीन भारतीय समाज में एक नई और आश्चर्यजनक बात थी। जिसे लेकर आलोचकों के मध्य उपन्यास के प्रकाशन के बाद से लेकर आज तक निरंतर बहस होती है, क्योंकि इस उपन्यास के माध्यम से अज्ञेय समाज में ऐसे सम्बन्धों को स्थापित करने का दुस्साहस करते हैं, जो मूलतः समाज को स्वीकार्य नहीं है। शेखर एक जगह शशि से कहता है- 'कब से तुम्हें बहन कहता आया हूँ, लेकिन बहन जितनी पास होती है, उतनी पास तुम नहीं हो, और जितनी दूर होती है, उतनी दूर भी नहीं हो।' ये भारतीय उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंधों को लेकर एक नई तरह की अभिव्यक्ति थी। इसके पहले या इसके बाद इस प्रकार का वर्णन हिन्दी साहित्य में दिखलाई नहीं पड़ता है जिसे अज्ञेय ने पहली बार इतनी बेबाकी से लिखा है।

अज्ञेय मानव चेतना में निहित प्रेम और मृत्यु, प्रेम और विद्रोह, प्रेम और जीवन की तात्कालिक वेदना को खोलते हैं। शेखर का जो पहला मील का पत्थर है, वह है 'शशि' और अंतिम भी वही है। प्रेम की अद्‌भुत व्यंजना ही इस कहानी की नींव है। शेखर की ऊर्जा वस्तुतः प्रेम की ऊर्जा है- इससे असहमत नही हुआ जा सकता, और इससे भी नहीं कि शेखर यदि वृत्त है तो शशि उसका केंद्र। शेखर में विद्रोह का पौरुष और प्रणयकांक्षी नारीत्व है, जो उसमें धुंधलाता हुआ प्रतीत होता है। प्रत्येक क्रांतिकारी अर्धनारीश्वर होता है- विद्रोह और प्रेम जिसके दो शरीर हैं।

'शेखर' दरअसल एक व्यक्ति के बनने की कहानी है, जिसमें उसके अंतर्मन की विभिन्न परतों की कथा क्रम के जरिए मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करने की कोशिश अज्ञेय ने की है। इस उपन्यास के प्रकाशन के बाद कुछ आलोचकों ने कहा था कि ये अज्ञेय की ही अपनी कहानी है। लेकिन अज्ञेय ने इसका स्पष्टीकरण देते हुए कहा कि शेखर के जीवन की कुछ घटनाएँ और स्थान उनके जीवन से निश्चित तौर से मिलते-जुलते हैं, लेकिन यह एकमात्र संयोग है। अज्ञेय कई बार इस संदर्भ में स्पष्टीकरण देते हैं और कहते हैं कि - शेखर और शेखर को गढ़नेवाला दोनों भिन्न-भिन्न हैं।

नदी के द्वीप :- एक आदर्शवादी प्रणय

अज्ञेय का दूसरा उपन्यास है- 'नदी के द्वीप' (1951)। यह भी एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, जिसमें एक तरह से यौन संबंधों को केंद्र बनाकर जीवन की परिक्रमा की गई है। सबसे पहले यह एक प्रणय कथा है अत्यंत सुकुमार, संवेदनशील, विशिष्ट पर उदार। वेदना और प्रेम व्यक्तित्व को कैसे उन्मुक्त बनाते है। इस उपन्यास में सामाजिक आदर्श स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है- दर्द से मँजकर व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास, ऐसी स्वतन्त्रता की उद्‌भावना जो दूसरे को भी स्वतंत्र करती हो।

इस उपन्यास के द्वारा व्यक्ति की विकसित आत्मा को निरूपित करने की सफल कोशिश की है- वह व्यक्ति, जो विशाल विषमताओं वाले समाज का अंग होते हुए भी उसी समाज की तीव्रगामी धाराओं, भँवरों और तरंगों के बीच अपने भीतर एक द्वीप की तरह लगातार बनाता, बिगाड़ता और फिर बनाता रहता है। वेदना उसे माँजती है, पीड़ा उसे वयस्क बनाती है, और धीर-धीर दृष्टा भी।

इस उपन्यास के मुख्य पात्र हैं भुवन, रेखा, गौरा और चंद्रमाधव। भुवन विज्ञान का प्रोफेसर है, रेखा एक पढ़ी-लिखी परित्यक्ता स्त्री है, गौरा भुवन की छात्र है, जो भुवन से प्रेम करती है। उपन्यास में दो अन्य गौण पात्र भी हैं - हेमेंद्र और डॉक्टर रमेशचंद्र। हेमेंद्र, रेखा का पति है, जो केवल उसे शारीरिक रूप से पाना चाहता है और जब हासिल नहीं कर पाता तो उसका त्याग कर देता है। उसे सौंदर्य बोध, नैतिकता जैसे मूल्यों से कोई लेना-देना नहीं। डॉक्टर रमेशचंद्र से रेखा ने पुनर्विवाह किया और अब वह उसका पति है, जो एक सुलझा हुआ सभ्य इंसान है।

'शेखर : एक जीवनी' की तुलना में इस उपन्यास में घटनाएँ बहुत कम हैं क्योंकि उपन्यास के पात्र बाह्य रूप से बहुत कम जीते हैं। वे ज्यादातर आत्ममंथन या आत्मालाप कर रहे होते हैं। ये इतने संवेदनशील पात्र हैं कि बाहर की जिंदगी की हल्की सी छुअन भी इन्हें भीतर तक हिला कर रख देती है। अज्ञेय ने उपन्यास में पात्रों की इसी भीतरी जिंदगी को विभिन्न, प्रतीकों, बिम्बों और कविताओं के जरिए उभारने की सफल कोशिश की है।

उपन्यास में भुवन, रेखा, गौरा और चंद्रमाधव चारो के बेहद करीब है। ये चारो ही मध्यवर्गीय संवेदना से भरे, आधुनिकता बोध वाले बुद्धिजीवी पात्र हैं। लेकिन इन पात्रों की सबसे बड़ी समस्या ये है कि ये भीतर ही भीतर चाहे जितनी ही लंबी विचार सरणी बना लें, लेकिन उसे अभिव्यक्त नहीं कर पाते है। यहाँ तक कि एक-दूसरे के लिए अपनी भावनाएँ भी। इस उपन्यास में व्यक्ति नदी के द्वीप की तरह है, चारों तरफ नदी की धारा से घिरा लेकिन फिर भी अपने को सदैव अकेला पाता है और अपनी सत्ता में पूर्णत: स्वतंत्र।

उपन्यास के मुख्य पात्र रेखा और भुवन एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट हैं और प्रेम भी है। दोनों के बीच शारीरिक संबंध भी हैं लेकिन फिर भी रेखा भुवन को छोड़कर डॉक्टर रमेश चंद्र से

विवाह करती है। गौरा और भुवन के बीच भी एक-दूसरे के लिए आकर्षण है लेकिन वे उसे सही रूप में व्यक्त नहीं कर पाते।

निष्कर्षत: यह उपन्यास अलग-अलग पात्रों के जीवन, उनके सुख-दुख, उनके आंतरिक भावावेश को कवित्वपूर्ण भाषागत अभिव्यक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त तो करता है लेकिन युगीन यथार्थ को पूरी तरह स्पर्श नहीं कर पाता और इसकी वजह है पात्रों का अपने भीतर जीते जाना, बाहर या समाज कोई तात्पर्य नहीं स्थापित करते।

अपने-अपने अजनबी :- मृत्यु से साक्षात्कार

अज्ञेय का तीसरा उपन्यास है 'अपने-अपने अजनबी' (1961)। जो पूर्णत: पश्चिमी विचारकों सार्त्र, किर्केगार्ड, हाइडेगर के पश्चिमी अस्तित्ववादी दर्शन पर आधाारित है। 'अपने-अपने अजनबी' अज्ञेय का सबसे छोटा लेकिन प्रभावशाली उपन्यास है, इस उपन्यास में सेल्मा और योके दो प्रमुख पात्र हैं। इस उपन्यास का कथानक बेहद छोटा है। सेल्मा मृत्यु के निकट खड़ी कैंसर से पीड़ित एक वृद्ध महिला है और योके एक नवयुवती, दोनों को एक बार बर्फ से ढ़के एक घर में साथ रहने को मजबूर होना पड़ता है जहाँ जीवन पूर्णत: स्थगित है और समाज से कटा हुआ होता है। दोनों एक-दूसरे के लिए अजनबी हैं न केवल रिश्तों में बल्कि विचारों में, जीवन दर्शन एवं संवेगों में भी।

इस उपन्यास में बर्फ से ढके स्थिर जीवन के बीच दो इंसानों के संवाद के माध्यम से उपन्यासकार ने यह समझाने का प्रयास किया है कि व्यक्ति के पास वरण की स्वतंत्रता नहीं होती, न तो जीवन अपने अनुरूप चुन सकता है और न ही मृत्यु का वरण कर सकता है। नश्वरता का भाव ही जीवन को सर्जनात्मक, रसमय और अर्थवान बनाता है, और इस तरह मृत्यु व्यक्तित्व की परिपूर्णता में बाधक नहीं, वरन उसे निष्पन्न करने में सहायक है। 'शेखर एक जीवनी' जहाँ व्यक्ति स्वतंत्रता की अनुभूति और अभिव्यक्ति की एक मार्मिक यथार्थवादी अभिव्यक्ति है वहीं 'अपने-अपने अजनबी' मृत्यु के आतंक के बीच जीवन जीने की कला का यथार्थवादी दस्तावेज है।

सेल्मा मृत्यु के करीब है और वह चाहती थी कि उस बर्फ घर में अकेले रहते हुए उसकी मृत्यु हो जाए लेकिन संयोगवश योके वहाँ आ पहुँचती है और उसे योके जैसी अजनबी के साथ वह सबकुछ बांटना पड़ता है जो वह अपने सगों-संबंधियों के साथ भी नहीं बांटना चाहती थी। वरण की स्वतंत्रता और जीवन के विविध सत्यों को लेकर दोनों ही पात्र एक-दूसरे से जो वार्तालाप करते हैं उसी के माध्यम से अस्तित्ववादी दर्शन को अज्ञेय ने पूरी तरह स्पष्ट करने की कोशिश की है, लेकिन उसे एक नई भारतीय व्याख्या भी दी है, जो इसके पहले भारतीय साहित्य में अप्राप्त था।

सेल्मा मृत्यु के करीब है लेकिन फिर भी जीवन से भरी हुई है जबकि योके नवयुवती है, जीवन में उसे बहुत कुछ देखना बाकी है लेकिन आसन्न मृत्यु के भय से वह इतनी आक्रांत है कि जीते हुए भी उसका आचरण मृत के समान है। वह भयंकर अवसाद के अंधेरे में डूब जाती है।

योके बार-बार सेल्मा से कहती है व्यक्ति चुनने के लिए स्वतंत्र होता है। उपन्यास में सेल्मा की मौत हो जाती है। योके बर्फ के घर से बाहर निकल जाती है। अब वह मृत्यु के प्रति पूर्ण तटस्थ हो चुकी थी। मृत्यु अब उसके लिए न तो पहेली थी और न ही अजनबी, क्योंकि उसका मृत्यु से साक्षात्कार हो चुका था, लेकिन उस स्थगित जीवन में जिंदगी का जैसा क्रूर एवं वीभत्स चेहरा उसने देखा था उसे भुला नहीं पाती। वरण की स्वतंत्रता की तलाश में अंत में वह यह कहते हुए जहर खाकर अपने जीवन का अंत कर देती है कि उसने जो चाहा वो चुन लिया। इस उपन्यास में मनुष्य को चिन्हित किया जाता है- मनुष्य वह नहीं जो वह है, बल्कि वह है जो वह नहीं है। इसके द्वारा मनुष्य और उसके अंदर उपस्थित 'अपने-अपने अजनबी' को अवगत कराता है तथा साथ-साथ चेतन एवं अवचेतन के मध्य कहीं भी संघर्ष और वैषम्य की स्थिरता नहीं हो पाती है।

बेहद छोटे कथानक के माध्यम से अज्ञेय ने इस उपन्यास में अस्तित्ववाद की पश्चिमी निराशावादी अवधारणा में भारतीय आस्थावादी अवधारणा को जोड़ने का भरसक, सफल एवं युगांतकारी प्रयास किया है।

अज्ञेय ने अपने इन तीनों ही उपन्यासों के माध्यम से भारतीय औपन्यासिक विकास को एक नवीन दिशा प्रदान की है। 'शेखर' एक जीवनी जहाँ व्यक्ति स्वतंत्रता की अनुभूति और अभिव्यक्ति की एक मार्मिक यथार्थवादी अभिव्यक्ति है, तथा 'नदी के द्वीप' एक आदर्शवादी सामाजिक प्रणय कथा है, वहीं 'अपने-अपने अजनबी' मृत्यु के आतंक के बीच जीवन जीने की कला का यथार्थवादी दस्तावेज है।

अज्ञेय भाषा की श्रेष्ठता और उसमें नए-नए प्रयोगों के आग्रही थे। नई बौद्धिक चेतना और परिपक्व संवेदना को भाषाबद्ध करने का कौशल इनके उपन्यासों में शब्द-शब्द परिलक्षित होता है। इन तीनों ही उपन्यासों में प्रयोग और अभियक्ति दोनों ही स्तरों पर अज्ञेय ने भाषा को एक नया संस्कार दिया है।

सन्दर्भ-सूची :

1. शेखर : एक जीवनी (एक), अज्ञेय, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. - 2014
2. शेखर : एक जीवनी (दूसरा), अज्ञेय, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. - 2014
3. नदी के द्वीप, अज्ञेय, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. - 2015
4. अपने-अपने अजनबी, अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, बीसवाँ सं. - 2006
5. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास- राम स्वरूप चतुर्वेदी, पृ - 211
6. प्रयाग-पथ (अज्ञेय की अनुपस्थिति के 30 वर्ष), अंक - 5, जुलाई - 2017
7. सदानीरा, अज्ञेय पृ. 238

रज्जन प्रसाद शुक्ल, शोध छात्र (हिन्दी) तथा आधुनिक भारतीय भाषा–विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उत्तर प्रदेश), मो. : 9936444618, ई–मेल : rpshukla000@gmail.com

✧ ✧ ✧

इतिहास के पन्नों में दफ़न/कैद होने को मजबूर - ''तांगा संस्कृति''

सुभाष चन्द्र

युग बदलते गए और मानव द्वारा उपयोग में आने वाले सवारी साधन भी। आज के इस बदलते और विकसित होते दौर में तांगा का प्रयोग यदा कदा या शायद बिल्कुल भी देखने को नहीं मिलता है। आज के विकसित यातायात के साधन चाहे वह मोटरकार हो या हवाई जहाज सभी ने विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों जैसे - ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण इत्यादि से पर्यावरण को दूषित कर दिया है। आज तक कभी घोड़ा गाड़ी से किसी प्रकार के प्रदूषण का वर्णन नहीं मिलता है।

प्राचीनकाल से ही मनुष्य स्वयं को विकसित करने में लगा हुआ है। वह नित्य नये - नये अविष्कार कर रहा है। जिससे वह अपने दैनिक और भविष्य में सभ्यताओं के विकास के साथ - साथ मानव अपने मस्तिष्क को भी विकसित कर रहा है। सर्वप्रथम जब मनुष्य रूप अपने पूर्वजों बंदरों या जिनसे भी वह विकसित होकर आधुनिक रूप में आया। उसने सभ्यताओं को विकसित किया और अपने आप की सुलभता के लिए साधनों का आविष्कार किया। आदिम मनुष्य ने पहले आग का, फिर सवारी साधनों को आविष्कृत किया। नव पाषाण युग की सबसे बड़ी क्रांतिकारी खोज पहिया थी। उसके काफी पहले से ही मनुष्य ने अपने साधनों के रूप में जानवरों को पालतू बनाना शुरू कर दिया था। सर्वप्रथम उसने सुरक्षा के लिए कुत्ता, फिर सामान को वहन करने के लिए घोड़ा, खच्चर तथा तन की मजबूती के लिए दुधारू पशुओं को पालना शुरू किया। घोड़ा और पहिए की मदद से उसने वस्तुओं और सामानों को वहन करने के लिए घोड़ा गाड़ी और बैलों को पालतू बनाकर बैलगाड़ी का निर्माण किया। घोड़ों का उपयोग मनुष्य ने घोड़ा गाड़ी बनाकर सामान वहन करने तथा उत्सवों में खुशियों को बढ़ाने और दोगुना करने के लिए नचाने में किया।

घोड़ा गाड़ी जिसे बदलते युग में उसे इक्का, तांगा और विक्टोरिया या फिटन नामों से पुकारा गया। घोड़ों का प्रयोग पहले युद्धों में

सवारों के लिए और रथों में घोड़ों को जोतकर युद्धों को जीतने के लिए प्रयोग किया गया। आदिकाल से लेकर आधुनिक युग तक घोड़ों को पालना, उनकी सवारी करना राजे - महाराजों की शान थी। राजाओं - महाराजाओं के लिए अच्छी व विशेष नस्लों के घोड़े पाले जाते थे जिनका उपयोग उनके द्वारा शिकार खेलने, रथों में जोतकर युद्धों में किया जाता था। घोड़ा गाड़ी का प्रयोग शादियों में दूल्हे के बैठने और दुल्हनों को ससुराल लाने व रानियों के सैर पर जाने के लिए किया जाता रहा है। हमारे पौराणिक ग्रंथों और इतिहास में उच्च कोटि के घोड़ों का वर्णन मिलता है। हमारे इतिहास और कहानियों व किंवदंतियों में ऐसे घोड़ों का वर्णन मिलता है जो शायद हवा से भी तेज चलते थे या यूं कहें कि उड़ते थे जिनका प्रत्यक्ष उदाहरण मध्यकाल में चंदेल शासक परमाल देव के दो सामंत आल्हा और ऊदल के घोड़ों के सम्बंध में मिलता है। कहा जाता है कि उनके घोड़े बेंदुला और हरनागर इस प्रकार दौड़ते थे मानो उड़ रहे हों। उनकी रफ्तार से ऐसा प्रतीत होता था मानो वे पानी के ऊपर चल न रहे हो वरन उड़ रहे हों। प्रसिद्ध हिन्दू राजपूत राजा महाराणा प्रताप के घोड़े चेतक के बारे में भी कई किंवदंतियां प्रसिद्ध हैं कि वह हाथी के बराबर ऊंचा था। दरअसल चेतक के मुख पर हाथी की सूंड वाला मुखौटा लगाया जाता था जिससे वह एक हाथी के समान प्रतीत होता था। महाराणा प्रताप और उनके चेतक के सम्बंध में तो कवियों ने कविताएं भी लिखीं हैं। आज बदलते आधुनिक यातायातों के साधनों की दौड़ में घोड़ा गाड़ी, इक्का, विक्टोरिया (फिटन) या तांगा पिछड़ता नजर आता है। एक समय था जब घोड़ा गाड़ी या तांगा अपने आप में एक क्षण का विषय हुआ करता था। घोड़ा गाड़ियों की दौड़ प्रतियोगिताएं हुआ करती थीं। लोग घोड़ों को अपनी संतान की तरह पालते थे। उन्हें बड़े प्रेम से अस्तबल में रखा जाता था तथा उनको परिवार का ही एक अंग माना जाता था। भारतीय सिनेमा में घोड़ा गाड़ियों का भरपूर प्रयोग हुआ है। कई भारतीय सिनेमा के चलचित्र जैसे मर्द, नया दौर, शोले, मुगले-आजम, कलंक इत्यादि इन्हीं सब घोड़ा गाड़ियों के उपयोग से भरे हुए हैं।

युग बदलते गए और मानव द्वारा उपयोग में आने वाले सवारी साधन भी। आज के इस बदलते और विकसित होते दौर में तांगा का प्रयोग यदा कदा या शायद बिल्कुल भी देखने को नहीं मिलता है। आज के विकसित यातायात के साधन चाहे वह मोटरकार हो या हवाई जहाज सभी ने विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों जैसे - ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण इत्यादि से पर्यावरण को दूषित कर दिया है। आज तक कभी घोड़ा गाड़ी से किसी प्रकार के प्रदूषण का वर्णन नहीं मिलता है।

घोड़ा गाड़ी एक सवारी का साधन ही नहीं वरन एक संस्कृति है। जिसको बदलते आधुनिक युग ने बिल्कुल से नकार सा दिया है। यह एक बिना प्रदूषण फैलाने वाली सवारी संस्कृति है। मानव स्वयं की सुलभता के चक्कर में अपनी महत्वपूर्ण संस्कृतियों से दूर होता जा रहा है। मानव स्वयं को विकसित तो कर रहा है लेकिन साथ ही साथ अपनी पुरानी परंपराओं और संस्कृतियों से दूर होता जा रहा है। आज घोड़ा गाड़ी या तांगा या इक्का संस्कृति विलुप्त होने की कगार पर है जिसे सरकारों द्वारा भी अनदेखा किया जा रहा है। इक्का गाड़ी और घोड़ों के कई फायदे थे जो हमें विभिन्न पर से लाभान्वित करते थे। एक तो प्रदूषण से मुक्ति रहती थी। दूसरा

घोड़े की लीद का खाद और मशरूम की खेती में महत्वपूर्ण योगदान था। आज के बदलते दौर में लोग जल्दी में रहते हैं जिससे विभिन्न प्रकार की दुर्घटनाओं का शिकार होते हैं। घोड़ा गाड़ी के दौर में दुर्घटनाएं तो होती ही नहीं थी और साथ ही साथ लोग सुरक्षित अपने गंतव्य तक पहुंच जाते थे।

भारत में इक्का का प्रयोग तो शायद आधुनिक युग की देन है लेकिन मुख्यत: घोड़ा गाड़ी का प्रयोग सर्वप्रथम जहांगीर के समय से माना जाता है। मुगल बादशाह जहांगीर को अंग्रेज व्यापारी सर टॉमस रो द्वारा पहली बार घोड़ों से चलने वाली गाड़ी को भेंट स्वरूप दिया गया। फिर उसके बाद तो घोड़ा गाड़ी का एक युग ही चल पड़ा। घोड़ा गाड़ी से संबंधित चीजे और घटनाएं आज भी हमारे आस – पास मौजूद हैं। इन घोड़ा गाड़ियों का भी अपना एक लंबा इतिहास रहा है। आज भी भारत के कई शहरों और गांवों में घोड़ा गाड़ी की दौड़ प्रतियोगिता जैसी प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती हैं। जिनमें प्रयागराज (संगम नगरी), पुष्कर (राजस्थान) इत्यादि शहर प्रसिद्ध हैं। शौकीन लोग आज भी तांगा दौड़ प्रतियोगिताओं में भाग लेते हैं और इन पर बाजियां खेलते हैं। दौड़ जीतने वाली घोड़ा गाड़ी को इनाम में शील्ड, मेडल, प्रशस्ति पत्र तथा स्मृति चिन्ह भेंट स्वरूप प्रदान किया जाता है। आज के दौर में भी पुष्कर में घोड़ों को खरीदने और बेचने के लिए प्रत्येक वर्ष एक बहुत बड़े मेले का आयोजन किया जाता है जिसमें भारी संख्या में घोड़ों की खरीद – फरोख्त की जाती है। मेले में घुड़सवारी और तांगा दौड़ जैसी प्रतियोगिताओं में भाग लेने के शौकीन लोगों की भारी भीड़ जमा होती है। मेले में देश – विदेश के उच्चतम और सर्वश्रेष्ठ नस्ल के घोड़ों को खरीदने व बेचने के लिए देश – विदेश के लोग भारी संख्या में एकत्रित होते हैं।

कभी शानो – शौकत की सवारी कहे जाने वाले इक्के व तांगे जैसे आज गुम से हो गए हैं। कभी इक्के व तांगे की सवारी राजशाही सवारी मानी जाती थी। जैसे – जैसे समय का पहिया घूमा लोग आधुनिक संसाधनों की ओर बढ़ने लगे। अब गांव – गांव, घर – घर दुपहिया व चारपहिया वाहनों की बाढ़ सी आ गयी है। पहले लोग जहां इक्के व तांगे पर बैठकर शौक से यात्रा किया करते थे। वहीं अब लोग इस सवारी पर बैठना अपनी मर्यादा के खिलाफ व शान में गुस्ताखी समझते हैं। नवाबी शहर के इतिहासकारों की मानें तो तांगा सार्वजनिक यातायात का सबसे पुराना साधन रहा है। यह साधन सबसे अधिक समय तक टिकाऊ रहा है। इसका चलन नवाबी काल से शुरू हुआ था और आजादी के बाद भी एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के लिए यह लोगों की पहली पसंद बना रहा। जगह – जगह सड़कों के किनारे, चौराहों पर घोड़ों की प्यास बुझाने के लिए चरही बनी रहती थी। कभी देश में इक्के व तांगों का दौर था। सड़कें ऊंची – नीची होने की वजह से रिक्शा चलाना असंभव सा था। बड़े – बड़े घरानों के पास निजी तांगे होते थे। उस समय घोड़े – घोड़ियों व उनका दाना सस्ता उपलब्ध होता था। आज के समय में तांगा चालकों की आजीविका का साधन समाप्ति के कगार पर है। तांगा चालक और उनके घोड़े एक अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर हैं।

सरकार की अनदेखी और उदासीनता तथा मानव विकास की दौड़ में किस प्रकार इस संस्कृति को खोया जा रहा है इसका दृश्य भारत या यूं कहें कि विश्व के सभी महानगरों, छोटे शहरों

और लगभग 98 प्रतिशत गांवों/देहातों में देखा जा रहा है। कभी राजा – महाराजाओं की शान कहलाने वाली तांगे की सवारी आज इतिहास के पन्नों में दफन/कैद होने को मजबूर है। सभी महानगरों, शहरों इत्यादि में रेलवे स्टेशन, बस स्टैण्ड से बड़ी संख्या में संचालित होने वाली तांगा गाड़ी कभी दूर – दराज से आने वाले यात्रियों के आकर्षण का केंद्र तो थे ही साथ ही साथ धार्मिक तीर्थ स्थलों के लिए प्रदूषण मुक्त सवारी थे। गुड़ – चना खाकर टिक – टिक, खन खन की आवाज करते हुए सवारियों से भरे तांगे को खींचकर सवारियों को उनके गंतव्य तक पहुंचाने वाले तंदुरुस्त घोड़े आज अपनी कमजोर दुर्दशा की कहानी दर्शा रहे हैं, कह रहे हैं। बिना प्रदूषण, दुर्घटना मुक्त और किसी भी जीव को नुकसान न पहुचाने वाले इस आवागमन के साधन से अपनी जीविका चलाने वाले तांगा चालक भी अब सरकारी उपेक्षा से त्रस्त हैं। तांगा चालकों का कहना है कि परिवार का खर्च वहन करना ही मुश्किल हो गया है तो इन घोड़ों की खुराक का इंतजाम कैसे होगा। चालकों का कहना है कि भाग – दौड़ के इस जीवन में हर व्यक्ति समय के अभाव में मशीनी गाड़ियों में सवारी करने को मजबूर है।

दूसरी ओर संतों और बुद्धिजीवियों का कहना है कि सरकार संस्कृति और विरासत को को खत्म करना चाहती है, उनका आरोप है कि सरकार शहर को हाईटेक बनाने के लिए प्रदूषण फैलाने वाली गाड़ियों को तो लाइसेंस/परमिट दे रही है परंतु गरीब तांगा चालकों की आजीविका के साधन को खत्म कर रही है। बुद्धिजीवियों का कहना है कि पर्यावरण के अनुकूल इस साधन की दुर्दशा को देखते हुए सरकार को इस मामले में हस्तक्षेप करके इनकी स्थिति सुधारने के लिए पहल करनी चाहिए। आज आवश्यकता है कि सरकार और हम सभी मिलकर इस विलुप्त होती विरासत/संस्कृति को बचाने का प्रयास करें। नहीं तो यह संस्कृति गिद्धों, बाघों, शेरों और विलुप्त हो चुकीं विभिन्न वनस्पतियों की प्रजातियों की तरह विलुप्त हो जाएगी और आने वाली पीढ़ी इसे सिर्फ सिनेमा के चलचित्रों पर ही देख पाएगी वास्तविकता में नहीं। इसको बचाना इसलिए और भी आवश्यक है क्योंकि ये हमारी संस्कृति/धरोहरधविरासत है। जैसे आज ताजमहल, कुतुबमीनार, लालकिला, चारमीनार, मंदिर, मस्जिद और विभिन्न तीर्थ स्थलों इत्यादि को हमारी सरकार और हम संरक्षण प्रदान कर रहे हैं ठीक उसी तरह तांगा संस्कृति/इक्का विरासत को हमें और सरकार को संरक्षण प्रदान करने की भरपूर आवश्यकता है। क्योंकि इनके विलुप्त होते ही हो जाएगा एक सुनहरे युग का अंत। मरण हो जाएगा एक संस्कृति का और क्षरण हो जाएगा एक विरासत का। विलुप्त हो जाएगी एक और धरोहर। अंत हो जाएगा एक और सभ्यता का जो देश, समाज और पर्यावरण के लिए एक आवश्यक अंग है।

अगर हम तांगे के इतिहास में जाएंगे तो पता चलता है कि इस सवारी ने युगों को ढ़ोया है.. ....बदलते देखा है......। लेकिन ये इनकी सेवाओं की उपेक्षा की हद है कि इतिहास में इसका कहीं कोई जिक्र तक नहीं किया गया......। आइए हम सब मिलकर प्रयास करते हैं इस इतिहास को बचाने का, संवारने का, संजोने का और इसको उभारने का। तांगे को इतिहास के पन्नों में दफन न कर इसके युग को वापस लाने का एक प्रयास करते हैं जिससे शायद हम लौट सकें उसी तांगे के

एक स्वर्णिम प्रदूषण मुक्त युग में और आने वाली पीढी को दे सकें एक स्वर्णिम और प्रदूषण मुक्त भविष्य। आइए चलिए मिलकर बचाने का एक छोटा सा प्रयास करते हैं अपनी तांगा संस्कृति, इक्का विरासत और घोड़ा गाड़ी धरोहर को जिससे हम पुराने समय में शायद फिर लौट सकें और जी सकें वही पुराने युग के सुनहरे लम्हें और यादों को........।

आज जब भी मैं किसी इक्के को सड़क पर कभी – कभार सरपट दौड़ते देखता हूँ ये कुछ पंक्तियां गुनगुनाते हुए अनायास ही निकल आती हैं-------

मैं हूँ
दो पहिया तांगा,
खुश हूँ देखकर..
दूसरों के सुखों का सुख..
मैंनें समय ढोया, बागियों को ढोया
नवाबो व बेगमों को प्रश्रय दिया..
गन्तव्य तक पहुँचाया..
उबड़ खाबड़ सड़कों पर..
अंग अंग चकनाचूर कर बस..
यूँ ही चलता रहा..
गाँव की पगदंडी से..
शहरी सड़कों तक ..
जहाँ हाँका गया ..वहाँ गया..
न कोई गिला, न कोई शिकवा..
मैं नहीं कहता कि मै नहीं होता तो
ये नहीं होता ..वो नहीं होता..
लेकिन अगर मैं नहीं होता
तो शायद इतिहास नहीं होता..
इतिहास का साक्ष्य नहीं होता..।

सुभाष चन्द्र, शोध छात्र, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211002
मो. : 6392798774, 9532188761, ई–मेल : subhashgautam711@gmail.com

✧ ✧ ✧

छायावाद के सौ वर्ष और मुकुटधर पांडेय

उर्मिला कुमारी

छायावाद पर प्रकाशित लेखमाला एवं 'छायावाद' के विषय में स्वयं पंडित मुकुटधर पांडेय कहते हैं- 'सन 1920 में 'छायावाद' का नामकरण हुआ और जबलपुर की 'श्री शारदा' में हिंदी में छायावाद शीर्षक से मेरी लेखमाला निकली। इसके पहले सन् 1918 में प्रसाद जी का 'झरना' निकल चुका था जो छायावादी कविताओं का संग्रह है। आचार्य शुक्ल ने 'romanticism' के पर्याय के रूप में जिसे स्वछंदतावाद कहा था, वह 'छायावाद' का अग्रगामी था। Romanticism जिसे हरफोर्ड ने hightening of sensibility भावोत्कर्ष कहा था, वही छायावाद के रूप में परिणित हुआ था उसकी मुख्य विशेषताएँ हैं मानवतावाद, सौन्दर्यवाद, रहस्यवाद, रोमांटिक निराशावाद।

छायावाद हिंदी का सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य आंदोलन रहा है। हिंदी साहित्य में छायावादी काव्य युग को सौ वर्ष हो रहे हैं। किंतु इसकी तेजोमय काव्य आभा जरा भी फीकी न पड़ी है। मानव एवं प्रकृति की अंत: सम्बन्ध की रहस्यमयता को जिस सूक्ष्म धरातल पर छायावादी काव्य में परिभाषित किया गया है वह कालातीत हो चुका है। इसकी लोकप्रियता और प्रासंगिकता आज भी अक्षुण्ण है। द्विवेदी युग के बाद इस विषय पर विभिन्न साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं द्वारा इसे पल्लवित पुष्पित किया है। वर्ष 1918 में प्रकाशित जयशंकर प्रसाद की कविता 'झरना' को हम प्रथम संग्रह के रूप में जानते हैं।

''छायावाद 1918 के लगभग द्विवेदी युगीन नीरस इतिवृत्तात्मक तथा उपदेशात्मक आदर्शवादी काव्य के विरुद्ध उपजा था। यह मूल रूप से प्रेम भावना की स्वछंद अभिव्यक्ति का नाम था। इसमें राष्ट्रवाद के तत्व सूक्ष्म रूप में उभरे। प्रकृति में व्याप्त अज्ञात सत्ता को परिभाषित करने के कारण छायावादी काव्य में रहस्य का पदार्पण हुआ। छायावादी काव्यों में कल्पना की प्रधानता के साथ कोमल व मृदु भावों की अभिव्यक्ति के साथ लोकमंगल व पौरुषपूर्ण भावों की अभिव्यंजना भी हुई है। ''आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्रीवादी चिंतन को स्वरूप प्रदान करने में छायावादी कविता की भूमिका महत्वपूर्ण है। स्त्री को पति की अनुगामिनी की स्थिति से उबारकर उसे सहगामिनी और उससे भी आगे पथ- प्रदर्शक

की भूमिका में स्थापित करने का श्रेय जयशंकर प्रसाद को जाता है।'' -1

इसी के साथ द्विवेदी युगीन रचनाओं में हिंदी पद्य की शैली में परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देने लगा। यह नवीन शैली सहित्यानुरागियों के उर में स्थापित होने लगा। इस शैली के आधार स्तंभ के रूप में हम जयशंकर प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा को जानते हैं। इसी नवीन शैली को साहित्य की दुनिया में नामकरण करने, सम्मान स्थापित करने का श्रेय पंडित मुकुटधर पाण्डेय को जाता है।

छायावाद पर प्रकाशित लेखमाला एवं 'छायावाद' के विषय में स्वयं पंडित मुकुटधर पांडेय कहते हैं -' सन् 1920 में 'छायावाद' का नामकरण हुआ और जबलपुर की 'श्री शारदा' में हिंदी में छायावाद शीर्षक से मेरी लेखमाला निकली। इसके पहले सन 1918 में प्रसाद जी का 'झरना' निकल चुका था जो छायावादी कविताओं का संग्रह है। आचार्य शुक्ल ने 'romanticism' के पर्याय के रूप में जिसे स्वछंदतावाद कहा था, वह 'छायावाद' का अग्रगामी था। Romanticism जिसे हरफोर्ड ने hightening of sensibility भावोत्कर्ष कहा था, वही छायावाद के रूप में परिणित हुआ था उसकी मुख्य विशेषताएँ हैं मानवतावाद, सौन्दर्यवाद, रहस्यवाद, रोमांटिक निराशावाद। 'छायावाद' की कुछ कविताओं में एक ऐसी मर्मभेदी करुण ध्वनि पायी जाती है जो करुण होने पर भी अत्यंत मधुर है। यह एक करुण व्यथा की कथा है जो मनुष्य के साधारण समझ से बाहर की बात है। 'छायावाद' के सौंदय बोध और कल्पना में पूर्ववर्ती कविताओं की तुलना में बड़ा अंतर है। छायावाद द्वारा द्विवेदी युगीन काव्यधारा का एक नई दिशा और व्यपवर्तन घटित हुआ था।'

आरम्भ में छायावादी काव्य और 'छायावाद' शब्द पर कुछ विरोध के स्वर भी मुखरित हुए। किन्तु आगे चलकर यह छायावाद हिंदी साहित्य में स्थापित हो गया तथा इसे सिद्ध करने में पंडित मुकुटधर पांडेय के 'श्री शारदा' में छपा लेखमाला की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पण्डित जी की 'सरस्वती' में प्रकाशित कविया 'कूकरी के प्रति' को प्रथम छायावादी कविता माना गया। इस कविता में छायावाद के सभी तत्व समाहित होने के कारण डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने रायगढ़ में कहा- 'कुकरी में तो भारतवर्ष की सारी सम्वेदना की परंपरा निहित है....।'

पंडित मुकुटधर पांडेय का जन्म 30 सितंबर 1895 को छत्तीसगढ़ के एक छोटे से गांव बालपुर में हुआ था। ये अपने आठ भाईयों में सबसे छोटे थे। समस्त परिवार साहित्य साधना में आकंठ डूबा हुआ था। जिसमें उनके पिता पंडित चिंतामणि पांडेय संस्कृत के प्रकांड विद्वान तथा भाई पंडित लोचन प्रसाद पांडेय हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार के रूप में जाने जाते हैं। बाल्यावस्था में ही पिता के मृत्योपरांत पंडित जी के बालमन पर गहरा असर पड़ा। 12 वर्ष की अल्पायु में ही उन्होनें लिखना शुरू किया। सन 1909 में 14 वर्ष की अवस्था में उनकी पहली कविता का आगरा से निकलने वाली 'स्वदेश बांधव' पत्रिका में प्रकाशन हुआ। 1919 में उनकी प्रथम कविता संग्रह 'पूजा के फूल' प्रकाशित हुआ। सन 1915 में प्रयाग विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण कर महाविद्यालय में भर्ती हुये। तब बालपुर और रायगढ़ छूटने पर कविमन अधीर हो उठता है -

' बालकाल तू मुझसे ऐसी आज विदा क्यों लेता है
मेरे इस सुखमय जीवन को दुखमय से भर देता है।'

इलाहाबाद में पढ़ने के दौरान अस्वस्थता के कारण उन्हें जल्द ही वापस गांव जाना पड़ा। यहां उनका ध्यान गरीब ग्रामीण किसानों की ओर आकृष्ट हुआ तथा उन्होंने श्रम का महिमागान किया। उन्होंने हिंदी, अरबी, उड़िया, बांग्ला साहित्य का घर में ही अनुशीलन किया। पंडितजी ने ग्राम्य जीवन का रस लेते हुए महानदी की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन किया है -

कितना सुन्दर और मनोहर, महानदी यह तेरा रूप।
कलकलमय निर्मल जलधारा, लहरों की है छटा अनूप।।
तुझे देखकर शैशव की है, समृतियां उर में उठती जाग।
लेता है किशोर काल का, अंगराई अल्हड़ अनुराग।।

''फिर तो मानवीय करूणा का विस्तार होता ही गयाऔर वह करुणा पशु-पक्षियों और प्रकृति में भी प्रतिबिंबित होने लगी...कुछ- कुछ रोमांटिज्म की शुरुआत जैसी हिंदी काव्य में एक नई ताजगी पैदा हुई। स्थूल की जगह सूक्ष्म ने ले लिया, द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता फीकी पड़ने लगी। प्रेम और सौंदर्य का नया ताना- बाना बुना जाने लगा, जिसमें वैयक्तिक रागानुभूति के साथ रहस्यात्मक प्रवृतियां बढ़ने लगीं। साथ ही पद्यात्मकता कि जगह प्रगीतात्मकता प्रमुख होती गयी। इस धारा पर मैथिलीशरण गुप्त, बद्रीनाथ भट्ट और जयशंकर प्रसाद भी अग्रसित हो रहे थे। इस समय पांडेय जी सभी प्रमुख पत्रिकाओं के लिए महत्वपूर्ण हो उठे।'' -2

''अबाध गति से देश के सभी प्रमुख पत्रिकाओं में लगातार लिखते हुए पंडित मुकुटधर पांडेय ने हिंदी पद्य के साथ- साथ हिंदी गद्य में भी अपना योगदान दिया। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कृतियाँ इस प्रकार हैं - पूजा के फूल (1916), शैलबाला -1916, लच्छमा (अनुदित उपन्यास-1917), परिश्रम (निबंध-1917), हृदयदान (1918), मामा (1918), छायावाद और अन्य निबन्ध (1983), स्मृतिपुंज (1983), विश्वबोध (1984), छायावाद और श्रेष्ठ निबंध (1984), मेघदूत (छतीसगढी अनुवाद, 1984) आदि प्रमुख है। हिन्दी जगत में योगदान के लिए इन्हें विभिन्न अलंकारण एवं सम्मान प्रदान किये गए। भारत सरकार ने इन्हें 'पदमश्री' का अलंकरण प्रदान किया। इन्हें मानद डी. लिट् की उपाधि प्रदान की गई।'' -3

साहित्य प्रेमी, साहित्यकारों, समीक्षकों तथा साहित्य के शास्त्रीय परम्पराओं से अनभिज्ञ भी पंडित मुकुटधर पांडेय के रचनाओं के सागर में गोता लगाकर उसका रसपान करते हैं। डॉ. सुरेश गौतम इनकी रचनाओं के विषय में लिखते हैं- 'इनके काव्य में मानव प्रेम, प्रकृति सौंदर्य, करुणाजनित सहानुभूति, दु:खवाद, मानवीकरण, वैयक्तिकता, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, आध्यात्मिकता, संयोग- वियोग, अव्यक्त सत्ता के प्रति जिज्ञासा और गीतात्मकता की प्रधानता रही है..... कमोवेश इनके सभी गीत संक्षिप्त एवं छायावादी शैली के पूर्वाभास हैं। छायावाद के कल्पना वैभव की अट्टालिका का पहला द्वार मुकुटधर पांडेय हैं। इनकी गीत पदचाप छायावादी गोली का सौंदर्य है जिनकी प्रतीतियों ने कालांतर में एतिहासिक यात्रा करते हुए छायावाद की संज्ञा प्राप्त की है।' पण्डित मुकुटधर पांडेय कविता लेखन के समानांतर गद्य लेखन भी करते रहे। वे द्विवेदी युग

और छायावादी युग के बीच महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में स्थापित होते हैं। खड़ी बोली के दूसरे-तीसरे दशक के विकास को जानने के लिए उनकी काव्य यात्रा को समझना जरूरी है। उन्होंने युग प्रवर्तक का ऐतिहासिक कार्य किया है। उनके काव्य में जीवन अपनी समग्रता में स्थापित दिखाई पड़ती है।

''सन् 1915 के आसपास स्वच्छंदतावादी काव्य धारा चौड़ा पाट बनाने लगी, द्विवेदी युगीन तट- कछार उसमें ढहने लगें। इस धारा के सबसे सशक्त हस्ताक्षर थे जयशंकर प्रसाद और मुकुटधर पांडेय। ....मुकुटधर पांडेय में स्वच्छन्दतावादी और द्विवेदीयुगीन काव्य की गंगा- यमुनी धारा यदि एकसाथ प्रवाहित दिखे तो कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन तय है उस युग के काव्य का प्रवर्तन उन्हीं से होता है। उन्हीं की प्रगीत रचनाओं से होकर छायावादी कविताएं यात्रा करती हैं और उन्होंने ने ही सर्वप्रथम उस युग की कविताओं को द्विवेदी युग से अलग रेखांकित किया। कविता (हितकारिणी 1919) तथा छायावाद (श्रीशारदा 1920) जैसी सशक्त लेखमाला द्वारा ही उस युग की कविता की पहचान होती है। इस कविता धारा को सांकेतिक शैली के अर्थ विशेष में पांडेय जी ने 'छायावाद' नाम दिया था।'' - 4 छायावाद का पहला प्रयोग श्रीशरदा लेखमाला के प्रकाशन के पूर्व मार्च 1920 की हितकारिणी में प्रकाशित उनकी कविता 'चरण प्रसाद' में इस प्रकार हुआ है -

'भाषा क्या वह छायावाद, है न कहीं उसका अनुवाद।'

पंडित मुकुटधर पांडेय की कविताओं का लेखन 1909 से 1983 तक जारी रखा। 1

पंडित मुकुटधर पांडेय की कविताओं का लेखन 1909 से 1983 तक जारी रहा। उनकी रचनाओं में द्विवेदी युगीन और छायावाद के काव्य संस्कार स्पष्ट रूप से शामिल है। अत: उन्हें संक्रमण काल का कवि कहा जा सकता है। पांडेय जी के श्रेष्ठ कविताओं का संग्रह 'विश्वबोध' और 'छायावाद एवं श्रेष्ठ निबन्ध' का सम्पादन डॉ. बलदेव साव ने बड़े मनोयोग पूर्वक किया है। जिसका प्रकाशन श्री शारदा साहित्य सदन रायगढ़ से हुआ है। मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन भोपाल द्वारा श्री सतीश चतुर्वेदी के सम्पादन में 'छायावाद एवं अन्य निबन्ध' का प्रकाशन एक महती प्रयास रहा है। पंडित मुकुटधर पांडेय की कविता 'विश्वबोध' में ईश्वर का दर्शन एवं शास्त्राध्ययन का बहुत सुंदर वर्णन मिलता है -

खोज में हुआ वृथा हैरान।
यहां भी था तु हे भगवान।।
गीता ने गुरु ज्ञान बखाना।
वेद पुराण जनम भर छाना।।
दर्शन पढ़े, हुआ दीवाना।
मिटा न पर अज्ञान ।।

''उनकी कविताओं में प्रकृति प्रेम सहज रूप में दर्शनीय है। 'किंशुक कुसुम' में प्रकृति से उनके अंतरंग लगाव की पद्यबद्धता ने कविता में एक अनोखे भाव लोक की सर्जना की है।..... पंडितजी महानदी से सीधे बात करने लगते हैं -

शीतल स्वच्छ नीर ले सुंदर बता कहां ले आती है
इस जल में महानदी तू कहाँ घूमने जाती है

'कुररी के प्रति' में एक विदेशी पक्षी से अपना भाव जगाने उनसे वार्त्तालाप करने लगते हैं। देखिये उनकी एक कविता :-

अंतरिक्ष में करता है तू क्यों अनवरत विलाप
ऐसी दारुण व्यथा तुझे क्या है किसका परिताप
शून्य गगन में कौन सुनेगा तेरा विपुल विलाप
बता तुझे कौन सी व्यथा है, है किसका परिताप।

सामाजिक मूल्यों के उत्थान पतन को भी उन्होंने निकट से देखा और जाना है। ग्रामीण जीवन की झांकी उनकी कविताओं में द्रष्टव्य है।5

उन्होंने अपनी एक कविता में महानदी से प्रार्थना किया है कि 'हे महानदी तू अपनी ममतामयी गोद में मुझको विश्राम देना, तब मैं मृत्यु- पर्व का भरपूर सुख लुटूंगा -

चित्रोत्पले बता तू मुझको वह दिन सचमुच कितना दूर
प्राण प्रतीक्षारत लूटेंगे, मृत्यु- पर्व का सुख भरपूर।

पंडित मुकुटधर पांडेय ने हिंदी गद्य व पद्य पर देश के सभी प्रमुख पत्रों में अबाध गति से लेखन कर अपना अनमोल योगदान दिया। इस धरा से उन्होंने जो कुछ पाया, उसे उन्होंने साहित्य जगत को वापस दिया। इनका समस्त लेखन जनभावना और काव्य धारा से जुड़ा हुआ है। वे एक उत्तम साहित्यकार और कवि के साथ एक बेहतर इंसान भी थे। उनका समस्त जीवन उपलब्धियों की जीवंत गाथा है जो हमेशा नवागन्तुक पीढ़ी का नवोन्मेष करती रही है और आगे भी करेगी।

सन्दर्भ संकेत :

1. www-sahityakunj-net, डॉ. एम. वेंकटेश्वर, छायावाद के सौ वर्ष , 1 मार्च 2020
2. www-rachanakar-org, 2017, छायावाद के प्रवर्तक पंडित मुकुटधर पांडेय- डॉ. बलदेव।
3. छायावाद के मुकुट पंडित मुकुटधर पांडेय, संजीव तिवारी, www-aarambha-blogspot-com, 2008/09
4. www-rachanakar-org, 2017, छायावाद के प्रवर्तक पंडित मुकुटधर पांडेय- डॉ. बलदेव।
5. www-ashvinik-blogspot-com, 2007, प्रतिभाशाली मुकुट काव्य के मुकुट मनोहर।

उर्मिला कुमारी, शोधार्थी, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखण्ड–825301
ई–मेल : urmila.sharma009@gmail.com

✧ ✧ ✧

मेरे भारत की 'संस्कृति'

गीता सिंह

हमारे देश की विशेषता है कि यहाँ विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न बोली व भाषाओं का प्रयोग किया जाता है, परंतु सार एक, भाव एक। संविधान में 22 भाषाओं को भाषा का अधिकार प्राप्त है। सरकारी कामकाज में प्रयोग में होनेवाली दो भाषाएँ हैं- हिंदी और अंग्रेजी। हिंदी भाषा हमारे देश की राजभाषा है। 14 सितंबर हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है। यह हमारे देश के उत्तरी हिस्सों में सबसे ज्यादा बोली जानेवाली भाषा है। 2011 की जनगणना के अनुसार 43.63 प्रतिशत नागरिकों ने इस भाषा को मातृभाषा घोषित कर दिया है। दूसरे स्थान पर आती है, अंग्रेजी भाषा। यह पूरे देश में कहीं कम, कहीं ज्यादा बोली जाती है। इसके बाद बंगाली, मराठी, तेलुगू, तमिल, गुजराती, उर्दू, कन्नड़, ओड़ियां, मलयालम, पंजाबी और संस्कृत अलग-अलग स्थानों पर बोली जाती हैं।

भारत परंपरा व संस्कृतियों का अनूठा संगम। पूरब से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण तक प्रत्येक स्थान पर अलग अपनी विशेषता लिए हुए, फिर भी एक ऐसा प्यारा हमारा भारत देश। हमारे देश की संस्कृति पूरे विश्व से सबसे प्राचीन एवं प्रसिद्ध संस्कृति है। हमारी संस्कृति सबसे ज्यादा संपन्न और समृद्ध है। हमारे देश की संस्कृति की मूल पहचान है ''विभिन्नता में एकता''। वैदिक ज्ञान, अध्यात्मिकता, योग सूत्र, विभिन्न धर्मों का समागम, धर्मनिरपेक्षता, आयुर्वेद और दैविय महात्माओं से सुसंपन्नता।

सभी धर्मों का समागम है हमारे देश में। सभी को समान भाव से देखा जाता है। हम भारतीय एक दूसरे के धर्मों का आदर करते हैं और मिलजुल कर रहते हैं। सभी भावात्मक और सांस्कृतिक रूप से एक दूसरे से जुड़ कर एक नए ''भारत धर्म'' का निर्माण करते हैं। चाहे वह हिंदू हो या मुस्लिम, चाहे सिख हो या इसाई, हमारे भारत देश में भाई बंधु की तरह रहते हैं। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म और जैन धर्म भी हुए हैं।

इसी कारण हमारे देश के संविधान में राष्ट्र को एक ''धर्मनिरपेक्ष गणतंत्र राष्ट्र'' घोषित किया गया है। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म का स्वतंत्रता पूर्वक पालन करने का तथा उसका प्रचार करने का अधिकार है हमारे देश के संविधान में धार्मिक स्वतंत्रता को ''मौलिक अधिकार'' माना गया है।

पूरे विश्व में हमारे प्यारे देश के त्यौहार प्रख्यात हैं। प्रत्येक वर्ष त्योहारों के

समय पर विदेशी सैलानियों का जमावड़ा होता है। हमारी रंग बिरंगी संस्कृति का अवलोकन पूरी दुनिया करती है। त्यौहार का नाम आते ही मन में ढेर सारा उत्साह, नई ऊर्जा, जीवन की उदासी दूर भगा इंद्र धनुष्य रंग बिखर जाते हैं। ऐसा ही है मेरा देश। आज पूरे विश्व में भारतीय त्योहारों की चर्चा होती है। दीपावली, रक्षाबंधन, होली, दशहरा आदि कुछ ऐसे त्यौहार है जो पूरे देश में मनाए जाते हैं। प्रत्येक राज्यों के भी अपने अलग प्रमुख त्यौहार हैं। जैसे:-

- आंध्र प्रदेश का मुख्य त्यौहार है ब्रह्मोत्सवम- इसमें ब्रह्मा जी को धन्यवाद दिया जाता है।
- अरुणाचल का प्रमुख त्योहार है 'लोसार महोत्सव'- इसमें पहले मठ में पूजा, फिर घर के मंदिर में प्रसाद चढ़ाया जाता है।
- असम का मुख्य त्यौहार है 'भोग बिहू'- यह असमिया नववर्ष की शुरुआत का प्रतीक है। इसमें बिहू गीत गाया जाता है।
- बिहार का मुख्य त्यौहार है 'छठ पूजा'- इसमें महिलाएं व्रत रखती हैं और नदी में जाकर सूर्य को जल अर्पित करती हैं।
- छत्तीसगढ़ का त्यौहार है 'बस्तर दशहरा'- इसमें बस्तर के लोग जगदलपुर के दंतेश्वरी मंदिर में विशिष्ट पूजा करते हैं।
- गोवा का गोवा कार्निवल- यह कैथोलिक त्यौहार है जिसमें परेड, रेलगाड़ियां तथा झांकियां लोकप्रिय हैं।
- गुजरात का प्रमुख त्योहार है 'जन्माष्टमी उत्सव'- इसमें भगवान कृष्ण के लिए व्रत करते हैं तथा गरबा खेलते हैं। यह पूरे देश में भी मनाया जाता है।
- हरियाणा का त्यौहार है वैशाखी- फसल की कटाई के समय मनाते हैं। भांगड़ा तथा लोक नृत्य करते हैं।
- हिमाचल प्रदेश का मुख्य त्यौहार है महाशिवरात्रि- इसमें भगवान शिव की पूजा की जाती है।
- जम्मू कश्मीर का मुख्य त्यौहार है ईद-उल-फितर, ईद-उल-अजहा। मुस्लिम लोग रमजान के महीने में मनाते हैं तथा बकरी भेड़ की बलि भी देते हैं।
- कर्नाटक का मुख्य त्यौहार है उगादि- यह ब्रह्मा जी का है।
- केरल का मुख्य त्यौहार है ओणम- यह 9 प्रकार के व्यंजनों और सब्जियों से मनाया जाता है।
- मध्य प्रदेश तथा उत्तर भारत में दिवाली मनाई जाती है।
- महाराष्ट्र में गणेश चतुर्थी मनाई जाती है।
- मणिपुर राज्य में याऐशंग उत्सव मनाया जाता है।
- मेघालय में नोंगकर्म मनाया जाता है।
- मिजोरम का प्रमुख त्योहार है चपचार कुट उत्सव- परंपरागत गीत गाते हैं और लोक नृत्य

करते हैं।

- नागालैंड का प्रमुख त्योहार होर्नीवल है - इसमें नागा कुर्ती खेल और पुष्प शो किया जाता है।
- उड़ीसा का मुख्य उत्सव है राजा परबा- यह पृथ्वी देवी को समर्पित है।
- पंजाब का मुख्य त्योहार है लोहड़ी- शाम को लोहड़ी जलाते हैं और रेवड़ी बांटते हैं।
- राजस्थान का मुख्य त्यौहार है गणगौर- यह माता पार्वती के सम्मान में मनाया जाता है।
- सिक्किम का मुख्य उत्सव है सागा दावा- इसमें भगवान बुद्ध के ज्ञान समर्पण में समारोह किया जाता है।
- तमिलनाडु का प्रमुख त्योहार है पोंगल- यह फसल उत्सव है। पोंगल मनाया जाता है और मिठाई बटती है।
- तेलंगाना का मुख्य त्यौहार है बोनालु- इसमें महाकाली की पूजा की जाती है।
- त्रिपुरा का मुख्य त्यौहार है खारची पूजन- यह 14 देवी देवताओं का पूजन है।
- उत्तर प्रदेश का मुख्य उत्सव है नवरात्रि उत्सव- इसमें दुर्गा माता के नौ रूपों की पूजा की जाती है।
- उत्तराखंड का मुख्य त्यौहार है गंगा दशहरा- इसमें गंगा मैया की पूजा की जाती है। गंगा स्नान करते है।
- पश्चिमी बंगाल का उत्सव है दुर्गा पूजा- इसमें दुर्गा मां की पूजा की जाती है। हमारा देश त्योहारों का देश है। त्योहारों में भारतीय संस्कृति की अद्‌भुत व अकल्पनीय छाप मिलती है।
- हमारे देश में अनेकोनेक भाषाएं एवं बोलियां बोली जाती हैं। फिर भी भावनात्मक रूप से सभी एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

हमारे देश की विशेषता है कि यहाँ विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न बोली व भाषाओं का प्रयोग किया जाता है, परंतु सार एक, भाव एक। संविधान में 22 भाषाओं को भाषा का अधिकार प्राप्त है। सरकारी कामकाज में प्रयोग में होनेवाली दो भाषाएँ हैं- हिंदी और अंग्रेजी। हिंदी भाषा हमारे देश की राजभाषा है। 14 सितंबर हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है। यह हमारे देश के उत्तरी हिस्सों में सबसे ज्यादा बोली जानेवाली भाषा है। 2011 की जनगणना के अनुसार 43.63 प्रतिशत नागरिकों ने इस भाषा को मातृभाषा घोषित कर दिया है। दूसरे स्थान पर आती है, अंग्रेजी भाषा। यह पूरे देश में कहीं कम, कहीं ज्यादा बोली जाती है। इसके बाद बंगाली, मराठी, तेलुगू, तमिल, गुजराती, उर्दू, कन्नड़, ओड़ियां, मलयालम, पंजाबी और संस्कृत अलग-अलग स्थानों पर बोली जाती हैं। भाषाओं के साथ-साथ अनेक बोलियां भी बोली जाती हैं। जिन्हें 'उपभाषा' भी कहा जाता है। भारत देश में हिन्दी की कुल 18 उपभाषाएं या बोलियां हैं जिनमें अवधी, ब्रज भाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, भोजपुरी, हरियाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, नागपुरी, खोरठा, पंचपड़गानिया, कुमाऊनी, मगही आदि मुख्य हैं। विभिन्न प्रकार की भाषाएं बोली जाने के बाद भी

हमारे देश को एक ''हिंदी भाषा राष्ट्र'' कहा जाता है। यह भाषाएं स्वयं में भारतीय इतिहास परंपरा एवं सभ्यता समेटे हुए हैं। अवधि तथा ब्रजभाषा में तो साहित्य भी उच्च कोटि का हुआ है जो आज भी गौरवान्वित करता है।

भारतीय संस्कृति के अनूठे दर्शन मिलते हैं। परंपरागत भारतीय नृत्यकला में अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग नृत्य हमारे देश की प्राचीन, वैदिक परंपरा है। स्वर्ग में अप्सराओं से लेकर धरती की मनमोहक नृत्यांगनाओं तक, यह विभिन्न संस्कृति पर प्रकाश डालता है। नृत्य कला हमारे देवी-देवताओं की प्रिय है। भगवान शिव को तो 'नटराज' कहा जाता है। इसका मनोवैज्ञानिक पक्ष है कि यह मनोरंजन के साथ-साथ योग, मोक्ष का साधन भी है। नित्य करने से मन को शांति मिलती है। विशेष ऊर्जा उत्पन्न होती है और शरीर को स्वस्थ रख पाते हैं। भगवान कृष्ण भी 'नटवर' नाम से प्रसिद्ध हैं। वे रासलीला करते थे और आध्यात्मिक स्वरूप को पाते थे।

हमारे देश के प्रमुख नृत्य दो प्रकार के हैं- शास्त्रीय नृत्य तथा लोक नृत्य। हाल फिलहाल एक नई शैली विकसित हुई है- बॉलीवुड नृत्य की। इसमें देशी-विदेशी समन्वय हैं। प्राचीन नृत्य शैलियों में प्रमुख है कथक। यह उत्तर प्रदेश और राजस्थान की नृत्य शैली है। हमारे प्राचीन ग्रंथ 'महाभारत' में भी इसका उल्लेख मिलता है। कृष्ण कन्हैया तथा राधा रानी इस शैली में नृत्य किया करते थे। आज के समय में 'बिरजू महाराज जी' कथक के बहुत बड़े गुरु हैं।

उड़ीसी (ओडिसी) उड़ीसा का प्रमुख नृत्य है। प्रारंभ में मंदिरों की देवदासियों के द्वारा किया जाता था। वहां के शिलालेखों में इसका वर्णन मिलता है। इनमें ब्रह्मेश्वर मंदिर प्रमुख है। इस नृत्य का प्राचीन नाम ओरिसी है। इसका प्रदर्शन नृत्य नाटिका शैली है। ओडिसी की मूल आकृति है भांगो। इसके एक संयोजन के रूप में सीखा और निष्पादित किया जाता है। लयबद्ध संगीत प्रतिध्वनि के साथ पूर्ण अभिव्यक्ति और दर्शकों से जुड़ाव। यह नाट्य शैली पर आधारित है। भरतनाट्यम एक दक्षिण भारत की शैली है इसमें 3 कलाएं जुड़ती हैं,- भावन, रागम, तालम। यह भरतमुनि के नाट्यशास्त्र पर आधारित है। सबसे पहले तमिलनाडु में देवदासियों द्वारा इस नृत्य को किया गया। इसलिए वहां के लोग इसे हेय दृष्टि से देखते थे।

कृष्ण अय्यर और रुकमणी देवी ने अथक प्रयास किए इसे स्थापित करने में। यह नृत्य और अभिनय से मिलकर बनी शैली है। इस शैली में शारीरिक प्रक्रिया तीन भागों में बटी होती हैं - संमभंग, अभंग, त्रिभंग। इस शैली में वंदना की जाती है। जो संस्कृत, तेलुगु तथा तमिल भाषा में की जाती है। कूचीपूड़ी आंध्र प्रदेश प्रसिद्ध नृत्य है। कुचिपुड़ी गांव के नाम पर इसका नाम पड़ा। प्राचीन काल में यह पुरुषों द्वारा किया जाता था और ब्राह्मणों का एकाधिकार था। बाद में इसे एक कृष्ण भक्त सिद्धवेन्द्र योगी ने पुनर्स्थापित किया था। मणिपुरी- यह नृत्य शैली विशेषतः मणिपुर प्रदेश की है। इस शैली में राधा और गोपियों के कृष्ण से अलग होने की व्यथा प्रदर्शित होती है। यह शैली रासलीला पर आधारित है। इस शैली में मुख्य अभिनय को ज्यादा भाग नहीं दिया जाता। एक ही निश्चित रस को संप्रेषित करने के लिए शरीर के संपूर्ण भाग का उपयोग किया जाता है। कथकली- यह केरल की प्रसिद्ध नृत्य शैली है। इस शैली में रंगीन परिधानों का विशेष महत्व है। इस शैली में कथा संदर्भों का हस्त मुद्राओं के द्वारा अभिनय प्रस्तुत किया जाता है। इसमें कलाकार ना बोलते हैं

ना गाते हैं। इसका साहित्यिक रूप अटक्कथा है। इस शैली में कथा का विषय भारतीय इतिहास से लिया जाता है।

हमारी भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है 'आध्यात्मिकता'। प्राचीन काल में ऋषिमुनि, तपस्वियों की तपोभूमि 'भारत' में योग तथा आध्यात्मिकता व्याप्त है। शुद्ध सात्विक विचार, स्वच्छता, चिंतन मनन तथा आत्मा का परमात्मा में एक होना हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है। अध्यात्मिकता स्थूल शरीर से सूक्ष्म की ओर का मार्ग है। अध्यात्म धर्म से परे है। अध्यात्म निराकार ब्रह्म को मानता है। हमारे देश में अनेकों मुनि हुए हैं जो अध्यात्म के द्वारा दिव्यदृष्टि तक जा पहुंचे हैं। अध्यात्म के द्वारा हमारे विचार, मन, वचन, कर्म सभी शुद्ध और सात्विक हो जाते हैं। वे व्यक्ति भौतिकता से बंधे नहीं रहते हैं। इंद्रियों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। आध्यात्मिक व्यवहार में ध्यान, प्रार्थना, तथा चिंतन का समावेश है। वे नकारात्मक उर्जा से सकारात्मक उर्जा की ओर प्रस्थान करते हैं। इन सब मोह-माया से दूर, वे दैविय ऊर्जा में परिवर्तित हो जाते हैं। दृढ़ इच्छाशक्ति की प्राप्ति होती है। सत्य की प्राप्ति होने लगती है। अध्यात्म से संतुष्टि एवं मन शांति मिलती है। पूर्णता का एहसास होता है। स्वयं का स्वयं से साक्षात्कार होता है। आध्यात्मिकता से व्यक्ति के आंतरिक जीवन की अंतर यात्रा आरंभ होती है। जो व्यक्ति को परिष्कृत करके निर्मल बनाती है और आनंदमय करती है। इस स्थूल शरीर में रहकर भी व्यक्ति का परमात्मा के विराट रूप को प्राप्त करना केवल अध्यात्मिकता द्वारा ही संभव है।

भारतीय संस्कृति की अमिट छाप हमें योग कला में दिखाई देती है। प्राचीन भारत में योग ऋषि-मुनियों द्वारा किया जाता था। परंतु आज योग जन-जन की आत्मा में बस चुका है। योग कला हमारे देश की ऐतिहासिक परंपरा है। आज हमारा देश ही नहीं अपितु पूरा संसार योग में विश्वास करता है। हमारे प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने योग को एक नया आयाम दिया। उन्होंने 21 जून को 'योग दिवस' के रूप में मनवाया और स्वामी रामदेव जी योगगुरु कहलाए। आज भारतीय संस्कृति का समस्त विश्व अनुकरण करता है। योग क्रियाएं शरीर को स्वस्थ रखने के साथ-साथ मन मस्तिष्क को भी स्वस्थ और ऊर्जावान रखती है। योग मुद्राएं शरीर को फुर्तीला बनाती हैं और आत्मविश्वास विकसित करती हैं। योग धर्म-जाति से परे, मूर्त से अमूर्त की ओर यात्रा है। प्राणायाम व्यक्ति को एक अलग स्तर पर ले जाते हैं। श्वास क्रिया से हमारे अंदर विशेष शक्ति उत्पन्न होती है जिससे आत्मविश्वास व दृढ़ इच्छा शक्ति बढ़ती है। योग क्रियाओं से विभिन्न प्रकार की असाध्य बीमारी जैसे: कैंसर, थायराइड, शुगर, बी.पी. तथा दिल की बीमारियां आदि पूर्ण रूप से ठीक हो जाती हैं। महर्षि पतंजलि ने योग को 8 भागों में बांटा है, जिसे ''अष्टांग योग'' कहा जाता है। यह है:- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। महर्षि पतंजलि योग को इच्छाओं पर विजय प्राप्त करने वाला बताते हैं। हमारे विश्व गुरु स्वामी रामदेव जी ने योग को घर-घर पहुंचाया। स्थान स्थान पर योग शिविर लगाए तथा टेलीविजन के द्वारा स्वामी जी ने योग को समस्त विश्व में व्याप्त कर दिया। विभिन्न प्रकार के आसन शरीर को रोगों से मुक्त रखते हैं।

भारतीय संस्कृति की एक झलक शिक्षा पद्धति में भी दिखाई पड़ती है। हमारे देश की प्राचीन शिक्षा पद्धति में औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों प्रकार की शिक्षाओं का प्रभाव रहा है।

प्राचीन समय में शिक्षा गुरुकुलों में, मंदिरों में, आश्रमों में तथा मठों के माध्यम से दी जाती थी। शिक्षा-ग्रहण के लिए शिष्य का उपनयन संस्कार किया जाता था। हमारे देश की गौरवशाली संस्कृति, विरासत और प्रगति का मूल आधार पुराने समय में तत्कालीन शिक्षा ही थी। वैदिक काल से ही शिक्षा उच्च कोटि की थी। प्रारंभ से ही हमारे देश में महान विभूतियां हुई हैं। जिन्होंने शिक्षा के नए कीर्तिमान गढ़े हैं। शिष्य-गुरु का संबंध अतुलनीय कहा गया है। गुरु का स्थान भगवान से भी ऊपर बताया गया है। गुरुओं में महर्षि वाल्मीकि, वशिष्ठ, संदीपनी तथा कण्व आदि है। तथा विशेष शिष्यों में श्री राम, श्री लव-कुश, तथा श्री कृष्ण आदि हुए हैं। हमारी शिक्षा पद्धति में दर्शन शास्त्रों के साथ-साथ व्याकरण, ज्योतिष तथा नागरिक शास्त्र का भी ज्ञान कराया जाता था। गुरु कुछ नगर तथा ग्रामों से दूर, खुले स्थान में होते थे। प्रकृति के सानिध्य में शिक्षा ली जाती थी। शिष्य को एकांत तथा पवित्र वातावरण प्राप्त कराया जाता था जिससे उनका समुचित विकास हो सके। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य तथा माधवाचार्य आदि गुरु मठों में परीक्षा देते थे। इसके बाद शिक्षा के सर्वाधिक महत्वपूर्ण और विख्यात केंद्र हुए ''तक्षशिला'' और ''नालंदा विश्वविद्यालय''। नालंदा में महायान बौद्ध धर्म तथा हीनयान बौद्ध धर्म के साथ-साथ अनेक धर्मों के छात्र पढ़ते थे। यहां दस हजार छात्रों को पढ़ाने के लिए दो हजार शिक्षक थे।

विख्यात चीनी यात्री ह्वेनसांग ने यहां पर एक वर्ष एक विद्यार्थी तथा एक शिक्षक के रूप में व्यतीत किया था। बौद्ध सारिपुत्र यहीं पर जन्मे थे। वर्तमान बिहार में स्थित है। इसे देश का प्राचीनतम विश्वविद्यालय माना जाता है। तक्षशिला को विश्व के प्राचीनतम विश्वविद्यालयों में माना जाता है। तक्षशिला प्राचीन भारत में गांधार देश की राजधानी थी। यहां के आचार्य चाणक्य थे। वर्तमान में यह पाकिस्तान में स्थित है। इसका उल्लेख वैदिक काल में मिलता है। तक्षशिला विश्वविद्यालय राजनीति और शस्त्र विद्या की शिक्षा का अन्यतम केंद्र था। यहां राजकुमार शिक्षा ग्रहण करते थे। आयुर्वेद तथा विधिशास्त्र का विशेष ज्ञान कराया जाता था। तक्षशिला में आयुर्वेद, धनुर्वेद, हस्तिविद्या, व्याकरण, दर्शनशास्त्र, गणित, ज्योतिष, वाणिज्य, सर्प विद्या तथा तंत्र विद्या जैसी उच्च स्तरीय विद्याएं पढ़ाई जाती थीं।

अत: भारत की संस्कृति अद्वितीय है, बहुआयामी है। जिसमें हमारे देश का इतिहास, भूगोल और सिंधु घाटी की सभ्यता के साथ विकसित होकर आगे चलता 'वैदिक काल' में वेदों, बौद्ध धर्म, सनातन धर्म एवं स्वर्ण युग की शुरुआत, और अंत के साथ फली फूली अपनी स्वयं की विरासत में शामिल है।

गीता सिंह, खुर्जा, उत्तर प्रदेश

✧ ✧ ✧

छत्तीसगढ़ी भाषा- इतिहास, संस्कृति एवं साहित्य

डॉ. राजेश कुमार मानस 'श्याम'

डॉ. नरेन्द्र देव वर्मा ने उपर्युक्त काल निर्धारण के परिप्रेक्ष्य मे छत्तीसगढ़ी लोकगीतों को आधार बनाया है। गाथायुग में उन्होंने जहाँ प्रेम प्रधान, वीरोचित छत्तीसगढ़ी लोक गाथाओं को समाहित किया है वहीं मध्ययुग की वीरगाथाओं में छत्तीसगढ़ी लोकगाथा फुलकुवर, देवीगाथा, नगेसर कैना, ढोलामारू, लोरिकचंदैनी और रायसिंह का पंवारा आदि ऐतिहासिक लोकगाथाओं का समाहार भी किया है। धार्मिक और सामाजिक गीत परम्परा में कबीरदास के प्रिय शिष्य धरमदास एवं गुरूघासीदास के पंथी गीतों को उद्धृत किया है।

छत्तीसगढ़ी भारत मे छत्तीसगढ़ प्रांत मे बोली जाने वाली भाषा है। यह हिंदी के काफी निकट है और इसकी लिपि देवनागरी है। प्रो. ग्रियसण्न ने इसे पूर्वी हिंदी भाषा समूह मे माना है। इसका अपना साहित्य है। छत्तीसगढ़ी दो करोड़ लोगो की अपनी मातृभाषा है जो पूर्वी हिंदी की प्रमुख बोली है और छत्तीसगढ़ राज्य की प्रमुख भाषा है। यह निर्विवाद सत्य है कि छत्तीसगढ़ी का अधिकतर जीवन छत्तीसगढ़ी के सहारे ही गतिमान है। यह अलग बात है कि गिने चुने शहरो के कार्यव्यापार मे राष्ट्र व्यापी हिंदी या अन्य क्षेत्रीय बोलियो के सहारे सम्पर्क होता है एक तरह से यह छत्तीसगढ़ राज्य की सम्पर्क भाषा है । वस्तुतः छत्तीसगढ़ राज्य के नामकरण के पीछे उसकी भाषिक विशेषता भी है।

लगभग सौ वर्षो से अधिक सृजनात्मक एवं सांस्कृतिक विकास यात्रा को वरण करने वाला छत्तीसगढ़ी साहित्य अब तथा कथित संशयो एवं आशंकाओ के धुंधा से विमुक्त होक-बने स्वीकार कर लिया है। छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य पर विविध दृष्टियो एवं अन्यान्य बिन्दुओ से अनेकशः शोधकार्य हुए है। छत्तीसगढ़ी शिष्टसाहित्य पर ज्यादा प्रकाश नही पड़ पाया था, कारण पत्र-पत्रिकाओ की अल्पता और रचनाकारो को प्रकाशन मंच का अभाव तथा शोधार्थियो के लिए विपुल शोध सामग्री की अनुपलब्धता। यद्यपि छत्तीसगढ़ी साहित्य का इतिहास लगभग एक शताब्दी का है तथापि स्वतंत्रता के पश्चात इसमे जो विस्तार और हिंदी के समानांतर

अग्रसरित होने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है वह छत्तीसगढ़ी बोली को भाषा के रूप मे संपोषित संस्थापित करने का साक्ष्य संजोती है। सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ी साहित्य अपने प्रारम्भ से लेकर अद्य:पर्यन्त हिंदी साहित्य की ही भांति विकास, संघर्ष और परिवर्तन के सोपानो को समाहित करने वाला साहित्य है ।

छत्तीसगढ़ी भाषा अर्धमागधी की पुत्री और अवधी की सहोदरा मानी जाती। प्रो. ग्रियर्सन ने इसे पूर्वी हिंदी समूह की प्रमुख बोली के रूप मे माना है। अवधी और छत्तीसगढ़ी-दोनो छत्तीसगढ़ी भाषा मे रचित साहित्य परम्परा का आरंभ एक हजार वर्ष पूर्व हुआ था, यह बात अलग है कि इस भाषा मे प्रभूत मात्रा मे साहित्य सृजन के प्रमाण अनुपलब्ध है। हिंदी साहित्य के विकास युग की तरह छत्तीसगढ़ी साहित्य मे भी विभिन्न कालों मे रचित साहित्य की पुष्टि के साक्ष्य आज विद्यमान है। स्व. डॉ .नरेंद्र देव वर्मा ने सहस्त्र वर्षो की छत्तीसगढ़ी साहित्यिक परम्परा को विभिन्न युगों में अग्र अंकित आधार पर विभाजित किया है --

1 . गाथायुग (सन् 1000 से 1500 ई.तक)
2. भक्तियुग (सन् 1500 ई. से1900 ई. तक)
3. आधुनिक युग (सन् 1900 ई. से वर्तमान तक)

डॉ. नरेन्द्र देव वर्मा ने उपर्युक्त काल निर्धारण के परिप्रेक्ष्य मे छत्तीसगढ़ी लोकगीतों को आधार बनाया है। गाथायुग में उन्होंने जहाँ प्रेम प्रधान, वीरोचित छत्तीसगढ़ी लोक गाथाओं को समाहित किया है वहीं मध्ययुग की वीरगाथाओं में छत्तीसगढ़ी लोकगाथा फुलकुवर, देवीगाथा, नगेसर कैना, ढोलामारू, लोरिकचँदैनी और रायसिंह का पंवारा आदि ऐतिहासिक लोकगाथाओं का समाहार किया है। धार्मिक और सामाजिक गीत परम्परा में कबीरदास के प्रिय शिष्य धरमदास एवं गुरूघासीदास के पंथी गीतों को उद्धृत किया है। आधुनिक युग के अन्तर्गत छत्तीसगढ़ी शिष्टसाहित्य का इतिहास क्रमानुसार विधागत अध्ययन के साथ स्व. श्री वर्मा के द्वारा प्रथमत:प्रस्तुत किया जाना विशिष्ट कहा जा सकता है।

डॉ. नरेन्द्र देव वर्मा द्वारा विश्लेषित छत्तीसगढ़ी शिष्टसाहित्य का इतिहास वास्तव मे छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का इतिहास है, शिष्टसाहित्य का इतिहास नही। डॉ. वर्मा छत्तीसगढ़ी साहित्य को अति प्राचीन सिद्ध करने के मोह में लोक साहित्य को ही शिष्टसाहित्य के रूप मे स्थापित कर रहे हैं। लोक साहित्य में युगानुकूल लोक तत्वों का अन्वेषण पृथक अध्ययन का विषय हो सकता है, लेकिन लोक साहित्य को कालक्रम में बांटकर अध्ययन करना भ्रमपूण स्थितियों को ही निरूपित करता है। छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि इसमे प्रागैतिहासिक, वैदिक, रामायण और महाभारत काल के तत्व अक्षुण्ण है। बाबू प्यारेलाल गुप्त जी छत्तीसगढ़ी काव्य का प्रारंभिक उत्थान बाबू रेवा राम के भजनो को मानते है। उनके अनुसार इनके (बाबू रेवा राम) बनाए हुए भजनो का छत्तीसगढ़ में इतना प्रचार हुआ कि जितना तुलसीदास कृत रामचरित मानस को छोड़कर कदाचित् किसी दूसरे धार्मिक साहित्य का नहीं। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि रेवा राम बाबू का ''गुटका'' हिंदी के अनेक संत कवियों के पदों का संग्रह है।

वास्तविक रूप में यही कहा जाना श्रेयस्कर होगा कि 20वीं शताब्दि के प्रथम दशक में छत्तीसगढ़ी साहित्य का उद्‌भव हुआ और इनके जनक पं. लोचनप्रसाद पाण्डेय माने जाते हैं। सन् 1904 में पं. लोचन प्रसाद पाण्डेय की कुछ एक रचनाएँ आई। सन् 1904 में पाण्डेय जी ने छत्तीसगढ़ी में एक नाटक लिखा ''किलकाल'' हिन्दीमास्टर में उसके दो अंश प्रकाशित हुए। इसके पूर्व हिन्दी मास्टर में ही उन्होंने छत्तीसगढ़ी से 'एक बात' शीषर्क से लेख लिखकर छत्तीसगढ़ को जागृति का संदेश दिया था।

छत्तीसगढ़ को नींद से जगाने के प्रयास में उन्होंने छत्तीसगढ़ी व्याकरण को परिवर्धित, संशोधित और सुसंपादित कर पुन: प्रकाशित करवाया। उन्हीं दिनों सन् 1909 में उन्होंने छत्तीसगढ़ के लिए ''बंदनागीत'' की रचना की। इन्हीं दिनों 1915 में पं. सुन्दर लाल शर्मा ने कुछ कविताएँ लिखीं, उनके द्वारा रचित छत्तीसगढ़ी ''दानलीला'' प्रकाशित हुई। 1924 तक इसके चार संस्करण

इस प्रकार छत्तीसगढ़ में छत्तीसगढ़ी भाषा के प्रति अस्मिता और मान का प्रारंभ हुआ और प्रारंभिक रूपों में रचनाकारों ने अपनी तरह से रचनाओं का प्रणयन कर शनैः-शनैः छत्तीसगढ़ी भाषा को संवर्धित परिपोषित करने हेतु रचनाएँ साहित्य का लेखन कार्य किया परन्तु सन् 1935 से 1960 के आते तक छत्तीसगढ़ी में अनेक मूर्धन्य रचनाकारों का आगमन हुआ और उनके लेखन से साहित्य के क्षेत्र में छत्तीसगढ़ी भाषा का कोष भरने लगा उनका रूप दिव्य और दैदिप्यमान हो उठा तथा भाषा के साहित्य में यह जगमगाने लगा यथा इन रचनाकारों में पं. द्वारिका प्रसाद तिवारी ''विप्र'', बाबू प्यारेलाल गुप्त, पं. कुंजबिहारी चौबे, कोदूराम दलित, श्याम लाल चतुर्वेदी, हरिठाकुर, नारायण लाल परमार, हनुमंत नायडू, विमल कुमार पाठक, डॉ. बल्देव, डॉ. विनय कुमार पाठक, डॉ. पालेश्वर प्रसाद शर्मा आदि प्रमुख रूप मे माने जाते हैं। इनके साहित्य से छत्तीसगढ़ी का कोष जो रिक्त था, उन्नत हो गया और उत्तरोत्तर आगे बढ़ने लगा। इस काल में सभी प्रकार की रचनाएँ साहित्य के रूप मे आने लगी और गद्य तथा पद्य का स्वरूप परिनिष्ठित होने लगा।

प्रकाशित हुए। दोहा और चौपाई में रचित ''छत्तीसगढ़ी दान लीला'' भगवान् श्रीकृष्ण और गोपियों के मधुर प्रेम का सरस काव्य है।

सन् 1919 में पं. शुकलाल प्रसाद पाण्डेय की कृति ''पुरू झुरू'' प्रकाशित हुई। यह शेक्सपियर के नाटक जिसका हिन्दी अनुवाद गंगा प्रसाद पाण्डेय ने ''कॉमेडी ऑफ ऐरर'' शीषर्क से किया था, का छत्तीसगढ़ी मे भावानुवाद है।

''छत्तीसगढ़ी -सुराज '' (1930) के कवि गिरिवर दास वैष्णव का जन्म ग्राम माचाधार तह. बलौदाबाजार में संवत् 1954 में हुआ था। उनकी कविताओं में देश और समाज से जुड़ा

जनवादी स्वर देखने को मिलता है। सन् 1954 में पं. कपिल नाथ मिश्र की कृति ''खुसरा-चिर ई के बिहाव ''प्रकाशित हुई। बाबू प्यारेलाल गुप्त ने सन् 1945में प्रकाशित ''भानु अभिनंदन ग्रंथ'' में भानु जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व लेख में ''खुसरा चिर ई के बिहाव'' नामक कृति को भानु जी की कृति कहा है। उनके अनुसार ग्राम वासियो के आग्रह पर भानु जी ने उनके विनोदार्थ ''खुसरा चिर ई के बिहाव ''का प्रणयन किया अर्थात् यह संग्रह 1945 के पूर्व लिखी होनी चाहिए। परन्तु यह कृति कभी देखने को नही मिली अत: इस पर मतभिन्नता बरकरार है।

बाबू बोधी सिंह ''प्रेम '' सक्ती के निवासी अखिल भारत राजगोड़ क्षत्रिय महासभा के संयोजक थे। उनकी कृतियां हमें देखने को मिलतीहै जिनमें (कोइलारी दशन 1937 में प्रकाशित) अमृतांजलि, भूत लीला प्रमुख है। बाबू बोधी सिंह को अपनी भाषा से बड़ा प्यार था।

इस प्रकार छत्तीसगढ़ में छत्तीसगढ़ी भाषा के प्रति अस्मिता और मान का प्रारंभ हुआ और प्रारंभिक रूपों में रचनाकारों ने अपनी तरह से रचनाओं का प्रणयन कर शनै: -शनै: छत्तीसगढ़ी भाषा को संवर्धित परिपोषित करने हेतु रचनाएँ साहित्य का लेखन कार्य किया। परन्तु सन् 1935 से 1960 के आते तक छत्तीसगढ़ी में अनेक मूर्धन्य रचनाकारों का आगमन हुआ और उनके लेखन से साहित्य के क्षेत्र में छत्तीसगढ़ी भाषा का कोष भरने लगा उनका रूप दिव्य और दैदिप्यमान हो उठा तथा भाषा के साहित्य में यह जगमगाने लगा यथा इन रचनाकारों में पं. द्वारिका प्रसाद तिवारी ''विप्र'', बाबू प्यारेलाल गुप्त, पं. कुंजबिहारी चौबे, कोदूराम दलित, श्याम लाल चतुर्वेदी, हरिठाकुर, नारायण लाल परमार, हनुमंत नायडू, विमल कुमार पाठक, डॉ. बल्देव, डॉ. विनय कुमार पाठक, डॉ. पालेश्वर प्रसाद शर्मा आदि प्रमुख रूप मे माने जाते हैं। इनके साहित्य से छत्तीसगढ़ी का कोष जो रिक्त था उन्नत हो गया और उत्तरोत्तर आगे बढ़ने लगा। इस काल में सभी प्रकार की रचनाएँ साहित्य के रूप मे आने लगी और गद्य तथा पद्य का स्वरूप परिनिष्ठित होने लगा।

लोक गीतों की परम्परा की दृष्टि से यह अंचल अत्यंत समृद्ध है। यहाँ गाथागीत, कबीर पंथी गीत, सतनामी गीत, पंडवानी, फूलबासन, लोरिकचंदैनी गीत, प्रशस्ति गीत, व्रत, अनुष्ठान गीत, सोहर, जसगीत, पव गीत, गौरा गीत, सुआ गीत, ददरिया, बांसगीत, फुगड़ी गीत, करमा गीत, बालगीत, एवं अन्य ढेर सारे सांस्कृतिक गीतों का प्रचलन है। आज समय के साथ यह अंचल भी परिवर्तित हो गया है। वर्तमान में प्रवासी निवासियों, व्यवसायिकों, श्रमिकों, आधुनिक युवा समाज के लोगो में अन्यान्य संस्कृति व भाषा के गीत-संगीत का प्रयोग हो रहा है।

डॉ. सुधीर शर्मा छत्तीसगढ़ी की दशा और दिशा पर अपने महत्वपूर्ण विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं- ''छत्तीसगढ़ी साहित्य की नींव वर्षो पूर्व रख दी गई थी लेकिन उस पर भव्य इमारत बनने में अत्यधिक समय लग रहा है। पद्य और गद्य की रचनाओं के सृजन में काफी लम्बा अंतर रहा है। छत्तीसगढ़ी की कविता तो समृद्ध हो गई लेकिन गद्यों की दुनिया सीमित रह गई। लगभग सौ

वर्षो की सक्रिय यात्रा में छत्तीसगढ़ी साहित्य ने भावनाओं का एक घेरा अपने इर्द-गिर्द बना लिया। इस घेरे ने जहाँ छत्तीसगढ़ राज्य को जन्म और छत्तीसगढ़ी की अस्मिता को सम्मान दिया वहीं साहित्य इस घेरे से बाहर निकलने के लिए छटपटाता रहा। दूसरी ओर छत्तीसगढ़ी साहित्य के मर्म को समझकर लोक संस्कृति ने दुनिया की सैर की।''

आज छत्तीसगढ़ी कहानियों और उपन्यासों में नई चेतना कसमसा रही है। नए परिवेश में नई कलम कुछ करने की ललक दिखा रही है। ऐसे में छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण के बाद छत्तीसगढ़ी साहित्य के अतीत, वर्तमान और भविष्य को पुन: खंगालने की आवश्यकता प्रतिपादित हुई।

छत्तीसगढ़ी में अब तक के ज्ञात एवं अज्ञात रचना संग्रहों में रचनाकारों सहित निम्न प्रमुख माने गये हैं यथा -- पं. लोचन प्रसाद पाण्डेय कृत ''कविता कुसुम'' (1907-1908) 1904 में प्रकाशित ''हिन्दी मास्टर'', नरसिंह दास वैष्णव कृत ''शिवायन'' (1904), पं. शुकलाल प्रसाद पाण्डेय ''गीयां'' (1918) पं. बंशीधर पाण्डेय ''छत्तीसगढ़ी महात्म्य'' पं. द्वारिका प्रसाद तिवारी ''विप्र''- ''कुछु कॉहीं'' (1935) ''सुराज गीत'' (1957) ''राम अऊ केंवट संवाद'', फागुन गीत ''प्रमुख संग्रह जिनमें'' धमनी हाट ''विशेष रहे, श्याम लाल चतुर्वेदी'' पर्रा भर लाई ''रंजन लाल पाठक'' ''एक ले एक उकिल'' तथा ''देवारी के दिया'', पुरूषोत्तम लाल ''कॉग्रेस आल्हा'' (1930) शुकलाल कंसारी ''संवत् दू के गीत'' ''संवत् आठ के गीत'' ''संवत् दस के गीत'' ''संवत् ग्यारह के गीत'' ''संवत् बारह के गीत'' गिरिवर दास वैष्णव ''छत्तीसगढ़ी सुराज'' (1935) कोदूराम दलित की रचनाएँ, कुंजबिहारी चौबे की राष्ट्रीय, देश प्रेम की रचनाएँ, लाला जगदलपुरी की हल्बी रचनाएँ, हनुमंत नायडू रचित गीत प्रथम छत्तीसगढ़ी सिनेमा ''कहि देबे संदेश'', मुकुटधर पाण्डेय कृत कालिदास का ''मेघदूत'' छत्तीसगढ़ी अनुवाद, डॉ. विमल कुमार पाठक ''गंवई के गीत'' (1961) हरिठाकुर ''सुरता के चंदन'' (1967) पं. दानेश्वर शर्मा ''मड़ई'' ''बेटी के बिदा'', देवीप्रसाद वर्मा (बच्चू जांजगीरी) ''पाना करत हे सिंगार'' ''ए जिनगी पानी के गज गजा'' ''ढोंगी मन माला जपय'', हेमनाथ यदु की रचनाएँ, नारायण लाल परमार ''सोन के माली'' विद्याभूषण मिश्र ''छत्तीसगढ़ी गीत माला'' लखन लाल गुप्त ''संझौती के बेरा'' (1968) डॉ. महेंद्र कश्यप ''राही'' ''चंदा'' रमेश अधीर ''घरघुंदिया'' गयाराम साहू ''रखिया'' मैथ्यू जहानी जर्जर ''सुकाल सपना'' बाबू लाल सीरिया ''गमकत गीत'' डॉ. माधो प्रसाद गुप्त ''पंखुरी पुरईन'' रामेश्वर वैष्णव ''नोनी बेंदरी'' मुकुंद कौशल ''भिनसार'' बद्री विशाल परमानंद ''पिंवरी लिखे तोर भाग'' (1987) नारायण बरेठ ''कागज में कुआँ'' (1997) हर प्रसाद निडर ''भारत माता धरती दाई'' (1997) गिरिवर दास मानिकपुरी ''लबरा के नौ नांगर'' (1998) अखेचंद क्लांत ''नवा सुरूज नवा अंजोर'' (1968) ''भोजली गीत'' (1968) ''सुघ्घर गीत'' सम्पादन डॉ. विनय कुमार पाठक (1967) स्व. ब्रजलाल शुक्ल ''चंदा ऊए अगास में'' (1969) गयाराम साहू ''जागिस छत्तीसगढ़ के माटी'' (1969) सीताराम शर्मा ''धरती के भगवान'' (1970) स्व. कपिलनाथ कश्यप ''अब तो जागौ रे'' (1970) शकुन्तला शर्मा

''रश्मि'' -- ''चंदा के छांव में'' (1971) श्री भरत लाल तिवारी ''नवा बिहान'' (1972) गयाराम साहू ''रखिया'' (1972) राजेंद्र प्रसाद तिवारी ''भुंईया के पाकिस चुंदी'' (1972) डॉ. विनय कुमार पाठक ''अकादसी'' (1974) पुन: प्रकाशित ''अकादसी अऊ अनचिन्हार'' (1997) देवधर दास महंत ''बेलपान'' (1975) ''अरपा नदिया'' (1983) कृष्ण मोहन अग्रवाल एवं संतराम देशमुख ''सुता'' (1977) दिलीप सिंह ठाकुर ''उत्ती'' (1977) मुरारीलाल साव एवं संतराम साहू ''गुरतुर-चुरपुर'' (1981) एवं ''मिरचा पताल'' (1982) प्यारेलाल देशमुख ''गुरतुर गीत'' (1996) निशीथ पाण्डेय ''पैडगरी'' (1998) एवं ''सरलग'' (2001) जे.आर.सोनी ''जांवर जोड़ा'' (1998) ये सभी प्रकाशित संग्रह हैं। इनमें से अधिकतर रचनाएँ प्रयास प्रकाशन से प्रकाशित है।

इस तरह छत्तीसगढ़ी साहित्य का कोष बढ़ता रहा और अब जबसे राजभाषा छत्तीसगढ़ी हुआ है, तब से इसमे लिखने की ललक रचनाकारों में बढ़ गई है और लगातार हर प्रकार की साहित्य की रचना हो रही है जिसमें काव्य एवं अनुवाद तो अग्र पंक्ति में है और इनके पश्चात कहानी और उपन्यास आदि भी अब गतिमान हैं। इन सबसे यह कहना समीचीन होगा कि आज के संदर्भ मे छत्तीसगढ़ी भाषा का उत्तरोत्तर विकास हो रहा है और साहित्य का कोष भी लगातार बढ़ रहा है। संस्कृत, कला तो पहले से है ही जिन पर भी लगातार काम होने से देश दुनिया मे उनकी भी ख्याति अब फैलने लगी है। अब लोग पंडवानी और राउत नाच को लोग जानने लगे हैं। कुल मिलाकर आने वाला समय छत्तीसगढ़ी भाषा, साहित्य, संस्कृति और कला के लिए उत्तरोत्तर विकास का समय होगा यही हमें परिलक्षित होता है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. छत्तीसगढ़ी साहित्य दशा और दिशा नंदकिशोर तिवारी वैभव प्रकाशन - अमिन पारा रायपुर (छ.ग.)
2. छत्तीसगढ़ी भाषा साहित्य व संस्कृति के विकास में डॉ. विनय कुमार पाठक का योगदान डॉ. मनीष कुमार दीवान छत्तीसगढ़ टूडे पब्लिकेशन (कोटा) रायपुर (छ.ग.)
3. स्मारिका छत्तीसगढ़ राजभाषा आयोग (2016)
4. स्मारिका छत्तीसगढ़ राजभाषा आयोग (2017)
5. छत्तीसगढ़ी साहित्य दशा और दिशा "लेप से डॉ. सुधीर शर्मा (नंदकिशोर तिवारी वैभव प्रकाशन अमिन पारा रायपुर (छ.ग.)

डॉ. राजेश कुमार मानस 'श्याम', ''मानस भवन'', लक्ष्मी चौक, चिंगराजपारा,
बिलासपुर (छ.ग.)–495006, मो. : 9827915378, ई–मेल : dr.rajeshmanas65@gmail.com

आलेख

डॉ. श्री पाल सिंह क्षेम की काव्य सर्जना

बृजेश आनन्द राय

'नीलम ज्योति और संघर्ष' दो भाग में है। इसमें प्रेम की उत्फुल्लता, सौन्दर्य की पिपासा, उद्दाम आकर्षण, व्यग्रता आदि के साथ प्रेम में मिली पीड़ा, प्रिय के अभाव की प्रतीति, प्रिय के न मिल पाने की व्यग्रता, विरह की तीव्रता, प्रिय से मिलन के अनिश्चय की उद्विग्नता है। कुछ गीतों में छायावादी अलौकिकता की अनुभूति भी है। जैसे- 'कौन है रश्मि पथ पर चला जा रहा', तार बीना के मधुर छिप-छिप बजाता कौन अथवा 'ले चला मझधार कोई' इसी प्रकार के गीत हैं। रहस्यानुभूति के ऐसे गीत बहुत कम हैं।

2 सितंबर 1922 में जनपद जौनपुर जन्म लिए डॉ. श्री पाल सिंह 'क्षेम' छायवादोत्तर गीत-धारा के महत्वपूर्ण कवि हैं। उनके प्रमुख काव्य रचनाओं में-जीवन तरी (1952), नीलम ज्योति और संघर्ष (1954), रूप तुम्हारा-प्रीत हमारी (1967), राख और पाटल (1973), अन्तर्ज्वाला (1973) रूपगंधा-गीत गंगा, मुक्त कुन्तला, एक पत्र पुरवा के नाम, यह देश हमारे सपनों का तथा कृष्ण द्वैपायन महाकाव्य।

समीक्षा ग्रन्थ-छायावादी काव्य साधना (1953), छायवाद के गौरव चिह्न (1955) व शोध ग्रन्थ छायावादी काव्य की पृष्ठ भूमि है।

डा. क्षेम के आरम्भिक गीत संग्रहों में प्रेम, नारी सौन्दर्य, वेदना, मानव- मूल्य तथा प्रकृति सौन्दर्य की झलक है। वैसे क्षेम के आरम्भिक गीत संग्रहों की मुख्य धारा सौन्दर्य और प्रेम है। लेकिन इस सौन्दर्य और प्रेम का लौकिक धरातल है। छायवादियों के समान न तो अमूर्त सौन्दर्य की वायवीय कल्पना यहाँ है न अपार्थिव स्वरूप है। गीतकार के जीवन में प्रेम और वेदना का गहरा प्रभाव है। लेकिन प्रथम संग्रह 'जीवन तरी' के गीतों की सौन्दर्य चेतना, प्रेम की प्रगाढ़ता और भाषा के आकर्षक रूप ने डा. क्षेम को छायवादोत्तर कालीन गीतकारों में प्रतिष्ठित किया। क्षेम के लिए 'प्रेम' जीवन की वह प्राणधारा है जिसके माध्यम से ही जीवन के सत्य का अनुभव हो सकता है। छायवादोत्तर काल के अधिकांश गीतकारों का मुख्य विषय सौन्दर्य और प्रेम था।

उन गीतकारों ने अनुभव किया था कि जीवन अस्थिर और क्षणभंगुर है। यहाँ केवल रूप और सौन्दर्य ही सत्य है। लेकिन इनसे हटकर क्षेम ने अपने प्रेम गीतों की पहचान अलग बनाई। प्रकृति के सौन्दर्य को मानवमन सदैव ने आत्मसात किया है।

'' .....फिर चाँदनी डहक जाएगी.....।
तुम कस्तूरी केश न खोलो सारी रात महक जाएगी।।''

विरह और मिलन से प्राप्त होने वाले सुख और दुख में समान अनुभूति को प्राप्त करने वाला गीतकार प्रेम को आस्था और विश्वास का आधार मानता है। प्रेम सर्व व्यापी है। वह सबके हृदय में लहराता है-

''जीवन का वरदान यही-सुख भी दो क्षण, दुख भी दो क्षण!
जाने दो प्रेयसी, जाने दो!!''

जीवन आकाश के समान विस्तृत है और प्रेम उसमें नयी चेतना का उन्मेष करता है। गीतकार का प्रिय बहुत आकर्षक है। इसलिए गीतकार उसे स्वपन की तरी कहता है। डा. क्षेम ने अपनी प्रियतमा के लिए जितने कोमल और ऐन्द्रिय विम्बधर्मी विशेषणों का चयन किया है, उतना किसी अन्य गीतकार ने नहीं किया है। कवि के मन में रूप की उद्दाम पिपाषा है। वह अपनी प्रियतमा को राकापरी कहता है। वह उसके बिना न सो सकता हैं न जी सकता हैं न स्वप्न देख सकता हैं। 'स्वप्न तुम्हारा प्रीति हमारी' मे कहते हैं---

''रूप की रश्मि बीमार दीखे जहाँ, साँस मेरी वहीं पर ठहर जायेगी।
रोशनी हो रही हो जहाँ अनमनी साँझ मेरी वहीं पर ठहर जाएगी।।''

इस तरह से सारी प्रकृति में अपनी प्रियतमा के रूप को गीतकार प्रतिबिम्बित होता हुआ देखता है। यह प्रतिबिम्ब ऐन्द्रिय है, इसलिए छायावादियों की विराट चेतना अथवा वायवीयता से क्षेम की सौन्दर्य चेतना अलग हो जाती है। मानवीय मूल्य और प्रकृति के सन्दर्भ भी इस काल के गीतों में है लेकिन यह स्वर दबा हुआ लगता है।

'नीलम ज्योति और संघर्ष' दो भाग में है। इसमें प्रेम की उत्फुल्लता, सौन्दर्य की पिपासा, उद्दाम आकर्षण, व्यग्रता आदि के साथ प्रेम में मिली पीड़ा, प्रिय के अभाव की प्रतीति, प्रिय के न मिल पाने की व्यग्रता, विरह की तीव्रता, प्रिय से मिलन के अनिश्चय की उद्विग्नता है। कुछ गीतों में छायावादी अलौकिकता की अनुभूति भी है। जैसे- 'कौन है रश्मि पथ पर चला जा रहा', तार बीना के मधुर छिप-छिप बजाता कौन' अथवा 'ले चला मझधार कोई' इसी प्रकार के गीत हैं। रहस्यानुभूति के ऐसे गीत बहुत कम हैं।

नीलम ज्योति और संघर्ष के दूसरे भाग के गीतों में रूमानी कल्पनाका आधिक्य है। प्रेमानुभूति की विह्वलता, प्रेम की उत्फुल्लता, समर्पण की लालसा, मिलन के अनिश्चय की उद्विग्नता, प्रिय से एकाकार हो जाने की आतुरता आदि के द्वारा वह प्रेम के फलक को अधिक विस्तृत करता है। पहले भाग में जहाँ रहस्याभास है वहीं दूसरे भाग में रहस्य का संस्पर्श न के बराबर

है। प्रियतमा के रूप के ऐन्द्रिय अनुभवों को वह कभी प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करता है और कभी बिम्बधर्मी विशेषणों के माध्यम से। जहाँ प्रियतमा प्रेम-नभ की तारिका बन कर आती है, वहाँ भी वह ऐन्द्रिय अनुभवों से वह दूर नहीं हो पाती है। संघर्ष खण्ड में जीवन और उनके संघर्षों को निकट से पहचानने का का प्रयास है। रूमानियत समाप्त हो गई है संघर्ष प्रधान हो गया है-कि मैं संघर्ष का हूँ फूल, शूलों पर खिला हूँ मैं। 'फिर कभी वे संघर्ष में सबको साथ लेकर चलने का संकल्प लेते हैं-'

हमारे ही अकेले के नहीं ये गीत, सबके स्वर।
बहारों से भरा आंगन चमन का ही नहीं होता,
सुमन का हास मधुमासी सुमन का ही नहीं होता।
सपन हैं बाँटते सबको निंदारे सरगमों के घन,
फुहारों से भरा सावन गगन का ही नहीं होता
सुरभि कब बन्दिनी बनती कुसुम के प्राण में बसकर।

'कृष्ण द्वैपायन' से पूर्व उनकी समस्त पुस्तकों मे से चुनी हुई सरस रचनाओं का संकलन 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' प्रयाग राज द्वारा प्रकाशित आधुनिक कवि-रचना श्रृंखला 'आधुनिक कवि' के भाग बाइस ने उन्हें समस्त भारत के हिन्दी-साहित्य के प्रेमियों के बीच अमर कर दिया ।

उनके काव्य संकलन 'रूप तुम्हारा प्रीति हमारी' के गीत तो सामाजिकता और मूल्यगत संस्कारों के चलते अपने पूर्ववर्ती गीतकारों की रचनाओं से अलग दिखाई पड़ते हैं। वे व्यक्ति के प्रेम और सौन्दर्य मूलक भोग को, सामाजिक संस्कारों तथा समाजपरक मूल्यों से संयुक्त करके ही प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। भोग के गहनतम स्तरों के साथ मानवीय चेतना के पूर्ण प्रसार एवं मूल्यगत उदात्तता को जोड़ना ही कवि का संकल्प बन गया है, तभी तो उसे अपनी प्रेयसी का उजियारा रूप दुखियारी माटी के श्रृंगार से जुड़ा दिखाई देता है। 'चाहता था मधु की रचूँ जिन्दगी, बात मेरी सृजन की अधूरी रही।'

इस संग्रह में उनकी जीवन के प्रति आसक्ति लगती है।एक एक पल को वह सार्थक बनाकर जीना चाहतें है-

'एक पल ही जियो फूल बनकर जियो शूल बनकर ठहरना नहीं जिन्दगी।'
अर्चना के सँजोए हुए अंजली
तुम किसी देवता से मिलो तो सही।
जिन्दगी की यहाँ अनगिनत डालियाँ,
तुम किसी देवता से मिलो तो सही।

एक पल ही जियो, तुम सुरभि बन जियो,
धूल बनकर उमड़ना नहीं जिन्दगी।।

इस प्रकार उनकी आस्था बलवती होती जान पड़ती है और वे गहरी जिजीविषा के कवि के रूप मे उभर कर आते हैं।

राख और पाटल में दिवंगत प्रेयसी की यादें हैं। अकेलापन है और सूनी रातों मे उसकी बातें हैं। पर उसी प्रेयसी की यादें अपने पूर्व राग और समर्पण से उनको आगे बढ़ने की प्रेरणा भी देती है-

पाँव में हो थकन अश्रु भीगे नयन,
राह सूनी मगर गुनगुनाते चलो।

'एक पत्र पुरवा के नाम' जैसे संग्रह जीवन की दशा, दिशा, दर्शन बहुत कुछ कवि को स्पष्ट हो गया लगता है। इस संग्रह में प्यार है जीवन है और जीवन का दृष्टिकोण भी। जीवन का ढंग भी-

अपना संकल्प टँका, काल के कगार पर।
एक दिया अँजुली में, एक दिया धार पर।।
धुंध-धूप तड़पाए-
प्यासा पंथी, आये।
एक कलश आंगन में, एक कलश द्वार पर।
एक दिया अंजुली में, एक दिया धार पर।।

उनके जीवन के अन्तिम दिनों मे 'कृष्ण द्वैपायन' भी प्रकाशित होकर आ गया। जिसे जौनपुर के. स्थानीय लोगों ने सहर्ष स्वीकार किया। पूर्वांचल के लोगों ने उनके समस्त रचनाओं को जैसे सम्मान दिया। वैसे ही 'कृष्ण द्वैपायन' को भी सम्मान दिया।

'कृष्ण द्वैपायन' से पूर्व उनकी समस्त पुस्तकों मे से चुनी हुई सरस रचनाओं का संकलन 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' प्रयाग राज द्वारा प्रकाशित आधुनिक कवि-रचना श्रृंखला 'आधुनिक कवि' के भाग बाइस ने उन्हें समस्त भारत के हिन्दी-साहित्य के प्रेमियों के बीच अमर कर दिया।

कुल मिला कर क्षेम जी प्यार के पूजा के कवि हैं- अक्षत और रोली-वन्दन का आस्थाशील व्यवहार जो अपने मन का फल पाकर प्रभावशाली बन जाता है। निश्चित रूप से उनके परिवर्ती गीतों की प्रेम परिकल्पना में केवल भावुकता, वासना का आवेग या तीक्ष्ण प्रवाह नहीं है, बल्कि लोकस्वीकृति, मानवीयता के वरण और सामाजिकता के उन्नयन की एक विवेक दृष्टि भी सजग और सचेत दिखाई पड़ती है।

बृजेश आनन्द राय, जौनपुर
मो. : 9451055830, ई-मेल : brijeshanandrai@gmail.com

✧ ✧ ✧

''भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति''

डॉ. मीरा सिन्हा

आज भारतीय समाज में कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें महिलाओं ने अपना लोहा नहीं मनवाया है। शिक्षा, व्यवसाय, विज्ञान, कला, साहित्य, कृष्टि, खेल, पर्वतारोहण, गोताखोरी यहाँ तक कि युद्ध क्षेत्र में भी महिलाएँ अपनी एक अलग छवि बना रही हैं। भारत सरकार भी इन्हें अपना महत्वपूर्ण एवं सराहनीय योगदान दे रही है। सरकार शहरी क्षेत्र को तो विकास की ओर ले ही जा रही है, साथ-ही-साथ ग्रामीण महिलाओं को भी आत्मनिर्भर बना रही है। अगर वर्तमान में महिलाओं की स्थिति जानना है तो उसका नमूना हर गली मोहल्ले से साइकिल पर सवार होकर पढ़ने जाती बालिकाओं से लीजिए। हाल फिलहाल में आए मैट्रिक व इंटर के रिजल्ट से जानिए।

सृष्टि के उषा काल में अन्य समाज या संस्कृतियों की तुलना में भारतीय समाज में महिलाओं का जीवन स्तर निसंदेह उन्नत था। हड़प्पा काल में मातृशक्ति को वरीयता दी गई, तो वैदिक युग भी इससे पीछे नहीं रहा है। वैदिक युग में पुत्र प्राप्ति हेतु जप, तप एवं प्रार्थना करते थे, मन्नत मानते थे परंतु पुत्री उपेक्षा की वस्तु कभी नहीं मानी जाती थी। साक्ष्यों के अनुसार वैदिक युग में पुत्री यज्ञ कर सकती थी, उसका यज्ञोपवित संस्कार होता था तथा सभी प्रकार की शिक्षा ग्रहण करती थी। इतना ही नहीं वह अपने वर का चुनाव स्वयं करती थी। जहाँ ऋग्वेद में स्त्री को आदरणीय बताया गया है, वही महाभारत में भी भीष्म का स्पष्ट कथन है कि ''पुत्री, पुत्र के समान होती है।'' मनुस्मृति में भी पुत्री को, पुत्र के समान बताया गया है।

धीरे-धीरे परिस्थितियां परिवर्तित हुई, मुस्लिमों का आक्रमण हुआ और इन्होंने भारत पर अपना साम्राज्य कायम किया। इनके साम्राज्य स्थापना के बाद महिलाओ के चारों ओर एक लक्ष्मण रेखा खींच गई और इन्हे पर्दा रुपी जेल में सिमट कर रहना पड़ गया। दहेज प्रथा, बाल विवाह, कन्या अपहरण आदि की घटनाओ ने अपना जाल फैला लिया। महिलाओं की स्थिति बद से बदतर होने लगी। मुस्लिमों के इस प्रहार से महिलाएं कराह ही रही थी कि अंग्रेजी शासन ने दस्तक दिया। इसके अत्याचार की गाथा भी कम नहीं है और न ही किसी से

छुपे हैं। परंतु अंग्रेजी शासन ने भारतीय सुधारकों के सहयोग से कुछ अमानुषिक प्रथाओं के विरुद्ध कानून भी बनाएं हैं। महिलाओं की स्थिति इससे सुधरी भी लेकिन कोई कारगर परिणाम सामने नहीं आ पाया। यह परिवर्तन का कार्य स्वाधीनता के बाद भी चलता रहा। संविधान में महिलाओं को बराबरी का हिस्सा प्रदान करने के लिए कई विशेष योजनाएं बनाई गई। अनुच्छेद 15 तथा 16 में लिंग समानता हेतु विशेष प्रावधान किए गए हैं। आज भी समय-समय पर नए नए कानून बनाकर महिलाओं को समाज में ऊपर उठाने का प्रयास किया जा रहा है। आज हम सब को यह समझ में आ गया है कि मानव जाति का संपूर्ण विकास महिलाओं के विकास बिना असंभव है। क्योंकि दोनों समाज निर्माण के दो स्तंभ पुरुष और महिला हैं।

आज भारतीय समाज में कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें महिलाओं ने अपना लोहा नहीं मनवाया है। शिक्षा, व्यवसाय, विज्ञान, कला, साहित्य, कृषि, खेल, पर्वतारोहण, गोताखोरी यहाँ तक कि युद्ध क्षेत्र में भी महिलाएँ अपनी एक अलग छवि बना रही हैं। भारत सरकार भी इन्हें अपना महत्वपूर्ण एवं सराहनीय योगदान दे रही है। सरकार शहरी क्षेत्र को तो विकास की ओर ले ही जा रही है, साथ-ही-साथ ग्रामीण महिलाओं को भी आत्मनिर्भर बना रही है। अगर वर्तमान में महिलाओं की स्थिति जानना है तो उसका नमूना हर गली मोहल्ले से साइकिल पर सवार होकर पढ़ने जाती बालिकाओं से लीजिए। हाल फिलहाल में आए मैट्रिक व इंटर के रिजल्ट से जानिए।

यह तो मात्र कुछ उदाहरण है। आज हमारे चारों ओर ऐसी घटनाएँ रोज होती हैं और हम उसे चुपचाप सह जाते हैं। आज हम बाहर की बात तो दूर है घर में ही किसी भाई, पिता, चाचा, जेठ, देवर, ससुर, पति यहाँ तक कि शिक्षक, डॉक्टर से ही असुरक्षित हैं, परंतु अफसोस तो इस बात का है कि इन सब कुरीतियों के सूत्रधार कहीं-न-कहीं हम स्वयं हैं। हम अपने आपको हमेशा उपेक्षा और सहारा की पात्र समझते हैं। अपने ऊपर हो रहे जुल्म के खिलाफ आवाज उठाने से हम डरते हैं।

इतना ही नहीं यूपीएससी, बीपीएससी के परिणाम भी महिलाओं का ही नेतृत्व कर रहे हैं, परंतु यहीं पर एक सवाल खड़ा होता है कि मैट्रिक इंटर में लड़कियाँ इतना अच्छा परिणाम देती है और फिर बड़ी होने पर यह कहां गायब हो जाती हैं? इतनी प्रगति करते हुए भी क्यों आज हमारे यहां महिलाओं का अनुपात घटता जा रहा है? हरियाणा, पंजाब, कश्मीर आदि क्षेत्रों में लिंगानुपात लगातार क्यों गिरता जा रहा है? और सबसे अफसोस की बात तो यह है कि यह अनुपात वहां सबसे ज्यादा असंतुलित है जहां सभ्य और साक्षर व्यक्तियों का समूह है।

आज हम एक तरफ महिला सशक्तिकरण की बात कर रहे हैं। महिलाओं को 35% का आरक्षण दे रहे हैं। उन्हें आत्मनिर्भर बनाने के लिए हुनर, बालिका साक्षरता योजना, कन्या उत्थान

योजना, बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ आदि जैसे अनगिनत योजनाएं चला रहे हैं। वहीं दूसरी तरफ हम में से ही कोई महिलाओं का मानसिक और शारीरिक शोषण करता है। कहीं महिला सरपंच के साथ बलात्कार किया जाता है और फिर उसी के गले में घंटी बांधकर घुमाया जाता है। कहीं महिला सरपंच को पूर्व सरपंच तथा उसके साथियों द्वारा नग्न कर मात्र इसलिए बेरहमी से पीटा जाता है कि वह उसकी बात नहीं मानती है। इतना ही नहीं एक महिला को गांव के पंचायत के आदेश पर बुरी तरह पीटा जाता है और फिर निर्वस्त्र कर पूरे दो घंटे तक गांव में घुमाया जाता है, शिर्फ इसलिए कि उसका बेटा उसी गांव की किसी लड़की से प्रेम करता था और दोनों कहीं चले गए थे अर्थात भाग गए थे। हमारे यहां आरुषि, निर्भया, मनीषा जैसी न जाने कितनी लड़कियों का जीवन शुरू होने से पहले ही समाप्त हो जाता है। हमारा समाज और हम इनकी चिता पर राजनीतिक रोटियां सेकते हैं।

यह तो मात्र कुछ उदाहरण है। आज हमारे चारों ओर ऐसी घटनाएँ रोज होती हैं और हम उसे चुपचाप सह जाते हैं। आज हम बाहर की बात तो दूर है घर में ही किसी भाई, पिता, चाचा, जेठ, देवर, ससुर, पति यहाँ तक कि शिक्षक, डॉक्टर से ही असुरक्षित हैं, परंतु अफसोस तो इस बात का है कि इन सब कुरीतियों के सूत्रधार कहीं-न-कहीं हम स्वयं हैं। हम अपने आपको हमेशा उपेक्षा और सहारा की पात्र समझते हैं। अपने ऊपर हो रहे जुल्म के खिलाफ आवाज उठाने से हम डरते हैं। यहां तक कि अपने जीवन की बागडोर, निर्णय का अधिकार ही दूसरे के हाथों में सौंप कर खुद को कठपुतली बना लेते हैं। हम लड़ने के लिए तैयार नहीं है। हम यह नहीं मान पा रहे हैं कि हम तलवार न सही सुई से तो हमला कर ही सकते हैं। जख्म, तलवार का हो या सुई का सही समय और सही जगह पर हो तो जख्म उतना ही गहरा होगा। हम अपनी संतान को सिर्फ संतान होने का एहसास दे। उन्हें बेटा और बेटी के अलग-अलग परिभाषा से परिभाषित ना करें। जितना जरूरी बेटियों को शाम में घर जल्दी आना है, उतना बेटों को भी है। अगर बेटों को गली में कंचे खेलने की आजादी है, तो बेटियों को क्यों नहीं? अगर हम बेटियों को रोटियां बनाना सिखा सकते हैं, तो बेटों को भी दाल में तड़का लगाने की शिक्षा देनी चाहिय।

मेरा यह सब कहने का मतलब किसी पुरुष वर्ग को आहत करना कतई नहीं है। बल्कि इस समाज के साथ महज अपने इन विचारों को साझा करना है ताकि हम एक ऐसे परिवार, समाज की रचना करें जिसमें एहसास ही ना हो कि स्त्री वर्ग निर्बल है और पुरुष वर्ग सबल बल्कि यह संदेश जाए कि दोनों एक दूसरे के पूरक है। क्योंकि हर घर में अगर एक पुरुष है, तो वहां एक स्त्री भी है।

डॉ. मीरा सिन्हा
नालंदा (बिहार)

✧ ✧ ✧

आलेख

प्रेम अनन्त की परिभाषा है

शाम्भवी

जैविक आधार मे प्रेम को भूख और प्यास की तरह बताया गया है। हेलेन फिशर ने प्रेम को तीन भागों में विभाजित किया है। यौन इच्छा, आकर्षण और आसक्ति। मनोवैज्ञानिक आधार पर भी प्रेम को तीन भागों में विभाजित किया गया है। आत्मीयता, प्रतिबद्धता और जोश। पसन्द करने मे आत्मीयता शामिल होती है। मुग्ध प्रेम मे सिर्फ जोश शामिल होता है और सिर्फ प्रेम में प्रतिबद्धता होती है। दरअसल, पाश्चात्य प्रेम एक प्रकार से स्वच्छन्द प्रेम का निर्माण करता है। पाश्चात्य दार्शनिकों का मानना है कि स्वतंत्र प्रेम एक समाजिक आंदोलन का वर्णन करता है जो विवाह जैसे पवित्र बंधन को नहीं मानता है। पाश्चात्य दार्शनिकों का मानना है कि प्रेम एक रसायन है ।

जब आप कोई अभिनय या नाटक देख रहे होते है तो नायक और नायिका की चेष्टाएँ , क्रिया - कलाप, रूप विन्यास, वातावरण देखकर आपको यह बोध होगा कि दोनो मे प्रेम है। आप यह समझ सकते है कि प्रेम का बोध कराने के लिए बाह्य परिस्थितियां सहायक होती है। प्रेम का स्थायी भाव है रति। प्रेम के इस स्थायी भाव का कभी प्रकटीकरण नही होता, वह मात्र अपने अवयवों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से सामने आता है। यह बात मात्र अभिनय मे नही होता। वास्तविक जीवन में भी जब आप दो पात्रों को इस प्रकार बाह्य क्रिया - कलाप और चेष्टाओ मे देखेंगे तो आप कह सकते है कि दोनो मे प्रेम है, अन्यथा नहीं। अब प्रश्न यह है कि 'प्रेम क्या है?, कोई किसी को प्रेम क्यो करे? जैसे प्रश्न मन मे आते है। मनुष्य स्वभावत: सौन्दर्य प्रेमी है। सौन्दर्य उसके व्यक्तित्व को प्रभावित रहता है और प्रेम उस सौन्दर्य मे समाहित रहता है। प्रेम मे आकर्षण होता है, यह आकर्षण ही प्रेम है। जब आकर्षण होगा तभी प्रेम होगा। बिना आकर्षण के प्रेम नही होगा। अत: प्रेम कभी किया नही जाता, बल्कि प्रेम हो जाता है।

प्रेम मे यदि स्वार्थ है तो वह प्रेम नही। ईर्ष्या है, अहंकार है तो वह भी प्रेम नही। प्रेम में दुर्भावनाओं का कोई स्थान नही है, यदि है तो वह प्रेम नहीं। जहाँ समर्पण नही होगा वहाँ प्रेम नही होगा। प्रेम एक प्रकार की ऊर्जा है, अनुभूति है। यह कभी भी, किसी से भी हो सकता है। मनुष्य, पशु - पक्षी या परमात्मा से। जब आप किसी से प्रेम करते है तो अद्भुत आकर्षण से भरे होते है, इस आकर्षण के

फलस्वरूप आपके दैनिक व्यवहारिक क्रियाकलाप प्रभावित होते है। खाना-पीना, सोना-जगना सब कुछ अस्त-व्यस्त हो जाता है। यह अजीबोगरीब स्थिति देखकर यह कह सकते है कि वह प्रेम मे है। पाश्चात्य और भारतीय दार्शनिकों ने प्रेम को लेकर अनेकानेक सिद्धांत प्रतिपादित किये है। कवि रविन्द्रनाथ टैगोर एक स्थान पर कहते है कि प्रेम न सिर्फ आत्मिक है अपितु क्रियात्मक भी है। प्रेम हृदय की आन्तरिक भावना व संवेदनशीलता भी है तो प्रेम प्रस्फुटित भी होता है और रूप भी लेता है। टैगोर कहते है कि प्रेम के इसी सक्रिय रूप को एक निश्चित दिशा देना आध्यात्मिक अनुशासन है तथा यही परम लक्ष्य की प्राप्ति का मार्ग है। जैसे जैसे प्रेम की अनुभूति की शक्ति प्रखर होती है इसकी व्यापकता बढती जाती है। किन्तु प्रेम आसक्ति नही है। आसक्ति 'स्व, से जुड़ा है। स्व किसी विशेष प्रयोजन से जुड़ा होता है। आसक्ति के पीछे भोग की (भौतिक सुख) प्रवृत्ति होती है। प्रेम इस बन्धन से मुक्त होता है इसीलिए प्रेम मे आत्मोत्सर्ग की भावना निहित होती है। पाश्चात्य विचारकों ने प्रेम के कई आधार बताये है :-

'जैविक आधार

'मनोवैज्ञानिक आधार

'विकासवादी आधार

जैविक आधार मे प्रेम को भूख और प्यास की तरह बताया गया है। हेलेन फिशर ने प्रेम को तीन भागों में विभाजित किया है। यौन इच्छा, आकर्षण और आसक्ति। मनोवैज्ञानिक आधार पर भी प्रेम को तीन भागों में विभाजित किया गया है। आत्मीयता, प्रतिबद्धता और जोश। पसन्द करने मे आत्मीयता शामिल होती है। मुग्ध प्रेम मे सिर्फ जोश शामिल होता है और सिर्फ प्रेम में प्रतिबद्धता होती है। दरअसल, पाश्चात्य प्रेम एक प्रकार से स्वछन्द प्रेम का निर्माण करता है। पाश्चात्य दार्शनिकों का मानना है कि स्वतंत्र प्रेम एक समाजिक आंदोलन का वर्णन करता है जो विवाह जैसे पवित्र बंधन को नहीं मानता है। पाश्चात्य दार्शनिकों का मानना है कि प्रेम एक रसायन है। यह दृष्टा और दृष्टि का विलयन है। सौन्दर्य मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है और प्रेम उस सौन्दर्य में समाहित रहता है। प्रेम में आसक्ति होती है। 15वीं शताब्दी में मध्यकालीन भारत में संत परंपरा के द्वारा प्रेम का पृथक रूप दिखाई दिया। संत परंपरा में प्रेम ही सर्वोपरि था जो काव्य रूप में था हालांकि उनके मतों मे एक रूपता नहीं थी। सन्तो ने अपनी वाणी साधारण आमजन भाषा में लिखी। उन्होनें ईश्वर को सच्चा प्रेमी कहा और धार्मिक आडम्बरों को मूल्यहीन कहकर खारिज कर दिया। उन्होनें भक्ति प्रेम का प्रतिपादन करते हुए कहा की धर्म, ईश्वर के प्रति समर्पण का विषय है जो कि हृदय में बसता है। मध्यकालीन संत कवियों का धार्मिक, समाजिक व्यवहार था। हजार वर्ष पहले श्रीमद्भागवत महापुराण और श्रीमद्भागवतगीता में वर्णित भक्ति प्रेम पर आधारित थी। उन्होने धर्म विशेष आडम्बरों से दूर रहकर मानव जीवन के बीच मात्र प्रेम को निरूपित किया। श्रीमद्भागवत महापुराण में कृष्ण के प्रेम में व्याकुल गोपियां कृष्ण से मिलने जाती हैं। किस प्रकार जाती है यह देखियेगा।

'दुहन्त्योभिययुः काश्रिद दोहं हित्वा समुत्सुकाः ।
पयोधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ।।5
ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभ्रार्तृबन्धुभिः ।
गोविन्दापहतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ।।8

अथैकोनत्रिशोध्यायः। दशम स्कन्ध ।

यह प्रेम का चरमोत्कर्ष है। गोपियो के व्यवहार से यह बात स्पष्ट है कि वे श्रीकृष्ण को अंतर्यामी, योगेश्वरेश्वर परमात्मा के रूप मे पहचानती थी और पति के रूप मे श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी इसी से उन्होंने देह - गेह, पति- पुत्र, लोक - परलोक, कर्तव्य सब कुछ छोड़कर, सबको अनसुना करके भगवान श्रीकृष्ण को पाने के लिए ही अभिसार (प्रिय से मिलने जाना) किया। भगवान का प्रेमदान प्राप्त करके गोपियां निस्संकल्प, निश्चिंत होकर सब लगी हुईं थी घर के काम में, परन्तु वास्तव मे वे उनमे से कुछ भी नही चाहती थी। श्रीकृष्ण की बांसुरी की ध्वनि सुनते ही अपने कार्य को पूरा करने पर उनका ध्यान नही गया। उन्होंने यह नही सोचा कि काम पूरा करके चले। वे सब एक साधक सन्यासी के समान महारास के लिए चल पड़ी। जिसका मन वैराग्य से पूर्ण था। न किसी को पूछना, न किसी को बताना, जैसी शरीर की हालत थी वैसे ही चली गयी। श्रीमद्भागवत महापुराण मे कहा गया है कि वैराग्य की पूर्णता और प्रेम की पूर्णता में कोई अन्तर नही है। दोनो एक ही बात है। जहाँ प्रेम होगा वही समर्पण होगा, वही वैराग्य होगा। वैराग्य अर्थात त्याग। सच्चा प्रेम त्याग का उदाहरण है। यानि प्रेम लेता नही बल्कि देता है। यही प्रेम का रूप है। भौतिक प्रेम व्यक्ति की दृष्टि में होता है। जब तक यह दृष्टि होगी प्रेम के रहस्य को समझना मुश्किल है। प्रेम की कोमलता के कारण यह सदैव ही कवियो का प्रिय विषय रहा है। रीतिकालीन कवि की एक पंक्ति --

'यह प्रेम को पंथ कराल महा,
तलवार की धार पे धावनो है।'

वे मानते है कि प्रेम का मार्ग अत्यन्त दुष्कर होता है। रीतिकाल के कवि आश्रयदाताओं के रुचि अनुसार लिख रहे थे। इन कवियो की श्रृंगार भावना मे दमन से उत्पन्न किसी प्रकार की कुंठा न होकर शरीर सुख की साधना है यही कारण है कि उनकी कवितायें प्रेम की उन्मुक्तता व रसिकता का रूप धारण कर गयी है। वही भक्ति काल मे कबीर कहते है कि, ''हरि मोरा पिउ मै हरि की बहुरिया''। छायावादी काव्य मे प्रेम रहस्य बनकर उपस्थित था। कवि प्रेम को विभिन्न रूपों में अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त करता रहा है। किन्तु वास्तव मे प्रेम श्वासो के समान होता है। जिस प्रकार श्वास आती जाती रहती है, उसे भीतर एकत्र करके नही रख सकते, रोकने से व्यक्ति मर सकता है, उसी प्रकार प्रेम होता है। वह भी सदैव ताजा होता है। वह कभी समाप्त नही होता। ताउम्र बना रहता है। प्रेम इतना प्रभावी होता है कि वह दूसरो को भी प्रभावित करता है। व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो जाता है लेकिन प्रेम अमर हो जाता है।

शाम्भवी, 177/1, भुलाई का पुरा गोविन्दपुर, प्रयागराज
मो. : 8765224899

✧ ✧ ✧

छंद शास्त्र की अनुपम कृति

डॉ. पुष्प राज शर्मा

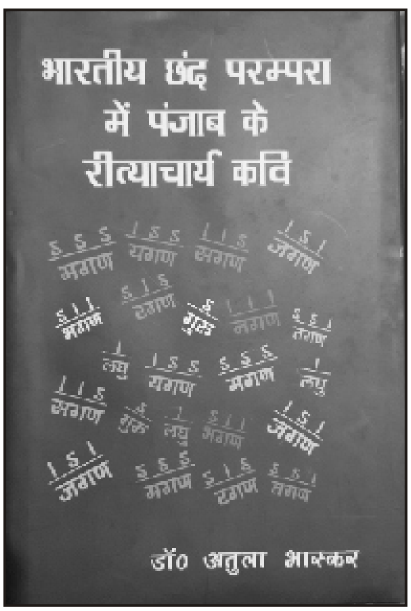

भारतीय छन्द परम्परा में पंजाब के रीत्याचार्य कवि-छंद ग्रन्थ डॉ० अतुला भास्कर की अनुपम कृति है जो पाँच अध्यायों में है। इसमें छन्द शास्त्र की अमूल्य निधि के अमूल्य रत्न समाहित है।

छन्दों की पृष्ठभूमि यास्काचार्य ने द्वन्दांसि छादनात्-आच्छादित करना छन्द शब्द की त्युत्पति छद (छदि) धातु से बतायी है। तैत्तिरीय संहिता में कहा गया कि छन्दों से अपने शरीर को आच्छादित करके देवता अग्नि के पास गए अत: इन्हें छन्द कहते है। कात्यायन के अनुसार-यदक्षर परिणामं तच्छन्द अर्थात् जो अक्षरों का परिणाम (संख्या) है वह छन्द है। अथर्ववेद में छन्दाडक्षर संख्या वच्छेदकमुच्यते अक्षरों की संख्या के अवच्छेदक को छन्द कहा है। 'निघन्टु' में छद धातु का अर्थ स्तुति करना, पूजा करना, प्रसन्न करना आदि है। छन्दों के सम्यक् मापन से देवताओं की स्तुति की जाती है, उन्हें प्रसन्न किया जाता है अत: इन्हें छन्द कहते हैं। छन्द काव्य सृजन में अनिवार्य क्यों है, इस विषय पर छन्द शास्त्र में इस प्रकार उद्धृत किया गया है-

छादनं तावद् वाक्यस्य स्वैरगमन वारणम।
नियम बद्धवाक्यस्य छन्द: संज्ञा विधीयते।।

छन्दों के नियम वद्वसे वाक्य गायन योग्य हो जाता है, गायन होने पर वाणी में मनोहरता आती है छन्दों का सिद्वान्त पक्ष: वर्ण मात्रा आदि की गिनती के विचार से उत्पन्न होने वाली पद्य रचना छन्द है। लेखिका ने वर्णमाला के माध्यम से इसे ग्रन्थ में यथास्थान दर्शाया है। समीक्षक चक्रवर्त्ती मधुसूदन विद्यावाचस्पति ने

छन्द शास्त्र की भूमिका में छन्द की परिभाषा पर अत्यन्त विस्तृत चर्चा करते हुए पर्यनुयोग के रूप में लिखा है कि-छन्द क्या है? इस सम्बन्ध में पर्यनुयोग तीन प्रकार का है लक्ष्यापेक्ष, लक्षण्यापेक्ष तथा लक्षणापेक्ष है। इनका समाधान भी तीन प्रकार से है।

लक्ष्यापेक्ष समाधान में-अग्निमीके पुरोहितम्....इत्यादि वेद मन्त्र है।

लक्षणयापेक्ष समाधान में-गायत्र्युष्णिगनुष्टष्बृहती पंक्तिस्त्रिष्टुवजगती छन्दों की सात जातियाँ है।

लक्षणापेक्ष समाधान में-अक्षर, मात्रा, संख्या जिसमें नियत हो वह वाणी छन्द है। लेखिका ने अपेन शोधा में इन तीन 'पर्यनुयोगों' का समावेश बड़ी विद्वत्तापूर्ण किया है।

छन्द का महत्व सदैव निर्विवाद रहा। वस्तुतः सृष्टि के आरम्भ से ही मनुष्य अपने आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति संगीतमयी भाषा में करता रहा। सुख एवं दुःख में मनुष्य के तद्‌भावों की अभिव्यक्ति करने वाले विरह एवं मिलन के गीत उसकी इसी प्रवृति की ओर संकेत करते है। यही कारण रहा कि प्राचीनकाल से आधावधि पर्यन्त कवि छन्दोबद्धकाव्यों की रचना करते रहे। इसी प्रकार भक्ति में लीन कवियों ने देवी-देवताओं की स्तोत्र रचनाओं को छन्दो बद्धकिया उन सबका कारण यही रहा कि 'छन्दोबद्ध' पद्यों की स्तुति करते हुए भक्त की मनोभावनाओं में तन्मयता की स्थिति बनी रहती है और ऐसी रचनाएं अनायास स्मरण हो जाती है। इसलिए छन्दोबद्ध रचनाएं अधिक रूचिकर एंव चमत्कारपूर्ण होने के साथ दीर्घजीवी भी हो जाती है।

बीजगणित के आधार पर छन्दों के भेद-उपभेदों की गणना प्राचीन भारतीय विद्या है। इसे विद्या का पंजाब की परम्परा पर कितना प्रभाव रहा, इसे निवद्ध करने का सफल प्रयास लेखिका ने किया है। भरत मुनि के नाट्य शास्त्र के कुल प्रमाण संख्या 134217726 के आधार पर 21 वृत्तों का प्रमाण स्पष्ट किया है। संस्कृत के प्रथम काव्य 'बाल्मीकि रामायण' में आदि कवि महर्षि बाल्मीकि ने 15 छन्दों का प्रयोग किया है। आचार्य केशव के छन्दों के वर्गीकरण के आधार पर लेखिका ने आशय को स्पष्ट किया है-

भाषा सुरतरू की प्रगट साखा तीनि प्रकार।
सुरभाषा भाषा-सरस नरभाषा संसार।।
सुरभाषा के प्रथम ही बालमीकि बड़माने।
अहिभाषा के महसु नरभाषा पिंगल नाग।।

पद्य में छन्दों की भूमिका तो अग्रगण्य रहती ही है परन्तु गद्यों में भी छन्दों की भूमिका को अनदेखा करना अनुचति होगा। छन्दों को यथाक्रम न रखने से अंलकरों में चारूता का भाव उत्पन्न नहीं हो सकता।

अनुप्रास बिन बात जो कहिए क्रम कर चारू।
विना चरण के काव्य जो गद्य छन्द निरधारू।।

आचार्य सीतल के इस सिद्धान्त को लेखिका ने निर्दिष्ट किया है। जैसे गद्यांशों एवं पद्यांशों दोनों में छन्दों की महत्ता होती है वैसे ही गद्यांशों में भी होती है। अंलकारों में भी छन्द वर्णों और मात्राओं का पूरा ध्यान रखना पड़ता है तभी अंलकार चारूतर होगें इस भाव को इस शोध से सुस्पष्ट किया है।

छन्दशास्त्र चिन्तन परम्परा का पंजाब के छन्द विचारकों पर इतना प्रभाव पड़ा कि इस प्रचलित परम्परागत पद्वति जो अरबी, फारसी, ऊर्दू, प्राकृत, अपभ्रंश से होती हुई पंजाब के कवियों पर भी इसका प्रभाव रहा आचार्य भाई काहन सिंह नाभा, आचार्य प्रमोद, गुरूवश सिंह, निहाल सिंह आदि लेखकों पर इस परम्परा का प्रभाव रहा जिसे इस शोध में स्पष्ट किया है।

इस संशोधित शोध ग्रन्थ में ऐसे असंख्य छन्दों का वर्णन है जो नितान्त ही हृदयावर्जक है जैसे कि हंसमाला, लीला छन्द, चकोर छन्द, कान्तोत्पीडा छन्द, क्षमा छन्द, शिखा छन्द तारका छन्द, रूचिरा छन्द, रूपमाला छन्द, संस्कार छन्द, रूप छन्द, सौभाग्य छन्द, चित्रकला छन्द, चौपाई छन्द, अलंकृत छन्द आदि को लक्षण उदाहरण सहित स्पष्ट किया है। इसी क्रम में भक्तिरस एवं वीर रस जो यमक एवं उपमा आदि अलंकारों को इंगित करते है। पंजाब अपनी भक्ति एवं वीरता के लिए प्रसिद्ध है। इस भू-भाग पर ऐसे छन्दों का प्रयोग साधारण बात है।

शोध का विषय जहाँ दुरूह होता है वहाँ व्यापक भी होता है। शोधकर्तृ अपने शोध के प्रति कितनी गम्भीर रही होगी इसकी कल्पना इसमें प्रयुक्त सहायक ग्रन्थों से चलता है। पिंगलसार, छन्द रत्नावली, छन्द वोधनी, छन्द निधि, वृत्त-चन्द्रोदय, प्राकृत पैंगलम्, छन्द पयोनिधि, पिंगल पीयूष गणप्रस्तार चन्द्रिका, छन्दोडनुशासन आदि पुस्तकें प्रायः दुष्प्रात्य है। इनको प्राप्त करने में कितनी कठोर साधना करनी पड़ी होगी।

'छन्द' शब्द के कोशीय अर्थ का विविध दृष्टान्तों के साथ पूर्ण परिचय प्रस्तुत किया है। हिन्दी साहित्य में उत्तरकाल, मध्यकाल, रीतिकाल में अनेक छन्दों की विधाओं के प्रस्तुतीकरण में संस्कृत परम्परा का अनुपालन किया है। प्राकृत काल में आर्या छन्द का प्रयोग गाहा अर्थात् गाथा के रूप में हुआ। आर्या सप्तशती, गाथा सप्तशती दोनों नाम पंजाब के छन्दाचार्यों में कितने लोकप्रिय रहे। आचार्य हरिराम दास निरंजनी ने आर्या छन्द के लिए 'आरजा' शब्द का प्रयोग किया है। इस छन्द के लक्ष्मी, ऋद्धि, बुद्धि आदि 27 भेदों का वर्णन है। छन्द शास्त्र के आदि आविष्कर्ता भगवान शेष है। शेष जी ने आगे गरूड़ भगवान को दिया, गरूड़ जी ने आगे भुजंग प्रयाति को दिया उनके माघ्यम से छन्द शास्त्र का आविर्भाव हुआ 'अनुष्टुप छन्द' छन्द जगत का प्रथम छन्द माना जाता हे महार्षि वाल्मीकि ने बाल्मीकीय रामायण में इसका प्रयोग किया है। सभी छन्द प्रायः लय एवं ताल पर आधारित होते है और इनका प्रयोग काव्यों में किया जाता है। छन्द के आगे जाकर मात्रिक एवं वर्णिक दो भाग हो गए मात्रिक छन्द मात्राओं तथा वर्णिक छन्द वृर्णों पर आधारित होते है। छन्दों की जो परम्परा संस्कृत से प्रारम्भ होकर प्राकृत पालि, अपभ्रंश भाषाओं से होती हुई आधुनिक भारतीय भाषायों में भी दिखाई देती है। पंजाब के हिन्दी कवि भी शैशवास्था से ही इस परम्परा का अनुपालन करते दिखाई देते है। छन्दों को व्याकरण के प्रयोग आचार्य पाणिनी ने छन्द को वेदों के पैर माना है-छन्दः पादो तु वेदस्य... इसे जैसे कोई मनुष्य बिना पैरों के गति नहीं प्राप्त कर सकता

उसी प्रकार वेद मन्त्र आदि भी बिना छन्दों के गति नहीं प्राप्त कर सकते। ऐतरेय ब्राहाण ग्रन्थ से यह परम्परा विकसित हुई, आचार्य पिंगल ने पल्लवित किया तथा लोक जीवन मे जुड़ती हुई आधुनिक भारतीय भाषाओं में पुष्पित हुई हिन्दी के कवियों ने इस पुष्पित परम्परा की सुगन्ध को विकसित किया, गुरूमुखी लिपि के रचनाकारों ने इसे और विकसित किया।

छन्द विषयक अवधारणा पंजाब की छन्द शास्त्रीय परम्परा में भाई काहन सिंह नाभा, द्वारा हिन्दी परम्परा के छन्द लक्षणों के साथ साथ अरबी फारसी आदि में अपरम्परिक छन्दों का वर्णन है। छन्दों का मानवीय चेतना के साथ कैसा गहरा सम्बन्ध रहा। छन्द शास्त्र की प्राचीनता और समय समय पर उनके नामों का युग और भेद की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन, छन्दों की संख्या की तुलना अपार समुद्रवत है। छन्दों की विभिन्न जातियों एवं वर्गों का विशद उल्लेख इसमें है। पंजाब में रीति परम्परा जो साहित्यिक विरासत विशेषकर गुरू दरबार एवं रियासती दरवारों तक ही सीमित थी वह अनेक प्रवुद्ध लेखकों के द्वारा सामान्य जनमानस तक प्रसिद्धि पाने लगी अनेक काव्याकारों को सम्मानित करके उनके गौरव को गौरवान्वित किया। अनेक छन्दाचार्यों ने काव्यांगों के अन्तर्गत 'छन्द' को काव्यशास्त्र के अनिवर्य तत्वांगो के रूप में स्वीकार किया।

इस संशोधित ग्रन्थ में छन्दों का विवेचन विविध प्रकार से किया गया है। गुरूमुखी लिपि में उपलब्ध रचनाएं दीर्घकाल तक हिन्दी से अछूती रही तथा कुछ ऐसी रचनाएं भी है जो केवल पुस्तकालयों तक की ही शोभाएं बढ़ाती रही। इस शोध का अध्ययन करने पर देखा कि आधार ग्रन्थों का गुरूमुखी लिपि से देवनागरी लिपि में रूपान्तरण दुष्कर कार्य रहा होगा। हिन्दी जगत इससे अपरिचित रहा। पंजाब के गुरू द्वारों राज दरबारों में दीर्घकाल तक एक ऐसे साहित्य का सृजन होता रहा जो हिन्दी की समृद्ध परम्परा को परिपुष्ट करता है। पंजाब के छन्दाचार्यों ने छन्द शास्त्र एवं काव्यशास्त्र को एक ही माना है संस्कृत के आचार्य पिंगल के सिद्धान्त को सरलता एवं सुगतमता से हिन्दी में प्रस्तुत किया। संस्कृत में जैसे छन्दों की गणना का आधार गणितीय प्रक्रिया है तथा लघु गुरू के साथ छन्दों की जाति, मात्रिक, वर्णिक भेद, वर्ग के आधार पर भेद उपभेद प्रस्तुत किए हैं। पंजाब के छन्दाचार्य संस्कृत की छन्द परम्परा से कैसे जुड़े रहे वह इस शोध ग्रन्थ का गहराई से अध्ययन करने पर पता चलता है। कुछ अन्य शोधार्थियों ने भी छन्द शास्त्र को स्पर्श जरूर किया है। परन्तु किसी ने भी छन्दशास्त्र की परम्परा का पंजाब की दृष्टि से सर्वाङ्गीण शोध किया हो ऐसी मेरी दृष्टि में नहीं आया। पुस्तक पुस्तकालयों के लिए तो संग्रहीय है। साथ-साथ छन्द शास्त्र के आहयेताओं के लिए तथा शोधार्थियों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी। इसमें अमूल्य ज्ञाननिधि है।

डॉ. अतुला भास्कर द्वारा किया गया अतुलनीय श्रम, निश्यित रूप से हिन्दी साधकों के लिए अमूल्य उपहार रहेगा। इनका कालक्रम विन्यास, छन्दो-बिधान पूर्ण रूपेण अनुपम एवं श्रमसाध्य कृति है।

डॉ. पुष्पराज शर्मा, प्राचार्य – श्री लक्ष्मी नारायण संस्कृत महाविद्यालय,
दुर्ग्याणा अमृतसर, पंजाब

✧ ✧ ✧

याद रह जाते हैं शिवनारायण के शेर

पंकज चौधरी

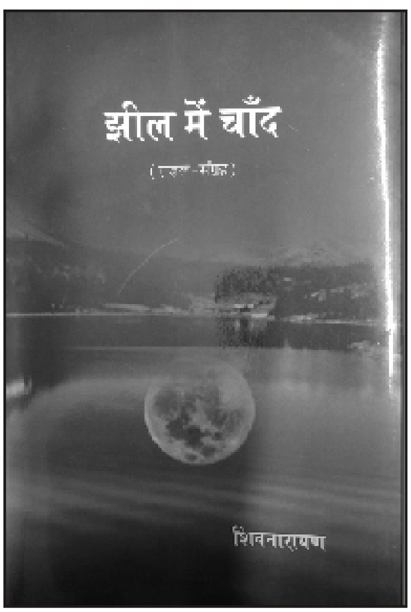

वरिष्ठ कवि शिवनारायण बहुमुखी प्रतिभा के मालिक हैं। कविता के अलावा आलोचना, कहानी, भाषा-विज्ञान, शिक्षा पर अब तक उनकी तीन दर्जन से ज्यादा किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं। लेकिन उनकी मूल पहचान एक कवि के रूप में है। अपने समय और समाज की हलचलों पर उनकी पैनी निगाह रहती है और अपनी धारदार कविताओं से वे हमें बेचैन करते रहते हैं। शिवनारायण की कविताओं का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि उनकी रचनाएं हिंदी पट्टी का सामाजिक-राजनीतिक दस्तावेज हैं। यह टिप्पणी उनकी गजलों पर भी लागू होती है।

गजल की यह खासियत होती है कि बड़ी-सी-बड़ी बात को वह बहुत कम शब्दों में ऐसे कह जाती है कि वह याद रह जाती है। हिंदी गजलों में भी वही बात कही जा रही है जो समकालीन कविता में कही जा रही है लेकिन वह अपने छंद, तुक और लय से लोकप्रिय हो जाती है। यही कारण है कि दुष्यंत कुमार के शेर और गजलों को देश और दुनिया में जितना कोट किया जाता है उतना निराला, नागार्जुन और शमशेर को भी नहीं। शिवनारायण की गजलें दुष्यंत कुमार, अदम गोंडवी की परंपरा का विकास करती हैं। शिवनारायण की गजलों में भी वही सदाकत और नजाकत है जो हमारे लोकप्रिय शायरों में रही है-

''बदमिजाजी सियासत की इतनी
बढ़ी आग अपने ही घर में लगाने लगी।''

''हर तरफ अब यहां भुखमरी देखिए
चीख में गूंजती झोंपड़ी देखिए।''

अभी देश के जो हालात हैं उस पर सटीक और अचूक बैठते हैं ये शेर। बदमिजाज राजनीति का ही नतीजा है कि लाखों-करोड़ों लोगों को भुखमरी के कगार पर खड़ा कर दिया गया है। धर्म-विशेष के हाशिए के लोगों की गाहे-बगाहे लिंचिंग कर दी जाती है। हरेक समस्या के लिए उनको ही जिम्मेदार ठहराया जा रहा है। चाहे वे वैश्विक मामला ही क्यों नहीं हो। इस तरह की प्रणाली विकसित कर दी गई है कि लोगों के सोचने, समझने और चिंतन करने की क्षमता कुंद पड़ती जा रही है। राजनीति की बदमिजाजी और बदगुमानी इस कदर बढ गई है कि कब क्या हो जाएगा कहना कठिन है। यहीं रुककर शिवनारायण कहते हैं-

''घर की बुनियाद सख्त हो जाती फासले जो थे वो मिटा देते।''

शायर को इस बात की आशंका, अंदेशा है कि वर्तमान हालात की जिम्मेदार कहीं-न-कहीं हमारी कमजोर बुनियाद है। इसलिए आगे ऐसी नौबत उत्पन्न नहीं होने पाए, वे बुनियाद को सख्त करने की सलाह देते हैं ताकि फासलों को मिटाया जा सके। देश के हुक्मरान दिनोंदिन इतने तानाशाह, फासिस्ट और जल्लाद होते जा रहे हैं कि सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ताओं को यह डर सताने लगा है कि अगर वे सच बोलेंगे, तो उसकी उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। लोगों ने या तो सच बोलना छोड़ दिया है या वे कुछ बोलते ही नहीं-

''यह कातिल की बस्ती है शिव कम बोलो
सच बोला तो खून बहाना पड़ता है।''
''इस मौसम की बारिश की क्या बात करें
शाखों का हर जलता पता बेबस है।''

शिवनारायण के आलोच्च्य गजल संग्रह ''झील में चांद'' में ऐसे-ऐसे सैकड़ों राजनीतिक शेर हैं जो अधिनायकवाद की ओर देश के बढ़ते जाने का संकेत करते हैं। हमारे चारों ओर जो कोहराम और घमासान मचा दिया गया है शिवनारायण की गजलें उसका चित्रण करती हैं। उदाहरण स्वरूप इन शेरों पर नजर डालिए-

''खेत में बारूद की फसलें उगाई जा रहीं
आंगनों में खौफ का दरिया बहाया जा रहा।''
''जुमले की खेती में जो फसल हुई भरपूर जन-जन के चेहरे पर वह सलाम ढूंढते रहे।''
''क्या पढ़ें इस दौर की उम्मीद को खून से रंगा हुआ अखबार है।''

शिवनारायण के शेरों की यह तुर्शी उन्हें अपने समकालीन शायरों से अलग करती हैं। वह बदमिजाज, बदगुमान, बदतमीज चेहरों को बेनकाब करते हैं। शिवनारायण के यहां बदमिजाजों के अक्स को साफ-साफ देखा जा सकता है। भविष्य में जब कभी भी राजनीतिक शेरों-गजलों का जिक्र होगा, शिवनारायण शिद्दत से याद किए जाएंगे। ये शेर, गजल समकालीन हिंदी कविता के किसी भी स्वनामधन्य कवि की रचनाओं से किसी भी मामले में कमतर नहीं हैं।

शिवनारायण के सरोकार का दायरा बहुत व्यापक है। उनकी गजलें सिर्फ सामाजिक-राजनीतिक विषयों तक ही महदूद नहीं हैं। वह प्रेम, प्रकृति और जीवन के अन्यान्य अनुभवों पर भी बेहतरीन शेर, गजल कहते हैं। इससे उनके यहां जीवन की विविधता का पता चलता है। जीवन अगर कठोर है तो वह मुलायम भी है। उसमें कांटें हैं तो फूल भी हैं। जीवन में या रचना में विविधता का अनादर करना प्रकृति का अनादर करना है। कुदरत का अपमान करना है। और तो और स्वयं और अपनों का भी अनादर करना है-

''चल पड़ेगी डूबते रिश्तों की सांस प्यार की थपकी लगाकर देखिए।''
''मिलता है जब प्यार से कोई शोख हवाओं में बहता हूँ।''
''जरा सा साथ चलने का इशारा कर दिया होता तुम्हारे साथ राहों में किसी भी हाल में होते।''
''नाम तेरा दिल में इस तरह रख लिया अक्स तेरा ही आंखों में आता रहे।''
''तुम उसी वक्त ही चले आना चांद जब झील में उतर जाए।''
''फूल जैसा ही वो संवर जाए बनके खुशबू कहीं बिखर जाए।''

जीवन के एक-से-एक कटु अनुभवों को शिवनारायण अपने शेरों में टांकते हैं। आप कह सकते हैं कि उनके ये नितांत निजी अनुभव हैं। लेकिन निज जब प्रकट होता है तो वही सार्वजनिन हो जाता है। हकीकत तो यही है कि रचनाओं में हम स्वयं के बहाने औरों को ही अभिव्यक्त या उसका एक्सटेंशन कर रहे होते हैं। शिवनारायण के इन शेरों, गजलों को गौर से पढ़ने पर उनका चिंतक और दार्शनिक रूप हमारे सामने प्रकट होता है-

''हवा का रुख बदलता देखकर वो हवा के साथ जाना चाहता है।''
''हम तेरे साथ हैं मुस्कुराते हुए चोट खाते हुए दिल लगाते हुए।''
''शिव रोये तो उसके दिल के मौसम को लोग हमेशा सपने ही दिखलाते हें।''

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि हमारा जीवन जहां-जहां से बनता और बिगड़ता है शिवनारायण का शायर वहां-वहां पहुंचने का जोखम उठाता है। वह एक ओर जहां सामाजिक-राजनीतिक प्राणी हैं, वहीं दूसरी ओर उन्हें प्रेम और प्रकृति की छटाएं भी लुभाती हैं। प्रेम की संजीवनी पाकर उनके शेर, गजल चमक उठते हैं। ये सारे गुण एक साथ जिस रचनाकार में हों वह एक चिंतक-दार्शनिक की श्रेणी में स्वतः आ जाते हैं। शिवनारायण की गजलें सत्य का संधान करते चलती हैं। कथ्य और शिल्प दोनों हिसाब से उनके शेर और गजल अलग से पहचान में आते हैं। आलोच्य गजल संग्रह ''झील में चांद'' में ऐसे सैकड़ों शेर हैं जो पढ़ते ही स्मृति में उतर जाते हैं। एक शायर के लिए इससे बड़ा सुख और क्या हो सकता है?

पंकज चौधरी, 348/4, (दूसरी मंजिल), गोविंदपुरी, कालकाजी, नई दिल्ली–110019
मो. : 9910744984, 9971432440

✧ ✧ ✧

गीत

ओ! बसन्त के अग्रदूत...

ओ! बसन्त के अग्रदूत कोयल गाओ न
मधुवर्षी कूकों से जीवन-रस लाओ न।

तृषित हो गया है जीवन, अमृत की चाह है
सपनीले आनन्द चतुर्दिक्, जाग्रत कराह है,
मन में सौ विक्षोभ, चुन रहे सुख की कलियाँ
चलना था स्वर्णाभ पथों पर, भ्रमित राह है।
इस बसन्त में नयी रागिनी संग आओ न।।ओ! बसन्त.......

तुम जीवन में सदियों से रस घोल रही हो
वन-उपवन में डाल-डाल पर बोल रही हो,
प्रेम-पीड़ की तुम अभिव्यक्ति, प्रेम-तृषा तुम
शत-सहस्र विरहिणियों के स्वर तोल रही हो।
मन-भावन, सबके पावन मन कर जाओ ना।। ओ! बसन्त.......

गाँवों के सुर-तान! शहर के द्वार भी आओ
तुम ऋतुपति के प्राण!! सृष्टि में प्यार भी लाओ,
हिय की कसक मिटाओ, नव-नव तान सुनाकर
गाकर-मधुमय गान, हृदय में स्नेह जगाओ
अब के तो लाना बसन्त, पतझार भगाओ न।। ओ! बसन्त.......

डॉ. अमर कान्त कुमार, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, एम.एल.एस.एम. कॉलेज, दरभंगा, बिहार
मो. : 9430236078

✧ ✧ ✧

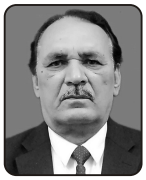

वरेण्य साहित्यकार फणीश्वर नाथ 'रेणु' के जन्म शताब्दी वर्ष पर उ.प्र. हिन्दी संस्थान द्वारा संगोष्ठी का आयोजन

गिरजा शंकर तिवारी

स्थानीय शब्दों के सम्बन्ध में अध्यक्ष महोदय ने कहा कि रेणु जी अल्मूनियम के वर्तनों को ललमुनिया कठौता कहते हैं। नहाने वाले साबुन को गमकौआ साबुन कहते हैं जिसके लगाने से सारा गाँव गम गम महकता है। छोरा, मुँहझौंसा, बेवकफू को बेकूफ, नल को कल, खट्टा मिठ्ठा पान जैसे शब्दों का प्रयोग बहुलता से मिलता है। रेणु जी झुकी हुई बालियों की उपमा नवबधू की झुकी हुई गर्दन से देते हैं। जो लड़के नाटकों में लड़की की भूमिका निभाते हैं उन्हें लड़कीमुहा कहकर संबोधित किया जाता है। बहू शादी के 10 वर्ष बाद भी कहती है कि हम जस के तस हैं अर्थात जैसा रूप लावय 10 वर्ष पहले था वही आज भी है।

पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार 24 नवम्बर 2020 को उ.प्र. हिन्दी संस्थान द्वारा सुप्रसिद्ध साहित्यकार फणीश्वर नाथ रेणु पर गूगल मीट पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में वक्ता के रूप में बाहर के तीन साहित्यकार विद्वानों ने भाग लिया। पटना से 'साहित्य-यात्रा' के संपादक प्रो. कलानाथ मिश्र ने रेणु के उपन्यासों पर, कपिलवस्तु के डॉ. हरीश कुमार शर्मा ने 'रेणु' के कथा साहित्य पर तथा प्रयागराज से डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह ने कथेतर गद्य पर अपने विचार प्रस्तुत किए। अध्यक्षीय उद्‌बोधन में डॉ. सदानन्द प्रसाद गुप्त ने अपने विस्तृत एवं समेकित विचार प्रस्तुत किया।

कार्यक्रम का शुभारम्भ करते हुए संयोजक एवं संचालक की भूमिका में डॉ. अमिता दुबे ने अध्यक्ष सहित सभी वक्ताओं एवं श्रोताओं का स्वागत एवं अभिनन्दन किया। तदुपरान्त संस्थान के निदेशक श्री श्रीकांत मिश्र ने भी सभी का स्वागत करते हुए रेणु जी की कृतियों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला।

सभी वक्ताओं ने फणीश्वर नाथ रेणु की कालजयी रचना ''मैला आंचल'' का उल्लेख किया। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि यह कृति सबके मन मस्तिष्क में सर्वोपरि थी।

डॉ. कलानाथ मिश्र ने 'रेणु' जी के उपन्यासों पर विस्तार से अपने विचार प्रस्तुत किया। उनके व्यक्तित्व प्रकाश डालते हुए उन्होंने रेणु जी को 'सतरंगी व्यक्तित्व' शब्द से विभूषित किया। 'रेणु' जी के घुंघराले बाल, ढीला ढाला शरीर एवं सहजता उनके व्यक्तित्व

की पहचान हैं। रेणु जी की कृतियों में मिथिलांचल की माटी की सुगंध है। उनकी कृतियों में गांव है, खेत खलिहान हैं, लोकजीवन से जुड़ाव है, ग्रामीण अंचल का प्राकृतिक सौंदर्य है, लोक गीत हैं। उपन्यास में वर्णित लोकगीत के बोल ''कब होइ हें मोर गवनवा'' कहकर उन्होंने एक नवयौवना के भावों को अभिव्यक्ति दी है। रेणु जी की निरगुनिया के संदर्भ में डॉ. मिश्र ने बताया कि रेणु जी ने पिंजरा, हंसा जैसे शब्दों का प्रयोग करके यह सिद्ध किया है कि वह ''निरगुन'' को सही अर्थों में समझते थे। डॉ. मिश्र ने ''सजनवा वैरी हो गए हमार'' जैसे उद्धारणों से रेणु जी की कृतियों में संवेदनाओं एवं सरसता को दर्शाने का सफल प्रयास है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता, इस कथन की पुष्टि रेणु जी की कृतियों से होती है।

कार्यक्रम को संबोधित करते हुए उ.प्र. हिन्दी संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष डॉ. सदानन्द प्रसाद गुप्त

डॉ. मिश्र ने यह भी बताया कि रेणु जी की रचनाओं में समाज की विषमताओं की स्पष्ट झलक है। आभिजात्य वर्ग तथा सामान्य वर्ग के जीवन का वास्तविक चित्रण रेणु जी की रचनाओं में है।

उन्होंने कहा कि रेणु जी की रचनाओं में धवन्यात्मिकता एवं लाक्षणिकता-दोनों विद्यमान हैं। ग्रामीण महिलाओं के झगड़े, मर-मुकदमा, जर-जमीन जैसे शब्दों का प्रयोग बहुलता से किया गया है। ठहाका, बनारसी हंसी, तुतलाना आदि की अभिव्यंजना मे रेणु जी बेजोड़ हैं।

डॉ. हरीश शर्मा को रेणु जी के कथा साहित्य पर बोलना था किन्तु कपिलवस्तु के जिस स्थान पर वह थे वहाँ नेटवर्क की इतनी समस्या थी कि उनका चेहरा अन्त तक नहीं दिखाई पड़ा। आवाज अवश्य सुनाई दे रही थी लेकिन उसमें भी बीच बीच में व्यवधान उत्पन्न हो रहा था।

डॉ. शर्मा ने बताया कि रेणु जी की कुल मिलाकर 63 कहानियाँ हैं जो मुख्यत: तीन कहानी संग्रहों मे प्रकाशित हुई हैं। उनके अनुसार रेणु जी ''लोकमन के अद्‌भुत चितेरे थे''। वह समाजवादी विचारधारा से जुड़े थे। उन्होंने सामाजिक रीति रिवाजों की कटु आलोचना की है। अंधविश्वास पर उन्होंने सबसे अधिक चोट की है। अपनी कृतियों के कारण रेणु जी को पद्‌मश्री से विभूषित किया गया।

डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह ने कथेतर गद्य पर विस्तार से प्रकाश डाला। उन्होंने यहाँ तक कहा कि वर्तमान शदी कथेतर गद्य की ही होगी। साहित्य में ''रिपोर्ताज'' शब्द का प्रचलन रेणु जी के ही समय में हुआ। रिपोर्ताज शब्द का सम्बन्ध साहित्य के साथ साथ पत्रकारिता से भी है। हिन्दी साहित्य को पश्चिमी साहित्य के प्रभाव से उबारने मे रेणु जी का विशेष योगदान रहा।

बिहार मे समाजवाद के प्रभाव का अनुभव स्वामी विवेकानंद ने भी किया था। रेणु जी की रचनाओं में आध्यात्मिकता की स्पष्ट झलक है। वह श्रुत-अश्रुत की बात करते हैं। पटना के जल प्रलय के उल्लेख तथा ''तीसरी कसम'' मे इसका आभास मिलता है।

डॉ. सिंह ने कहा कि अब महाकाव्य का युग समाप्त हो गया है। अब डिजिटल साइंस का युग आ गया है। पाठक अब छोटी छोटी रचनाओं को पढ़ने के पक्षधर हो गए हैं।

अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में डॉ. सदानन्दप्रसाद गुप्त ने डॉ. कलानाथ मिश्र के वैदुष्यपूर्ण वक्तव्य की विशेष रूप से सराहना की। उन्होंने भी ''मैला आंचल'' का उल्लेख प्रमुखता से किया। उन्होंने कहा कि रेणु जी की कृतियों में मिट्टी की सोंधी सुगंध है। रेणु जी को संगीत एवं राग-रागिनियों का गहरा ज्ञान था।

अध्यक्ष ने रेणु जी की कृतियों में स्थानीय शब्दों के प्रयोग का विशेष रूप से उल्लेख किया। बोलचाल की शब्दावली मे अभिव्यंजना की शक्ति निहित होती है। शब्द ही शब्द का बिंब है। रेणु जी ने मुहावरों एवं लोकोक्तियों का अधिक उपयोग किया है।

स्थानीय शब्दों के सम्बन्ध में अध्यक्ष महोदय ने कहा कि रेणु जी अल्मूनियम के वर्तनों को ललमुनिया कठौता कहते हैं। नहाने वाले साबुन को गमकौआ साबुन कहते हैं जिसके लगाने से सारा गाँव गम गम महकता है। छोरा, मुँहझौंसा, बेवकफू को बेकूफ, नल को कल, खट्टा मिठ्ठा पान जैसे शब्दों का प्रयोग बहुलता से मिलता है। रेणु जी झुकी हुई बालियों की उपमा नवबधू की झुकी हुई गर्दन से देते हैं। जो लड़के नाटकों में लड़की की भूमिका निभाते हैं उन्हें लड़कीमुहा कहकर संबोधित किया जाता है। बहू शादी के 10 वर्ष बाद भी कहती है कि हम जस के तस हैं अर्थात जैसा रूप लावय 10 वर्ष पहले था वही आज भी है।

रेणु जी की रचनाओं को पढ़ने से पाठकों का पात्रों के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता है। वस्तुत: किसी भी उपन्यास या कहानी की सफलता का आकलन इसी बात से होता है कि पाठक किस सीमा तक उसके पात्रों के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं।

अध्यक्ष के विस्तृत भाषण का पूरा उल्लेख करने से अत्यधिक विस्तार हो जाएगा। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया कि अध्यक्षीय सम्बोधन संक्षिप्त होना चाहिए। अध्यक्ष का भाषण किसी भी कार्यक्रम का संक्षिप्त समाहार होता है। लेकिन हिन्दी संस्थान के अध्यक्ष हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित विद्वान हैं। कोई भी विद्वान जब बोलता है तो वह अपनी भावों को पूर्णत: अभिव्यक्त करने के लोभ का सम्बरण नहीं कर पाता है, यही बात डॉ. सदानन्द प्रसाद गुप्त पर भी चरितार्थ होती है। यह उनके वैदुष्य का द्योतक है।

आयोजन अत्यंत ही सफल एवं ज्ञानवर्धक रहा। इसके लिए सभी आयोजक बधाई के पात्र हैं।

गिरजा शंकर तिवारी, अवकाश प्राप्त (भा.प्र.स.), जौनपुर, उत्तर प्रदेश
मो. : 950617568

✧ ✧ ✧

डॉ. करूणा कमल की पुस्तक 'नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों में स्वामी विवेकानन्द का जीवन चरित्र' का लोकार्पण बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन में सम्पन्न हुआ। लोकार्पण करते हुए 'साहित्य यात्रा' के संपादक प्रो. कलानाथ मिश्र, सम्मेलन के अध्यक्ष डॉ. अनिल सुलभ, डॉ. भूपेन्द्र कलसी, योगेन्द्र प्रसाद मिश्र, शंकर प्रसाद एवं अन्य।

ए.एन.कॉलेज, पटना में बहु–उद्देश्यीय भवन के शिलान्यास करने के उपरान्त कार्यक्रम में बोलते हुए शिक्षा मंत्री बिहार डॉ. अशोक चौधरी, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. जी.सी.आर. जायसवाल, कॉलेज के प्रधानाचार्य प्रो. एस.पी. शाही, 'साहित्य यात्रा'के संपादक प्रो. कलानाथ मिश्र, डॉ. अरूण कुमार एवं डॉ. रत्ना अमृत।

RNI No. : BIHHIN05272
ISSN 2349 - 1906
Postal Registration No. : PT-7C

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

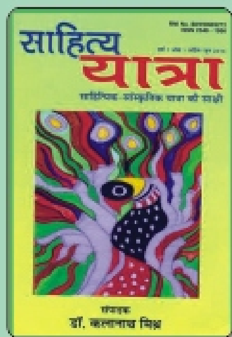

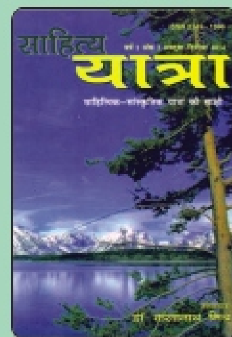

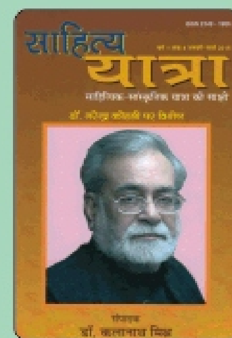

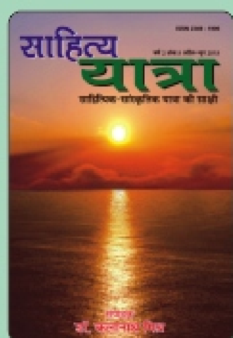

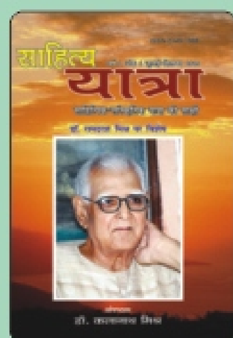

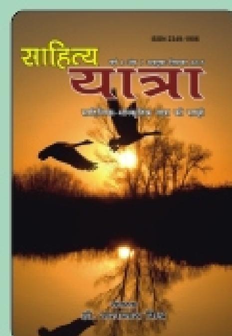

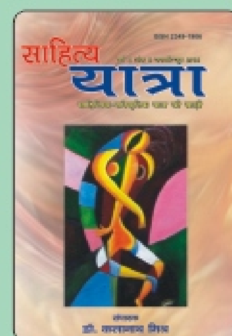

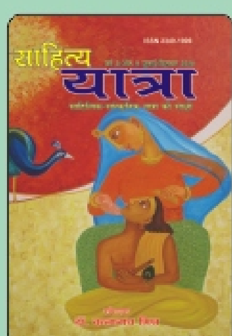

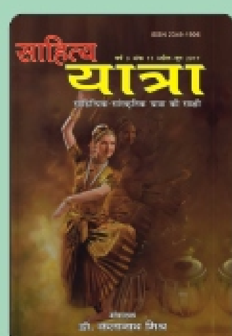

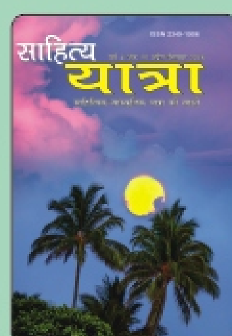

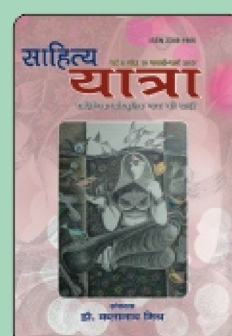

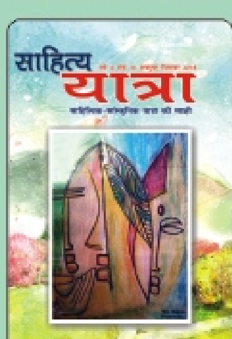

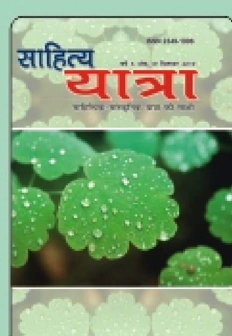

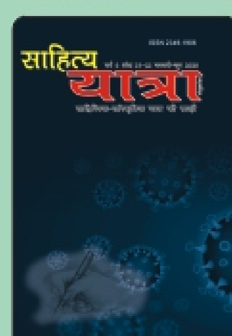

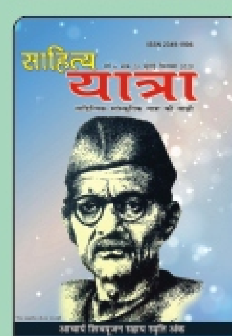

Design & Print @ Gyan Ganga Creations # 09334110685